राजस्थानी भाषा और साहित्य

'राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा', 'डिंगल मे वीररस'
'राजस्थान मे हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों
की खोज' आदि ग्रन्थों के रचयिता—

पं० मोतीलाल मेनारिया एम० ए०

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

समर्पण

भाँषवृतौं* मुगला अगै, फिर फिरंगा रै राज ।
टंडन कीधौ टंडतौ, उण भारत नै आज ॥१॥

उड़दू - इंगलिश टंडती, अण भारत अणमाप ।
हिंदी टंडै हिंदवाँ, टंडन रौ परताप ॥२॥

उत्तम विद्या चातुरी, उत्तम गुण री रास ।
उत्तम पुरुषाँ जस कह्यौ, धन पुरुषोत्तमदास ॥३॥

हंस - वाहणी हंस तज, चित लै सौगुण चाव ।
टंडन रसणा पर रहै, दे सदगुण रौ साव ॥४॥

पोथी हूँ अरपण करूँ, नहँ तव जोग निहार ।
वालमीक तुलसी हुता, वे करता इण वार ॥५॥

—लेखक

निवेदन

हिन्दी साहित्य के निर्माण, विकास एव प्रसार में भारतवर्ष के जिन-जिन प्रान्तों ने भाग लिया है उनमें राजस्थान ।का अपना एक विशेष स्थान है। राजस्थान-वासियों को इस बात का गर्व है कि उनके कवि-कोविदों ने हिंदी-साहित्य के प्रायः सभी अगों पर ग्रथ-रचनाकर उनके द्वारा हिंदी के भाडार को भरा है। राजस्थान में अनेक ऐसे प्रतिभाशाली साहित्यकार हो गये हैं जिनके ग्रथ हिंदी-साहित्य की अमूल्य सपत्ति और हिंदी भाषा-भाषियों के गौरव की वस्तु माने जाते हैं। राजस्थान का डिंगल साहित्य, जो वस्तुतः हिंदू जाति का प्रतिनिधि साहित्य है और जिसमें हिन्दू सस्कृति व हिंदू गौरव की झलक सुरक्षित है, यहाँ के साहित्यिकों की अपनी एक अपूर्व देन है।

परन्तु इतना सब होते हुए भी राजस्थान है बड़ा अभागा। इस दृष्टि से कि भूल-भ्रान्तियों की मार जितनी अधिक इसे सहन करनी पड़ी है उतनी अन्य किसी प्रान्त को नहीं सहन करनी पडी। और यह मार अधिकतर हिंदीवालों की ओर से पडी है जो राजस्थान को हिंदी-क्षेत्र के अतर्गत और राजस्थानी भाषा साहित्य को हिंदी-वाङ्मय का एक अविभाज्य अग बतलाते हैं। हिंदी साहित्य के इतिहास कहे जानेवाले ग्रथों में जब कभी राजस्थान के इतिहास, साहित्य एव भाषा सम्बन्धी वृत्त पढने को मिलते हैं तब देखकर हैरत होती है। कभी-कभी तो मन में यह विचार आता है कि जिस राजस्थान से सबधित साहित्य का वृत्तान्त मैं पढ रहा हूँ, क्या यह वही राजस्थान है जिसका मैं निवासी हूँ या कोई दूसरा है! दो-एक उदाहरण देखिए—

(क) "राजपूताना एक ऐसा प्रान्त है जिसके प्रति किसी का विशेष **अनुराग नहीं हो सकता**। वह प्रान्त मरुस्थान या **रेगिस्थान** ही है और इसीलिए वहाँ **धान्यादिक भोज्य पदार्थ** बहुत कम **उगते हैं**, वहाँ **जल की भी बडी न्यूनता हैं**, अतः वहाँ जीवन की समस्या बड़ी ही कठिन होती है, भोग विलासादि के सुखमय जीवन का प्रश्न तो बहुत ही दूर रह जाता है। यही मुख्य कारण है, कि यह प्रान्त राजपूत राजाओं का प्रधान प्रान्त होता हुआ भी **युद्ध-क्षेत्र नहीं हुआ और मुसलमान इसकी ओर कभी नहीं बढ़े**।"

(ख) "राजपूताने मे मेवाड, मारवाड, महोबा, चित्तौड, बूँदी, जयपुर, नीमराणा, रीवा, पन्ना और भरतपुर राज्यों में चारण-साहित्य का निर्माण हुआ ।

मेवाड मे राजा जगतसिंह ने १६२८-१६५४ तक, राजसिंह ने १६५४ १६८१ तक और जयसिंह ने १६८१ १७०० तक राज्य किया[1] । राणा जगतसिंह के समय का एक महत्व-पूर्ण ग्रथ जगतविलास है जिसके लेखक के विषय में विशेष ज्ञात नहीं[2] । राजसिंह के राजकवि मान ने १६६० मे राजदेवविलास ग्रथ लिखा,[3] जिसमे औरंगज़ेब और राजसिंह के युद्धों का वर्णन है । सदाशिव ने राजरत्नाकर ग्रथ लिखा । यह ग्रथ वीर काव्य से अधिक वीरस्तुति काव्य (प्रशस्ति) है[4] । एक ग्रंथ 'राजप्रकाश' और लिखा गया । इसके रचयिता के विषय में कुछ पता नहीं है[5] । इसमे जयसिंह के अनेक युद्धों का वर्णन है । ये युद्ध अन्य हिन्दू राजाओं से ही हुए हैं, मुसलमानी राजसत्ता से नहीं । इसी समय के कवि रणछोड का लिखा हुआ राजपन्ना[6] नाम का एक और ग्रथ मिलता है ।"

इसी तरह के और भी उदाहरण मेरे पास भारी सख्या मे सगृहीत हैं । 'मिश्रबंधु विनोद' तो इनसे भरा पड़ा है । कहना न होगा कि बगला, मराठी, गुजराती आदि के इतिहास-ग्रथों में ऐसी अनर्गल बातें प्रायः नहीं मिलतीं ।

---

१. इन राजाओं के जो शासन-समय बतलाये गये हैं, वे अशुद्ध हैं । शुद्ध समय क्रमशः ये हैं : १६२८-१६५२, १६५२-१६८०, और १६८०-१६९८ ।

२ मेवाड में जगतसिंह नाम के दो राजा हुए हैं । यह ग्रथ दूसरे जगतसिंह के समय में लिखा गया है जिनका शासन-काल सन् १७३४-१७५१ हैं । ग्रथ का ठीक नाम 'जगविलास' और कवि का नन्दराम है । देखिए पृ० १८३

३ ग्रथ का शुद्ध नाम 'राज-विलास' है । इसका रचना-काल १६६० नही, १६८० है । ग्रथ काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हो चुका है । देखिए पृ० १६२

४ राज-रत्नाकर हिंदी का ग्रथ नहीं सस्कृत का है । देखिए, कैटेलॉग ऑव मेन्युस्क्रिप्ट्स इन दि लाइब्रेरी ऑव हिज हाइनेस दि महाराना ऑव उदयपुर, पृ० १२२-१२३

५ राजप्रकाश के रचयिता का पूरा पता है । नाम किशोरदास है । रचना-काल स० १७१९ है । इसमें जयसिंह के युद्धों का वर्णन तो दूर रहा उनका नाम भी नहीं है । इसमें राजसिंह के विलास-वैभव और शौर्य-पराक्रम का वर्णन हैं । देखिए पृ० १५९

६. ग्रथ का नाम 'राजपन्ना' नहीं, राज-प्रशस्ति है । यह भी हिंदी का नहीं, सस्कृत का ग्रथ है । देखिए, पृ० ९२ का फुट नोट ।

पाश्चात्य विद्वानों का शोध-कार्य तो उनसे भी अधिक उत्तम और प्रामाणिक है। यह तो हिंदी की ही विशेषता है। मैं नहीं समझता कि इस तरह का साहित्यिक कार्य हम हिंदीवालों की, जो हिंदी को राष्ट्रभाषा के पद पर आरूढ करने के लिए आतुर हैं, गौरव-वृद्धि में सहायक हो सकता है।

हिंदी के विद्वानो मे सब से अधिक भ्रान्ति राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति के विषय में फैली हुई है। कुछ इसे हिंदी की जननी और कुछ हिंदी की विभाषा (बोली) बतलाते हैं। परन्तु ये दोनो ही धारणाएँ भ्रमात्मक हैं। वास्तव मे न तो राजस्थानी हिंदी की जननी है और न हिंदी की विभाषा। ये दो स्वतत्र भाषाएँ हैं।

इस भ्रान्ति के कई कारण हैं जिनमे एक यह भी है कि 'हिंदी' की ठीक-ठीक परिभाषा नहीं की गई है। वस्तुतः हिंदी कोई एक भाषा नहीं है। खडी बोली, ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी आदि सात-आठ भाषाओं का समुदाय है जिसमें राजस्थानी भी समिलित है। अतः राजस्थानी को हिंदी समुदाय की भाषा अथवा हिंदी से सबधित भाषा मानना एक बात है, और हिंदी की जननी अथवा विभाषा बतलाना दूसरी बात। इस अतर को स्पष्टतया समझ लेने की आवश्यकता है।

आज से कोई पन्द्रह वर्ष पूर्व मेरा ध्यान उल्लिखित भ्रातियों की ओर गया। उस समय मुझे यह भी विचार आया कि इन भ्रान्तियों के लिए केवल बाहरवालों ही को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। राजस्थानवालों का दोष भी उतना ही है। बल्कि उनसे भी अधिक है। क्योंकि उन्होंने अपने साहित्य के वास्तविक इतिहास को क्रमबद्ध रूप मे ससार के सामने रखने की कभी चेष्टा नहीं की और सदैव दूसरों ही का मुँह ताकते रहे। इतना ही नहीं, उन्होंने दूसरों की भी गलत बातों को भी सच कर के माना और उनका प्रचार भी किया। अतः मित्रों के आग्रह से मैंने इस काम को हाथ में लिया, और अपेक्षित सामग्री एकत्र करना आरभ किया जिसके लिए मैं राजस्थान के विभिन्न राज्यों में तथा ठेठ काशी-कलकत्ता तक घूमा और वहाँ के पुस्तकालयों, व्यक्तिगत सग्रहालयों आदि मे राजस्थानी भाषा के हस्तलिखित ग्रथों को देखा। धीरे-धीरे मेरे पास राजस्थान के लगभग साढ़े तीन हजार से अधिक साहित्यकारों के सबध की सामग्री इकट्ठी हो गई जिसमें से कुछ का उपयोग मेरी पूर्व प्रकाशित 'राजस्थानी साहित्य की रूप रेखा',

'डिंगल में वीर रस' और 'राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रथों की खोज' नामक पुस्तकों में हुआ है।

प्रस्तुत ग्रथ राजस्थानी भाषा-साहित्य पर मेरा चौथा प्रयत्न है। मेरा इरादा इसमें सपूर्ण प्राप्त सामग्री दे देने का था। परन्तु ऐसा हो नहीं सका—मित्रों ने उचित नहीं समझा। क्योंकि साढे तीन हजार व्यक्तियों तथा उनकी कृतियों का परिचय आदि देने से यह एक सूचीपत्र-सा बन जाता और विशेष लाभ न होता। अतः जिन साहित्यकारों की रचनाओं को मैंने भाषा, साहित्य व इतिहास की दृष्टि से महत्व का पाया उनको चुन लिया और शेष को रहने दिया। इस चुनाव में मैंने अपनी रुचि से काम लिया है। इसमें मत-भेद हो सकता है। डा० शार्पकृत "ए डिक्शनरी ऑव् इग्लिश ऑथर्स" के ढग का "राजस्थानी कवि-कोविद-कोष" नामक एक दूसरा ग्रथ मैं तैयार कर रहा हूँ। इसमें समस्त सामग्री का समावेश हो सकेगा।

वर्तमान राजस्थान प्रान्त का निर्माण और इसकी हदबदी अग्रेजों ने कुछ तो अपनी शासन-प्रबध की सुविधा और कुछ राजनीतिक कारणों को सामने रखकर की थी। इसलिए मालवे को उन्होंने राजस्थान से पृथक् कर दिया। परन्तु सस्कृति, रहन-सहन, इतिहास, जन-तत्व इत्यादि की दृष्टि से वह राजस्थान का स्वाभाविक अश है और उसमें बोली जाने वाली भाषा माळवी राजस्थानी ही की शाखा है। अतः राजस्थान और मालवा राजनीतिक दृष्टि से पृथक् होते हुए भी सास्कृतिक दृष्टि से एक हैं। और चूँकि राजस्थानी भाषा और साहित्य का इतिहास कही जानेवाली पुस्तक का आधार-क्षेत्र तो सास्कृतिक इकाई ही होना चाहिए यह सोचकर मैंने मालवे के कुछ साहित्यकारों का परिचय भी इसमें दिया है। यदि भविष्य में कभी भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों का ठीक तरह से विभाजन किया गया, और यदि यह विभाजन भाषा-सस्कृति के आधार पर हुआ, तो मालवे का राजनीतिक दृष्टि से भी राजस्थान के अतर्गत होना निश्चित है।

प्रत्येक देश के इतिहास में, चाहे वह राजनैतिक इतिहास हो, चाहे साहित्यिक, थोडी-बहुत दन्तकथाएँ अवश्य घुली-मिली रहती हैं। राजस्थान का इतिहास भी इन से बहुत प्रभावित है। इस पुस्तक में मैंने बहुत-सी दन्तकथाओं को ऐतिहासिक तथ्य-प्रमाण की कसौटी पर कसकर उनके वास्तविक स्वरूप को सामने रखने की कोशिश की है। इससे दन्तकथा-प्रेमी राजस्थान के बहुत से महानुभाव, विशेषकर चारण लोग, मुझसे बहुत नाराज होंगे, पर

क्या किया जाय, लाचारी है। सत्य-सत्य ही है। फिर आज के इस वैज्ञानिक युग में दन्तकथाओं के लिए स्थान कहाँ है?

उपर्युक्त बातों से मेरा आशय यह नहीं है कि अपनी इस पुस्तक को मैं सर्वथा निर्दोष एव पूर्ण मानता हूँ और दूसरों के ग्रथों में त्रुटियाँ ही त्रुटियाँ हैं। भूल करना मनुष्य के स्वभाव में है। इसलिए इसमें भी अनेक त्रुटियाँ होंगी, और हैं। हाँ, इतना विश्वास मैं अवश्य दिला सकता हूँ, कि इसके प्रणयन में मैंने पर्याप्त सावधानी एव निष्पक्षता से काम लिया है और अपनी तरफ से इसे अधिक से अधिक प्रामाणिक बनाने में कोई कसर नहीं रखी है। और यह सब हिंदी की सेवा तथा हिंदी का बल बढाने की भावना से प्रेरित होकर किया है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन हमारे देश की एक सुप्रसिद्ध सस्था है। हिंदी की उन्नति के लिए जो अथक उद्योग इसने किया है वह स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। राजस्थानी को भी इसके द्वारा बहुत बल और प्रोत्साहन मिला है। इस पुस्तक को प्रकाशित कर उसने मेरा भी गौरव बढाया है। एतदर्थ मैं उसका आभारी हूँ।

जैसा कि ऊपर कहा गया है भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों के विद्वानों की जानकारी राजस्थानी भाषा-साहित्य के विषय में बहुत थोड़ी है, और जो है वह भी बहुत अशुद्ध एव एक पक्षीय है। यदि इस पुस्तक से उनकी ज्ञान-वृद्धि हुई और उनमें फैली हुई भ्रान्तियों का निराकरण हुआ तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूँगा।

अन्त में अपने प्रिय मित्र श्री पृथ्वीसिंह महता, विद्यालकार, को धन्यवाद देना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूँ जिन्होंने पुस्तक के भूमिका भाग को पढने का कष्ट किया और अनेक सुझाव दिये तथा अनेक स्थानों पर सशोधन भी किया। आधुनिक काल के बहुत से साहित्यकारों के परिचय आदि प्राप्त करने में श्रीवृद्धिशकर "हितैषी", सचालक, हितैषी पुस्तक-भडार, से मुझे बहुत सहायता मिली है। अत. मैं उनका भी उपकृत हूँ।

उदयपुर (मेवाड)
ता० १-१०-४८

मोतीलाल मेनारिया

प्रकाशकीय

हिंदी भाषा और साहित्य से अपभ्रंश, ब्रजभाषा [पिंगल], राजस्थानी [डिंगल], अवधी, मैथिली और भोजपुरी आदि भाषाओं और साहित्य का बोध होता है। किन्तु अब तक हिन्दी साहित्य के नाम पर जो इतिहास लिखे गए हैं उनमें अपभ्रंश, ब्रज, अवधी और खड़ी बोली के साहित्य पर ही अधिक विचार हुआ है। इन भाषाओं में भी ब्रजभाषा और खड़ी बोली (आधुनिक हिन्दी गद्य) पर ही साहित्यकारों की दृष्टि गई है। प्रान्त भेद से हिन्दी की विभिन्न बोलियों ने भाषा और साहित्य का रूप धारण किया, तथा उनमें साहित्य की वृद्धि भी हुई। किन्तु अभी तक हिन्दी की इन साहित्य विभूतियों पर विद्वानों की दृष्टि इतिहास लिखने की दृष्टि से फिरी ही नहीं। ब्रजभाषा जैसे सुप्रसिद्ध साहित्य पर भी आज तक स्वतन्त्र रूप से कोई इतिहास नहीं लिखा गया है।

प्रसन्नता का विषय है कि अब इस आवश्यक अंग की ओर साहित्यकारों का ध्यान जाने लगा है। इस दृष्टि से श्री मोतीलाल मेनारिया कृत 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' पुस्तक का प्रकाशन हिन्दी जगत् की महत्वपूर्ण घटना है। राजस्थानी भाषा और साहित्य का महत्व, उसके साहित्य की प्रचुरता एवं श्रेष्ठता आदि का परिचय तो श्री मेनारिया जी की इस पुस्तक से हो ही जायगा, अतः यहाँ इस साहित्य का विवेचन पुनरावृत्ति मात्र होगा।

सम्मेलन को विश्वास है कि हिन्दी साहित्य के समीक्षक इस ग्रंथ से हिन्दी की अन्य भाषाओं और उनके साहित्य पर इस प्रकार के ग्रंथ लिखने की प्रेरणा प्राप्त करेंगे। ऐसे सत्प्रयत्नों से हिन्दी की सर्वाङ्गीण समृद्धि तो होगी ही, साथ ही अहिन्दी जगत् का हिन्दी भाषा के विभिन्न स्वरूपों और प्रकृतियों की जानकारी भी होती रहेगी।

सम्मेलन श्री मेनारिया जी के इस मौलिक प्रयत्न के लिये उन्हें पुनः धन्यवाद देता है।

रामनवमी, २००६

साहित्य मंत्री

विषय-सूची

राजस्थानी भाषा

जितना महान यह प्रान्त है और जितनी अधिक इसकी ख्याति है उसी के अनुरूप अत्युन्नत और उच्चकोटि का इसका साहित्य भी है। यह साहित्य राजस्थानी भाषा में है जो आर्य भाषा की एक शाखा है। इस समय यह लगभग सारे राजस्थान एवं मालवा प्रान्त की भाषा है और मध्यप्रान्त सिंध तथा पंजाब के भी कुछ भागों में बोली जाती है। यह करीब दो करोड़ मनुष्यों की मातृभाषा है।

इसके पूर्व में ब्रजभाषा और बुंदेली, दक्षिण में बुंदेली, मराठी तथ गुजराती, पश्चिम में सिंधी तथा हिंदकी (लहँदा) और उत्तर में हिन्दकी, पंजाबी और बाँगड़ू भाषाओं का प्रचार है।

भाषा-शास्त्रियों का अनुमान है कि मध्य एशिया को छोड़कर जिस समय हमारे पूर्वपुरुष, प्राचीन आर्य, पंजाब में आकर बसे थे और उस समय जो भाषा वे बोलते थे उसके एक रूप से वैदिक संस्कृत की उत्पत्ति हुई। इस वैदिक संस्कृत का ही परिवर्तित साहित्यिक रूप पीछे से संस्कृत कहलाया। और जन साधारण की बोलचाल की भाषाएँ प्राकृत नाम से प्रसिद्ध हुई। कालक्रमानुसार इन प्राकृतों को विद्वानों ने दो भागों में विभक्त किया है, पहली प्राकृतें और दूसरी प्राकृतें। पहली प्राकृतों का प्रतिनिधित्व पाली और अर्धमागधी करती हैं जिनमें बौद्ध, और जैनों के ग्रन्थ लिखे गए थे। दूसरी प्राकृतों में शौरसेनी, मागधी और महाराष्ट्री मुख्य थीं। धीरे-धीरे इन प्राकृतों का भी साहित्यिक संस्कार होने लगा और ये भी क्लासिक भाषाएँ बन गई। परन्तु जन-साधारण की भाषा का जो प्रवाह इनके साथ-साथ अबाध रूप से चल रहा था वह उत्तरोत्तर बढ़ता गया और कालांतर में एक नवीन भाषा के रूप में आविर्भूत होकर अपभ्रंश नाम से प्रसिद्ध हुआ। अपभ्रंश के कई भेद-उपभेदों का पता चलता है। प्राकृतचंद्रिका में इसके सत्ताईस भेद गिनाये गये हैं:—

> ब्राचड़ो लाटवैदर्भावुपनागरनागरो।
> बार्बरावन्त्यपाञ्चालटाक्कमालवकैकयाः ॥
> गौडोढ्रहैवपाश्चात्यपाण्ड्यकौन्तलसैंहलाः।
> कालिङ्ग्यप्राच्यकर्णाटकाञ्च्यद्राविड़गौर्जराः ॥
> आभीरो मध्यदेशीयः सूक्ष्मभेदव्यवस्थिताः।
> सप्तविंशत्यपभ्रंशाः वैतालादिप्रभेदतः ॥

प्रथम प्रकरण

भूमिका

राजस्थान एक महान प्रान्त है। सदियों तक यह भारतीय संस्कृति, शौर्य, साहित्य और कला का केन्द्र रहा है। राजस्थान नाम ही में कुछ ऐसा जादू है कि जिसे सुनकर हृदय मे जोश उमड़ पड़ता है। अपने धर्म, अपनी मान-मर्यादा और अपने देश-गौरव के नाम पर मर मिटनेवाले असंख्य नर नारियो क रक्त से सनी हुई यहाँ की धरती तीर्थराज प्रयाग की तरह पवित्र और यहाँ का प्रत्येक रज-कण गंगामाटी-रेणुका की तरह मुक्ति को देनेवाला है। महामति कर्नल टॉड के शब्दो मे राजस्थान में कोई छोटा-सा राज्य भी ऐसा नहीं है जिसमे थर्मापिली जैसी रणभूमि न हो और न कोई ऐसा नगर है जहाँ लियोनिडास जैसा वीर पुरुप उत्पन्न न हुआ हो। एक समय था जब यहाँ की माँ-बहिनें अपने पुत्र-भाइयो को वीरत्व का पाठ पढ़ाया करती थी और खुद भी देश के लिए जलने मरने को तैयार रहती थीं—

> बाळा चाल म वीसरै, मोथण जहर समाण।
> रीत मरताँ ढील की, ऊठ थयौ घमसाण ॥ १ ॥
> वीरा लेवण आवियौ, पिउ रण हुआ वहीर।
> अब तो बळवा जावस्याँ, अब नहँ आवाँ पीर ॥ २ ॥
> सुरपुर तक निभ जावसी, या जोड़ी या प्रीत।
> सखी पिऊ रै देसडै, सँग बळवा री रीत[1] ॥ ३ ॥

---

[1] हे बेटा! अपनी चाल को मत भूल। मेरा दूध जहर के समान है (अर्थात् जो इसे पीता है वह मरता है) फिर मरने की रीति-पालन में शिथिलता क्यों? उठ, घमासान युद्ध हो रहा है ॥ १ ॥ हे भाई? तू मुझे लेने को आया है। लेकिन मेरे पति रण की ओर प्रयाण कर चुके हैं। अब मैं तेरे साथ पीहर नहीं आऊँगी, सती होने को जाऊँगी ॥ २ ॥ हे सखी! मेरी और प्रीतम की यह जोड़ी और यह प्रेम स्वर्ग तक निभ जायगा। क्योंकि मेरे पति के देश में साथ जलने को (सती होने की) प्रथा है ॥ ३ ॥

विक्रम की छठी - सातवीं शताब्दी से लेकर दशवीं-ग्यारहवीं शताब्दी तक इन अपभ्रंशों का देश के भिन्न-भिन्न भागों में प्रचार रहा। परन्तु बाद में इनकी भी वही गति हुई जो पूर्वोक्त प्राकृतों की हुई थी। अर्थात् इनमें भी साहित्य-रचना होने लगी और विद्वानों ने इन्हें भी व्याकरण के अस्वाभाविक नियमों से बाँधना शुरू कर दिया जिससे इनके दो रूप हो गये। एक रूप तो वह था जिसमें साहित्य-रचना होती थी और दूसरा वह रूप जिसका सर्वसाधारण में प्रचार था। प्रथम रूप तो व्याकरण के नियमों में बँधकर स्थिर हो गया पर दूसरा बराबर विकसित होता रहा और जिस तरह प्राकृतें पहले अपभ्रंशों में परिवर्तित हो गईं थीं उसी तरह अपभ्रंश भी आधुनिक आर्यभाषाओं में रूपान्तरित हो गये।

पूर्व-लिखित सत्ताईस अपभ्रंशों में से नागर अपभ्रंश का प्रचार-क्षेत्र डा० ग्रियर्सन ने गुजरात-पश्चिमी राजस्थान होना अनुमानित किया है। इसके विपरीत डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने इस क्षेत्र की अपभ्रंश को सौराष्ट्री अपभ्रंश नाम दिया है [२]। परंतु ये दोनों ही नाम अस्पष्ट हैं। नागर अपभ्रंश से अभिप्राय नागर जाति की अपभ्रंश से है या नागरिकों की अपभ्रंश से, यह साफ नहीं है। और सौराष्ट्री अपभ्रंश नाम कुछ संकीर्ण है। इससे इसका दायरा केवल सौराष्ट्र (काठियावाड़) ही तक सीमित होना सूचित होता है। हमारे खयाल से श्री कन्हैयालाल-माणिकलाल मुंशी का रखा हुआ नाम गुर्जरी अपभ्रंश अर्थात् गुर्जर देश की अपभ्रंश अधिक सार्थक है [३]। इस नाम से इसके वास्तविक क्षेत्र का अंदाजा हो जाता है। क्योंकि प्राचीन समय में गुर्जर देश में आधुनिक गुजरात और आधुनिक राजस्थान दोनों के कुछ अंश सम्मिलित थे जहाँ यह बोली जाती थी। इसी गुर्जरी अपभ्रंश से राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति हुई जिसका एक रूप आगे जाकर डिंगल नाम से विख्यात हुआ।

---

२ उदयपुर विद्यापीठ के तत्वावधान में राजस्थानी भाषा पर दिया गया भाषण।

३ अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तैंतीसवें अधिवेशन (उदयपुर) का विवरण, पृ०९

नीचे के वश-वृक्ष मे उपरोक्त बाते और भी स्पष्ट हो जायँगी।
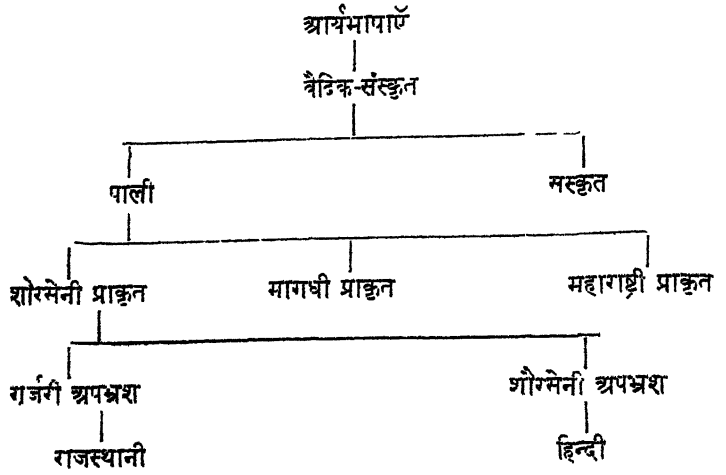
किस निश्चित समय मे राजस्थानी का प्रादुर्भाव हुआ, कहना कठिन है। परतु अनुमान होता है कि कोई ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अपभ्रंश से पृथक् होकर इसने स्वतत्र भाषा के रूप में विकसित होना प्रारभ किया होगा।

राजस्थानी भाषा के अन्तर्गत कई बोलियाँ हैं जिनमे परस्पर विशेष अतर नहीं है। सिर्फ भिन्न-भिन्न प्रदेशो मे बोली जाने के कारण इनके भिन्न-भिन्न नाम पड गये हैं। मुख्य बोलियाँ पाँच हैं—मारवाडी, ढढाडी, माळवी, मेवाती और वागडी।

मारवाड़ी

मारवाडी का प्राचीन नाम मरुभाषा है। यह जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर तथा सिरोही राज्यों में प्रचलित है, और अजमेर-मेरवाडा एव किशनगढ तथा पालणपुर के कुछ भागों, जयपुर राज्य के शेखावाटी प्रदेश, सिंध प्रान्त के थोडे से अश और पजाब के दक्षिण में भी बोली जाती है। मारवाडी का विशुद्ध रूप जोधपुर और उसके आसपास के स्थानो मे देखने मे आता है। यह एक ओज-गुण विशिष्ट भाषा है। इसका साहित्य भी बहुत बढा-चढा है। इसमें सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश के शब्द विशेष मिलते हैं। कुछ अर्बी-फारसी के शब्द भी सम्मिलित हो गये हैं। मारवाडी की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। जैसे, छदों में सोरठा छद और रागों में मॉड राग जितना अच्छा इस भाषा में खिलता

है भारत की अन्य किसी प्रान्तीय भाषा मे उतना अच्छा नहीं खिलता। मारवाडी गद्य और पद्य दोनों के नमूने देखिए—

(क) एक कजूस कनै थोडो-सो धन हो। उणनै रोजीना इण वात रो डर रैवतो कै ससार रा सगळा चार अर डाकू मारा ही धन माथै निजर गडोयोडा है। ऐडी नहीं हुवै कै वै कदेई इनै लूट ले। वो आपरा धन नै बचावण वास्ते आपरे कनै जो माल-मत्तो हो सो बेच 'र एक सोना री ईंट मोल लीवी और उणनै घर मे एक ओळा री जगा गाड दी। परत इत्तो करणा पर भी ऊँ रो मन धापियो नहीं जिण सू वो रोजीना उठै जाय 'र देख लेवतो कै कोई ईंट ले'र तो नहीं गयो है। उणनै रोजीना उठै जावतो देख उण रा नौकर ने की भैम हुयो। वो मौको देख एक दिन उठै गयो और जमीन नै खोद'र ईंट काड ले गयो। कजूस आप री रोजीना री विळियाँ जठै ईंट गाडियोड़ी ही उठै गयो तो देखियो कै ईंट तो कोई चोर'र ले गयो। जरां उणनै बड़ो सोच हुवो और गैला ज्यू जोर-जोर सूँ रोवण लागो। उणनै इण तरह रोवतो-रीखतो सुण कोई पाड़ोसी ऊँरै कनै आयो और दुख रो कारण पूछियो। जद वो पाडोसी उणनै एक भाटो दे 'र कैयो—"भाई! अबै रो मती अर औ भाटो इणी जगा गाड दे। अर मन मे समझ ले कै सोना री ईंट ही गडियोडी है।।क्यू कै तूँ तो सोना री ईंट ऊँ फायदो उठावतो नहीं हो जिण सू थारे भावै तो।सोना री ईंट अर भाटो सरीसा हीज है।

धन रो उपयोग नही करण सूँ धन रो हूवणो अर नहीं हूवणो बराबर हीज है[४]।

---

४ एक कजूस के पास थोडा-सा धन था। उसे हमेशा डर लगा रहता था कि ससार भर के सारे चोर और डाकू मेरे ही धन पर नजर लगाये है, न मालूम कब वे लूट लेंगे। अपने धन को विपत्ति मे बचाने के लिए अपना सब कुछ बेच-बाँचकर उसने सोने की एक ईंट खरीदी। उस ईंट को उसने घर के एक गुप्त स्थान मे गाड रखा। परन्तु इतने पर भी सन्तुष्ट न होकर वह रोज उस स्थान पर जाकर देखता कि कोई सोने की ईंट को चुरा तो नही ले गया। उसको इस प्रकार रोज-रोज एक निश्चित स्थान पर जाते देखकर उसके एक नोकर को कुछ सन्देह हुआ। वह अवसर पाकर एक रोज उसी स्थान पर गया और खोद कर सोने की ईंट निकाल ले गया। कजूस अपने नियमित समय पर जब उस स्थान पर पहुँचा जहाँ ईंट छिपी हुई थी तो देखा कि ईंट को कोई चुरा ले गया है। तब रज के मारे पागल-सा होकर वह बडे जोर-जोर से रोने चिल्लाने लगा। उसका यह रोना-

(ख) दासी, कण विलमायौ ए अब तक नहीं आयौ रावत बारगौ
बागों में घूमण गयौ म्हारौ रावतियौ सरदार
बागाँ मोयली कोयल म्हारौ लियौ छै भँवर विलमाय
दासी ॥१॥

सैल करण भायवाँ गयो हय लीली असवार
कै जगळ री मिरगल्याँ म्हारौ लियौ छै स्याम विलमाय
दासी ॥२॥

सरवर न्हावण पीव गयौ साथीडाँ रे साथ।
कै सरवर की मछळियाँ म्हारौ लियौ छै भँवर विलमाय
दासी ॥३॥

चट चट दासी मेडियाँ झाँक झरोखाँ माँय
जे तनै दीसै आवतौ म्हारौ मद छकियौ स्याम
दासी ॥४॥

लीली घोडी हाँसली अलबेलौ असवार
कड्याँ कटारी वाँकडी सोरठडी तरवार
दासी[५] ॥५॥

मारवाडी की एक उपबोली मेवाड़ी है जो मेवाड राज्य के दक्षिण-पूर्वी भाग को छोडकर सारे मेवाड राज्य और उसके निकटवर्ती प्रदेशों के कुछ भागों में बोली जाती है। मेवाड़ी का विशुद्ध रूप मेवाड के गाँवों में देखने

चिल्लाना सुनकर एक पडोसी उसके पास आया और उसके दुःख का कारण पूछने लगा। अंत में उसने कजूस को पत्थर का एक टुकडा देकर कहा—"भाई अब और रोओ-चिल्लाओ मत, यह पत्थर का टुकडा इसी जगह गाड दो और मन में समझ लो कि वह तुम्हारी सोने की ईंट ही गडी है। क्योंकि जब तुमने निश्चय कर लिया है कि उससे कोई लाभ न उठाओगे तब तुम्हारे लिए जैसी सोने की ईंट है वैसा ही पत्थर का टुकडा"।

धन का उपयोग न करने में धन का होना और न होना एक-सा है।

५ कण=किसी ने। रावत=बहादुर (पति)। मायली=भीतर का। भँवर=पति। विलमायौ=रिझा लिया। सैल=सैर। करण=करने को। साथीडाँ=पति। लीली=सफेद रंग का (घोडी)। मिरगल्या=पक्षी। स्याम=पति। न्हावण=स्नान करने को। हासली=हँसनेवाली। कड्या कटारी वाँकडी सोरठडा तरवार=कमर में बाँकी कटारी और सोरठ देश की बनी तलवार बँधी है।

में आता है जहाँ यह अपने असली रूप में प्रचलित है। शहरों में इस पर हिन्दी-उर्दू का रग चढ गया है जिसकी वजह से यह बहुत कर्णकटु और अटपटी लगती है। मेवाडी में साहित्य भी है और साहित्यिक परपराए भी बहुत पुरानी हैं। चित्तौड़गढ के कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति मे लिखा है कि महाराणा कुम्भा (स० १४६०-१५२५) ने चार नाटक बनाये जिनमे मेवाड़ी का भी प्रयोग किया गया था[६]। राजस्थानी की बोली में साहित्य निर्माण का यह सब से पहला ऐतिहासिक उल्लेख है। मेवाडी का नमूना निम्न है—

एक मूजी तीरै थोडांक धन हो। वणी नै हमेसाँ भौ लाग्यौ रैतौ कै दुनियाँ मातर रा चोर और धाड़ेती म्हारा हीज धन ऊपरै आँख लगायाँ है। नी जाणै कदी वी लूटी लेला। वणी आपणा धन नै संकट ऊ बचावा रै वास्तै आपणौ हॅगळोई वेच-खोचनै होना री एक ईंट मोले लीदी। वणी मूजी घर में एक छानै री ठौड़ै गाड राखी। पण अतरा ऊँ ज सबर नी राख नै वो रोज वणी ठकाणौ जाइनै देखतौ कै कोई होना री ईंट नै चोरीनै तो नी ले गियो है। वणी नै अणी तरे ऊ दन परत एक ठावी जगा जातो देख नै वडा एक चाकर नै कईक भैम पड्यो। वो मौको देखनै एक दन वणी जगा गियो और खादनै होना री ईंट ले ग्या। मूजी आपणै रोजीना री वेळाँ जदी वठै पूगौ जठै ईंट गड़ी थकी ही तो देख्यौ कै ईंट नै कोई चोरी ले गियो है। तो दुख रौ मारयौ वैड़या ज्यू व्है नै वो घणा जोर-जोर ऊँ रोवा-रोकवा लागो। वडो यो रोवणो हामळ नै एक पाड़ोसी वणी तीरै आयो और वणी रा दुखरी वजै पूछवा लागो। आखर में वणी मूजी नै भाटा रौ बटको देनै कियो—"भाई! अबे रोवे-रीके मती। यो भाटा रौ बटको वणी ठकाणै गाड दे और मनमे समझ लै कै वा थारी होना री ईंट हीज गड़ी है। क्यू कै जदी थै धार लीदी है कै वणी ऊ कई फायदो नी उठावेला तो थारै वास्तै जसी होना री ईंट है वस्यो ही भाटा रौ बटको।"

धन नै काम में नी लावा ऊ धन रौ व्हैणो और नी व्हैणो बरोबर है।

---

६ येनाकारि मुरारिसंगतिरसप्रस्यन्दिना नन्दिना
वृत्तिव्याकृतिचातुरीभिरतुला श्रीगीतगोविंदके।
श्रीकर्णाटकमेदपाटसुमहाराष्ट्रादिके योदय—
वाणी गंफमयं चतुष्टयमयं सन्नाटकानां व्यधात् ॥१५८

ढूढाडी जयपुर राज्य के शेखावाटी प्रदेश को छोड कर सारे जयपुर राज्य, लावा, किशनगढ-टोंक के अधिकाश और अजमेर-मेरवाडे के उत्तर-पूर्वी भाग मे बोली जाती है। इस पर गुजराती और मारवाडी दोनो का प्रभाव समान रूप से पाया जाता है। साहित्य की भाषा में ब्रजभाषा की भी कुछ विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। ढूढाडी मे प्रचुर साहित्य है। सत दादू और उनके शिष्य-प्रशिष्यो की रचनाएँ इसी भाषा मे हैं। यह साहित्य गद्य और पद्य दोनों में मिलता है। ईसाई धर्म-प्रचारको ने भी बाइबिल आदि अपने धर्म-ग्रन्थो के अनुवाद इस भाषा मे कर इसकी समृद्धि की है। नमूने----

ढूढाड़ी

(क) एम मूजी कने थोडो-सो धन छो। ऊँ नै हर भगत यो ही डर लग्यो रहै छो क दुनिया भर का सगळा चोर-धाडेती म्हारा ही धन पर आँख गाड़ मेली छै। काइ ठीक कद आ'र लूट लेला। आपका धन नै ई आफत सै बचावा कै ताँई वो एक उपाय करयो। आप को सारो टट्ठवारो बेचकर वो एक सोना की ईंट मोल ली। अर ऊँनै आपकी जगा मैं एक ओला मे राख दी। पण ई सैंभी ऊँको मन भरयो कोनै। वो रोजीना उट्ठे जा'र देख्यातो क सोना की ईंट नै कोइ चार'रनो न ले गो। ऊँ नै रोजीना एक ही जगा जातो देखबासैं ऊँका नौकर न वैम होगा। एक दिन वो भी उट्ठे ही गयो अर खोद'र सोना को ईंट निकाल लेगा। भगत पर जद मूजी उट्ठे गयो जट्ठे ईंट गडी छी तो ठीक पडीक ईंट नै तो कोई चोर'र लेगो। ई दुःख को मारयो वो गैलो-सो हो'र खूब जोर में हाय धोडा करबा लाग्यो। ऊ को रोबो सुण'र एक पाड़ोसी ऊँ कनै आयो पाछल दाय एक भाटो मूजी नै दे'र वो बोल्यो—"दादा! अब रोवै तो मतना ई भाटा का टुकडा नै ई जगा गाड दे और इनैही गड़ी हुई सोना की ईंट समझ ले। क्यों स जद तू मन मैं धार बैठ्यो छै क ऊँसै कोई फायदो नहीं उठाणो तो थार भावै जसी सोना री ईंट उस्यो ही भाटा को टुकडो छै।"

धन नै काम मैं न ल्याबा सैं धन को होबो न होबो इकसार छै।

(ख) पीया म्हाँका जी! थे चाल्या परदेश घरॉ कद आवोला
ओ जी म्हॉका नाव!
गोरी म्हाँ की ए! आवॉ छठडै मास थानै तो तरसावॉला
ओ ए म्हाँ की नार!

पीया म्हॉका जी ! तरसै लीर बलाय पिहर उठ ज्यावॉला
ओ जी म्हॉका नाव !
गारी म्हॉ की ए ! पीहरिया को लोग मसकरी गाळो छै
ओ ए म्हॉ की नार !
पीया म्हॉका जी ! नीची करल्यॉ नाड़र काको ताऊ कहल्यॉला
ओ जी म्हॉका नाव !
गोरी म्हॉ की ए ! भावज बोलै बोल हियौ भर आवै लो
ओ ए म्हॉ की नार !
पीया म्हॉका जी ! रुणझुण बहल जुपाय सासरियै उठ आवॉला
ओ जी म्हॉका नाव ![७]

ढूढाड़ी का जो रूप बूंदी-कोटे में प्रचलित है वह हाड़ोती नाम से प्रसिद्ध है। इसमें और ढूढाडी में नाम मात्र का अंतर है। शब्द-कोष और उच्चारण शैली में थोड़ी-सी भिन्नता है। हाड़ोती में कुछ ऐसे शब्द देखने में आते हैं जिनका सम्बन्ध किसी आर्य या सेमेटिक भाषा से स्थिर नहीं होता। उच्चारण-शैली में कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो न तो संस्कृत और न अर्बी-फारसी में पाई जाती हैं। अनुमान होता है कि अतीत में किसी समय इस भाषा का हूण, गुर्जर अथवा अन्य किसी विदेशी जाति की भाषा से संपर्क रहा है और फल स्वरूप उसी के शब्द इसमें मिल गये हैं। इसमें लिखित साहित्य नहीं है। नमूना—

एक मूंजी के थोड़ी पूंजी छी। ऊंनै सदा डर लागबो करै छो क संसार भर का सारा चोर अर धाड़ैती म्हारा ही धन की आड़ी चोगता-झॉकता रहे छै, न जाणै कद आ'र वै लूट लेगा। ऊंनै अपणो धन आफत सूं बचावा बेई सूना की एक ईंट मोल ली। अपणो सब कुछ बेच-खोज'र ऊंनै वा ईंट घर की एक गपताऊ ठोर में गाड़ दी। पण अतना पै भी संतोस न पा'र ऊ रोजीना ऊं ठोर पै जा'र देखतो क कोई ऊ सूना की ईंट नै चोर'र तो नह ले गियो। ऊनै अशा रोजीना एक ही ठोर पै जातो देख'र ऊंका एक चाकर कै कुछ बैम पड गियो। ऊ डाण देख'र एक दिन ऊ जाग पै गियो अर खोद'र सूना की ईंट नै काड ले गियो। मूंजी जद अपणा ठीक ऊं ही बगत पै ऊं ठोर

७ नाव = नाह = पति। मसकरी गालो = मसखरा। नाड़ = गर्दन। रुणझुण बहल जुपाय = रुनझुन बजता हुआ रथ जुतवाकर।

पें पूग्या जठै सूना की इंट घुसाट राखी छी तो देखी ए इंट नै कोई चोर'र ले गियो। जद ता चता की मारी उ गैल्यो सो हो'र बडा जोर सू रोबा-चल्लाबा लाग्या। ऊं को या रोबा-चल्लाबा सुण'र एक पाड़ोसी ऊं के नखै आया, अर ऊ का दुख के बेई पूछबा लाग्या। आखर म ऊनैऊ करपण कै नाट एक भाटा का टूकडो दे र की—' भाया! अब जादा रोवै—चल्लावै मत। था भाटा का टूकडो ई ही ठाम पे गाड दै अर मन में समझ लै क या थारी सूना की इंट ही गड री छै। क्यूक जद तने या ही बच्यार ली छी कऊं सू काई फायदा न उठावणा ता थारै भावें जसी सूना की इंट छो उसो ही थो भाटा का टूकडा।''

धन ने काम म न लेवै ता धन का होबा अर न होबा एक सारखा ही छे।

मालवी — माळवी समस्त मालवा-प्रान्त की भाषा है, और मेवाड़, मध्य-प्रान्त आदि के भी कुछ भागों में बोली जाती है। अपने सारे क्षेत्र में इसका प्राय. एक ही रूप देखने में आता है। इसमें मारवाडी और ढूँढाड़ी दोनों की विशेषताएँ पाई जाती हैं। कहीं-कहीं मराठी का भी प्रभाव झलकता है। यह एक बहुत कर्णमधुर और कोमल भाषा है। विशेष कर स्त्रियों के मुँह से यह बहुत मीठी लगती है। मालवे के राजपूतों में इसका एक विशेष रूप प्रचलित है जो रागड़ी कहलाता है। यह कुछ कर्कश है। माळवी में भी थोडा-सा साहित्य है। चन्द्रसखी, नटनागर आदि की रचनाओं में इसका कहीं-कहीं अच्छा रूप देखने में आता है। प्राचीन पट्टों-परवानों से भी इसके वास्तविक स्वरूप पर अच्छा प्रकाश पडता है। नमूने—

(क) एक मूँजी रे कनै थाड़ा माल थो। वणी' नै हदाई ओ डर लाग्यो रेतो थो के आखी-दुनिया रा चोर नै डाकू म्हाराज धन पर आँख्यॉ लगायाँ थका है, नी मालम कदी आई नै वी लूटी लेगा। वणे आपणा माल-मत्ता नें ई कट कट ती वचावानै वग रा सब तागड़ा बेचा-बेची करी नै होना री एक इट मोल लीदी। वणी इंट नै वीए घर री एक छाने री जगा मे गाड़ी राखी। पण अतरा पर भी वीनै धीरप नी आई नै रोज वणी जगा पर जाई नै देखतो के कठै होना री वा इंट तो कोई चोरी नै नी ग्यो। वणी नै अणी तरे रोज-रोज एकज जगा पर जातो देखी नै वीरा एक नौकर ने कईक भैम पड़यो। मौका देखी नै ऊ एक दन वणी जगा ग्यो और होना री इंट खोदी नै काढ़ी

ग्यो। मूजी जदी आपगी वधी वगत वर्गा, जगा पाच्यो जटे ईट गडी थकी थी तो देख्यो के इंट नै कोई ग्वोर्ग। ग्या है। पछे तो दुख गे मारे वेंडो वई ने ऊ घणा जोर-जोर ती हागडा पाडा पाडी ने रोवा लागा। वीगा गेवगगा रीकगा हुणी नै एक पाडोमी वी कनै आया नै ई दुग्व गे कारण पूछवा लागा। आखर वणे मूंजी नै भाटा गे एक टुकडा न्ई नै कीयो—"ए भई! अबे गे मती। यो भाटा रो टुकडो वर्गा ज जगा गाडी दे ने मन मे हमजी ले के या थारी होना री ईट ज गडी थकी है। क्यू कै जदी थे या थारी लीदो कै वगी नी कई फायदो नी उठावगा तो थारे भावने ता जमी वा होना री ईट थी वमोज यो भाटा रो टुकडो है।"

वन नै नी वापरे तो धन ग वेगो नी वेगा वरोवर है।

(ख) मिलना जाजो रे मुरारी या की सूरत ऊपर वारी।
जा थे मारो नाम नहीं जाणा मारो नाम वृषभानी।
सूरज सामी पोळ हमारी माणक चोक निशानी।
बृषभान घर दस दरवाजा नहीं चोडे नहीं छाने।
मारे आगन पेड कदम को ऊपर कनक अटारी।
थे जावो काना धेनु चरावा मै जाऊँ जमुना पानी।
या के मारे प्रीत लगी है मारी दुनीया जानी।
चन्द्रसखी ब्रजलाल कृष्ण छव हरी चरण वलहारी।
ऐमी प्रीत निभाजो काना जेसो दूध मे पानी॥

मेवाती

मेवाती अलवर-भरतपुर राज्य के उत्तर-पश्चिमी भाग और दिल्ली के दक्षिण मे गुडगॉव मे बोली जाती है। इस भाषा-क्षेत्र के उत्तर में बॉगड़ू, पश्चिम मे मारवाड़ी एव दूढाडी, दक्षिण में डॉगी और पूर्व मे ब्रजभाषा का प्रचार है। इस पर ब्रजभाषा का प्रभाव बहुत अधिक देखने मे आता है। इसमे भी थोड़ा-सा साहित्य है। चरणदासी पथ के जन्मदाता सत चरणदास और उनकी दो शिष्याओं-दयाबाई और सहजोबाई-की रचनाएँ इसी भाषा मे हैं। परन्तु इस समय वह साहित्य अपने असली रूप मे नही मिलता। मुद्रक-प्रकाशकों ने उसे बहुत भ्रष्ट कर रखा है। नमूने—

(क) एक मॉखीचूस के पे कछु माल-मतो हो। वा लू सदा याई डर बण्यो रह हो के सारी दुनियाँ का चोर और लूटणियाँ मेराई धन की चगेस में हैं,

कहा थाइ जाणे कब लूट लें। या सोच वा नै अपणा माल मत्ता लू बचाण का खातर घर को असबाब कुट्टल बेच एक सोना की ईंट मोल ली। वा ईंट लू बानैं घर का कूणा में एक अवीडी ठौर में गाड दी। पण या पै बी वालू धावस नहीं आई। वा रोजीना वाई अवीडी ठौर पै जाके देखा करै हो कै कोई सोना की इट लू चोर कै ता ना लेगो है। वा लू या तरे हर हमेस जातो देख वाई का नौकर लू कछु सुबो हुयो। उ टहलिया मौको पा एक दिना हुंई रे ठाण पै लूगो। और हूॅं सु सोना की ईंट खोद अपणी आमेज मैं करी। उं माखीचूस हुंई ठौर पै अपणा लाग्या बध्या टैम पे पहुॅंचो तो कहा देखै है कै कोई ईंट लू चोर लेगो है। वा को या अमसोच कै मारे चित चिल्ला सू उतर गो। उ भारी जोर जोर सू बिलख-बिलख कै रोण लगो। वा लू फूट-फूट कै रोतो सुण पोडोसिया नै वा सू रोण की बात पूछी। अखीर में वानै वा मॉखीचूस लू एक रोडो दे कै कही—"भाई! अब रोवै-पुकारै मत या, भाटा का रोडा लू उईं रे ठाण मैं गाड दे और जाण लै कै तेरी सोना की ईंट हुंई गड रही है। क्यूक जब तैनै या पुख्ता इरादो कर लियो है कै वा सू कोई फायदो उठाणो ईं नायता तो लू जिसी सोना की ईंट उसो भॉटा को रोडो"।

धन को मौजू खरच न करण सू धन को होणो न हाणो बराबर है।

(ख) सुपना में छळ ली बन्दी आधी-सी रात
पिया मेरो चौपड को खिलारी रे!
तोड़ू तो मरोड़ू चरखा दे दूॅं तो में आग
चरखो मेरी छाती को जळावा रे!
छोटी सी मफोली जा में छोटा छोटा बेल
छोटो सो बलम गढ वाळो रे!
खेलण लू खिंदा मत सासू बणिया की कै लार
बणिया की नै रूकण सू बैलायो रे।
हाथन मैं पछेली तो पै चूडी कैसे नॉय
दुनिया तो लू राडडी बतावै रे।
काया पै ता मत कर बदी गरब गुमान
गरब ही रब नै गाळौ रे।
मोडी तो लूटादूॅं धवाजै तेरे दरबार
बिछटो तो मिला दै बिणजारो रे[१]।

---

१. आधी-सी रात्रि में चौपड के खिलाडी मेरे प्रीतम ने मुझे स्वप्न में छल लिया। (सपने

डूगरपुर और बाँसवाड़ा के सम्मिलित राज्यों का प्राचीन नाम वागड़ है। वहाँ की भाषा वागडी कहलाती है जो मेवाड़ के दक्षिणी भाग एवं मूंथ राज्य के उत्तरी भाग में भी बोली जाती है।[१०]

वागडी

वागड़ी पर गुजराती का प्रभाव बहुत अधिक है। इसमें 'च' और 'छ' का उच्चारण प्राय. 'स', और 'स' का प्रायः 'ह' होता है। इसमें भी कुछ साहित्य है जो अप्रकाशित है। वागडी के नमूने—

(क) एक सामटा नें थोडोक धन हतो। अेने दाहडी ई बीक लागी रेती कै हेनी जगत ना हगरा मोर नै टाक सागाज धन ऊपर नजर राखी रया है। ने जाणुं कारे आवीनै ई लूटी लइ। अेणे आपडा धन नै आफत हीं बचाववा ना हारु आपटो हुंगरो वेसी करी नै होनानी एक ईंट बनाती लीदी। अेणी ईंट नै अेणे घरनी एक साली जगा मये खोतरी घाली। अपण अटलो करवा उपरे राजी ने थई नै ई दाहडो अेणी जगा ऊपर जाइनै देकतो कै कोई होना नी ईंट नै सारी तो नें लईग्यो है। अेने अेमज दाहडी दाहडी एकज जगा ऊपर जातो देकीनै ऐने एक नौकर नै कयेक शक थ्यो। ई मोको देकीनै एक दाड़ो अेणी जगा ऊपर ग्यो नै खोतरी नै होना नी ईंट काडी लई ग्यो। सामटो दाहडी ना वज जारे अेणी जगा ऊपर ग्यो ज्यँ ईंट हँपाडी हती। अेणे ऐयँ जई ने देक्यो कै ईंट नै तो कोईक चोर सारी लई ग्यो है। तारे दुकनो मारयो गाडा हरको थई नै खूब जोर थकी रोवा ने डाडे करवा लाग्यो। अेनो ई रोवो नै ड़ाडे करवो हामरी नै एक अेनो पाडोई अँने पाये आव्यो नै अेने दुक

से मे अपना चर्खा कातने में व्यस्त था। उसने छलने म मेरा प्रीतम का साथ दिया)। हे छाता चलाने वाले चर्खे! मैं क्या न तुझे तोड़-मरोड़कर आग में दे दूँ? प्रियतम सपने में छोटी-सी मंझोली (यान) म बैठ कर आए। उसके छोटे-छोटे बैल थे और उसको चलाने वाला भी मेरा छोटा-सा बालम था। ऐसे छोटे-से प्रियतम को हे सास! बनिये की लड़की के साथ कभी खेलने को मत भेजना। वह उसे रुकावट देकर बहला लेगी। (सबेरे हाथ में चूड़िया न देख सास ने कहा 'तेरे हाथों म केवल पछेली (गहना विशेष) ही कैसे रह गई। चूड़ियों का क्या हुआ? चूड़िया के बिना दुनिया तुझे विधवा बताएगी। काया का गर्व मत कर। ईश्वर ने सबल गर्व को गाल दिया है। (स्वप्न मे जिस प्रीतम ने छला था)। हे ख्वाजा साहब! उस बिछुड़े प्रियतम से मिला दे। मैं तेरे दरबार में अच्छे पशु भेंट चढाऊँगी।

१० डा० ग्रियर्सन ने वागडी को भीली नाम दिया है। परन्तु उनका दिया हुआ यह नाम असंगत है। कारण कि भीलों की कोई अलग निश्चित भाषा नहीं है। डूगरपुर-बांसवाडा में जो भाषा आमतौर से बोली जाती है उसी का व्यवहार वहा के भील लोग भी करते हैं। सिर्फ उच्चारण आदि की थोडी-सी भिन्नता के कारण वह एक पृथक् भाषा प्रतीत होती है।

नो कारण पूस्यांम । आकर ये अेगा मामटा नै अेक पाणा ना वडका आली, ने क्यू कै—"भाई, हवे नके गना न डांट नके करा । आ पाणा ना वडको अणीज जगा ऊपर गाडा ना नै मन भर्ये हमर्जा लो के ई नमारी हांना नीज ईंट गडेर्ला ई । केम के नमे नर्का करी लीदो है के नमे अेणा थकी कयेग फायदो ने उठाव ना नार नमाग हारु जेवी होनु नी ईंट हे अेवाज आ पाणा ना वडको है"।

धन नै ने वेपरावा थकी धन,ना हा वा नै ने हावा वरावर ज हे ।

(ख) लका ते गढ सोनु वापरेयुरे, के आव्यु वागडिये देसरे
मारी मारा सूँ मारूँ मन रस्यूँ रे ।
केणे देख्यु ने केणे मूलव्युँ रे, केणे खरस्यँ दाम रे,
मारी मारा सुँ मारूँ मन रस्युँ रे ।
जेठे देख्यु ने ससरे मूलव्यु रे, ओजी साहेबे खरस्यँ दाम रे,
मीरा मारा सु मारूँ मन रस्यु रे ।
सोकसी नो बेटो मारो भाइळो रे ए वीरा मने सोनु तोली आळरे
मारी मारा सुँ मारुँ मन रस्युँ रे ।
सानीड़ा रा बटो मारो भाइलो रे, ए वीरा मने मारा घडी आल रे,
मारी मारा सुँ मारुँ मन रस्युँ रे ।
पटुआ रो बेटो मारा भाइलो रे, ए वीग मने मारा गाँठी आल रे,
मारी मारा सुँ मारूँ मन रस्युँ रे ।
जासीडा नो बेटो मारा भाइलो रे ए वीरा मने मूरत जाई आल रे,
मारी मारा सुँ मारुँ मन रस्युँ रे[११]।

लिपि — राज्यस्थानी लिपि अधिकतर देव नागरी लिपि से मिलती है । कुछ अक्षरों की बनावट मे अतर अवश्य है पर यह अन्तर भी अब दिन-दिन मिटता जा रहा है ।

---

११ मेरा मन माला से लगा हुआ है । अत इस माला के लिए लका स वागड देश मे लाना आया है ॥१॥ इस सोने को किसने देखा, किसने मोलाया और किसने दाम खर्च कर खरीदा ॥२॥ जेठ ने देखा, ससुर ने मोलाया और पति ने दाम खर्चकर खरीदा ॥३॥ चौकसी (सोने की परीक्षा करने वाला) का पुत्र मेरा भाई है । अतएव हे भाई ! तू मुझे सोना तोल दे ॥४॥ सुनार का पुत्र मेरा भाई है । अत. हे भाई ! तू मुझे सोना घड दे ॥५॥ पटुवे का पुत्र मेरा भाई है ! अत. हे भाई तू मुझे माला गाँठ दे ॥६॥ ज्योतिषी का पुत्र मेरा भाई है । अत. हे भाई ! तू मुझे (माला पहिनने का) महूरत देख दे ॥७॥

यह लिपि लकीर खींचकर वसीट रूप मे लिखी जाती है। राजकीय अदालतों आदि मे इस लिपि का प्रायः विशुद्ध प्रयोग होता है। परन्तु महाजन लोग अपने वही-खातों मे इसका शुद्ध प्रयोग नहीं करते। उनकी इस अशुद्ध लिपि-शैली का नाम ही जुदा पड गया है। इसे महाजनी अथवा बाणियावटी लिपि कहते है। और इसके अक्षर 'मुड़िया' कहलाते है। इस मे मात्राएँ नहीं रहती। यह एक तरह शॉर्टहैंड का काम देती है।

कहा जाता है कि इन मुड़िया अक्षरों के आविष्कर्ता मुगल सम्राट् अकबर के अर्थ-सचिव राजा टोडरमल थे[१२]। ऐसा कहनेवाले अपने कथन की पुष्टि म निम्नलिखित दोहा भी उद्धृत करते हैं जिसे वे खुद टोडरमल का बनाया हुआ बतलाते हैं—

देवनागरी अति कठिन, स्वर व्यजन व्यवहार।
नाते जग के हित सुगम, मुड़िया किया प्रचार ॥

डिंगल

कहा जा चुका है कि कि राजस्थानी का एक रूप डिंगल नाम से भी प्रसिद्ध है। यह नाम पश्चिमी राजस्थानी अर्थात् मरुभाषा या मारवाडी के साहित्यिक रूप को दिया गया है और बहुत प्राचीन नहीं है। कोई उन्नीसवीं शताब्दी से यह व्यवहार मे आने लगा है, और जोधपुर के कविराजा बाँकीदास के 'कुकवि बत्तीसी' नामक ग्रथ मे, जो स० १८७१ मे लिखा गया था, इसका सर्वप्रथम प्रयोग देखा जाता है[१३]—

डींगलियाँ मिलियाँ करै, पिंगल तणौ प्रकास।
ससकृती है कपट सज, पिंगल पढियाँ पास ॥

बाकीदास के बाद उनके भाई या भतीजे बुधाजी ने अपने 'दुवावेत' मे दो-तीन जगह इस शब्द का प्रयोग किया है:—

सब ग्रथ समेत गीता कूँ पिछाँणै।
डींगल का तो क्या सस्कृत भी जाँणै ॥१५५॥

---

१२ बालचन्द मोदी, देश के इतिहास में मारवाड़ी जाति का स्थान, पृ० २३२

१३ बाँकीदास ग्रन्थावली, भाग दूसरा, पृ० ८१

और भी साँदुओं में चैन अरु पीथ ।
डींगल में खूब गजब जस का गीत ॥१५६॥
और भी आसीयू में कवि वक ।
डींगळ पागळ सस्कृत फारसी मे निसक ॥१५७॥

तब से बराबर इस नाम का प्रयोग होता आ रहा है और लोग मारवाड़ी भाषा-कविता के लिए इसी शब्द का प्रयोग करते विशेष देखे गये हैं ।

कुछ लोग डिंगल का मारवाडी से भिन्न चारणा की एक अलग ही भाषा बतलाते हैं । परन्तु उनका यह विचार भ्रमपूर्ण है । वस्तुतः डिंगल और मारवाड़ी में उतना ही अतर है जितना साहित्यिक हिन्दी और बोलचाल की हिन्दी मे है ।

मारवाड़ी का डिगल नाम कैसे और क्या पडा, इन प्रश्नो पर बड़ा विवाद है और अपनी-अपनी पहुँच तथा बुद्धि के अनुसार लोगों ने भिन्न-भिन्न मत दिये हैं । प्रधान-प्रधान मत और उनकी समीक्षाएँ नीचे दी जाती हैं ।

पहला मत—डिंगल शब्द का असली अर्थ अनियमित अथवा गँवारू था । ब्रजभाषा परिमार्जित थी और साहित्य-शास्त्र के नियमो का अनुसरण करती थी । पर डिंगल इस सम्बध मे स्वतत्र थी । इसलिये इसका यह नाम पडा ।[१४]—डा० एल० पी० टैसीटरी

समीक्षा—डा० टैसीटरी ने डिंगल का गँवारू का द्योतक मान कर अपने मत का प्रतिपादन किया है । परन्तु उनकी यह मान्यता अयुक्त है । कारण कि प्रारभ में डिंगल गँवारों की भाषा नही, बल्कि पढ़े-लिखे चारण-भाटों की भाषा थी, जिनका और जिनकी कृतियों का राजदरबारो मे बड़ा सम्मान हुआ करता था । और, पढ़े-लिखे लोगो तथा राजदरबार की भाषा कभी गँवारू नहीं कही जा सकती । दूसरे उनका यह कहाना भी ठीक नहीं है कि डिंगल-भाषा अनियमित और ब्रजभाषा के मुकाबले मे अमार्जित थी । अर्थात् साहित्य-शास्त्र के नियमों से मुक्त थी । डिगल के प्राचीन ग्रथों तथा फुटकर गीतादि से स्पष्ट विदित होता है कि व्याकरण की विशुद्धता के साथ-साथ छद, रस, अलकार आदि काव्यागों का डिंगल कविता में भी उतना

---

१४. Journal and Proceedings of the Asiatic Society of Bengal, Vol X, p. 376

ही ध्यान रखा जाता था जितना ब्रजभाषा की कविता में। हाँ, शब्दों की तोड़-मरोड़ ब्रजभाषा की अपेक्षा डिंगल में अवश्य कुछ अधिक पाई जाती है, पर इसीलिए उसे गँवारू कह बैठना हमारे खयाल से युक्ति-संगत प्रतीत नहीं होता है।

दूसरा मत—प्रारंभ में इसका नाम डगळ था, पर बाद में पिंगल शब्द के साथ तुक मिलाने के लिये डिंगल कर दिया गया। डिंगल किसी भाषा का नाम नहीं है। कविता-शैली का नाम है।[१५]—**हरप्रसाद-शास्त्री**

समीक्षा—शास्त्री-जी ने डिंगल शब्द की व्युत्पत्ति डगळ से बतलाई है और अपने मत के समर्थन में एक प्राचीन छंद का निम्नलिखित थोड़ा-सा अंश भी उद्धृत किया है जो उन्हें जोधपुर के कविराजा मुरारिदान द्वारा प्राप्त हुआ था। इस छंद का रचना-काल शास्त्रीजी ने चौदहवीं शताब्दी बतलाया है—

> दीस जंगल डगल जेथ जल बगल चाटे।
> अनहुता गल दियै गला हुता गल काटे॥

ज्ञात होता है, यह पूरा छंद शास्त्रीजी के देखने में नहीं आया। इसका अर्थ भी उन्होंने नहीं दिया। केवल यही कहकर छोड़ दिया है कि 'इससे स्पष्ट है कि जंगल देश अर्थात् मरुदेश की भाषा डिंगल कहलाती थी'। यदि शास्त्रीजी को पूरा छंद पढ़ने को मिल जाता तो डिंगल की उत्पत्ति डगळ से बतलाने की भूल उनसे न हुई होती। क्योंकि इसमें भाषा का कहीं जिक्र ही नहीं है। न यह चौदहवीं शताब्दी का लिखा हुआ है। यह अल्लूजी चारण का लिखा हुआ है जो १७ वीं शताब्दी में हुए हैं। इस में ईश्वर की सर्व-शक्तिमत्ता का बखान किया गया है। पूरा छप्पय विशुद्ध रूप में यहाँ दिया जाता है—

> दीसै जंगळ-डगळ जेथ जळ बगलाँ चाटै।
> अणहूँता गळ दियै, गळा हूँता गळ काटै॥
> मच्छगळागळ माँहि, ग्वाळ है गळी दिखाळै।
> गळी डगळ फळ गजै, गजी डाळाँ फळ गाळै॥

---

[१५] Preliminary Report on the Operation in search of Mss. of Bardic Chronicles, p 15.

नगळै असुर सुर नाग नर, आपरा चै कुळ ऊधरै।
अनत रे हाथ मगळ-अमगळ, कई भगळ विद्या करै[१६]

इससे स्पष्ट है कि डिंगल का डगळ से कोई संबंध नहीं है। आगे शास्त्री जी ने डिंगल को एक भाषा नहीं, बल्कि काव्य की एक शैली मात्र माना है। परन्तु यह भी उनकी स्पष्ट गलती है। डिंगल एक बहुत उन्नत भाषा है जिसका पृथक् व्याकरण, पृथक् छन्द-शास्त्र एवं पृथक् काव्य परिपाटी है और जो हजारों शब्द-मुहावरों से समृद्ध है। एक समय था जब यह सारे राजस्थान की साहित्यिक भाषा थी।

तीसरा मत — डिंगल में 'ड' वर्ण बहुत प्रयुक्त होता है। यहाँ तक कि यह डिंगल की एक विशेषता हो गई है। 'ड' वर्ण की इस प्रधानता को ध्यान में रखकर ही पिंगल के साम्य पर इस भाषा का नाम डिंगल रखा गया है। जिस प्रकार बिहारी लकार प्रधान भाषा है उसी तरह डिंगल भी डकार प्रधान भाषा है।[१७]—गजराज ओझा

समीक्षा —यह मत भी निराधार है। डिंगल के दो चार पद्यों में कहीं 'ड' वर्ण की अधिकता देखकर उसे इसकी विशेषता बतलाना और उसी बुनियाद पर इसका डिंगल नाम पड़ने की क्लिष्ट कल्पना कर लेना सिवा तर्कदोष के और कुछ नहीं है। संसार में अनेक भाषाएँ प्रचलित हैं। परन्तु किसी खास वर्ण की प्रधानता के कारण किसी भाषा का कोई नाम रखा गया हो ऐसा अभी तक सुनने में नहीं आया। बिहारी में लकार की प्रधानता शायद हो। पर इससे क्या हुआ? इसका प्रभाव उसके नामकरण पर तो कुछ नहीं पड़ा। कहलाती तो वह 'बिहारी' ही है। दूसरी आपत्ति इस मत को स्वीकार कर लेने में यह है कि हमें मान लेना पड़ता है कि पिंगल के साम्य पर डिंगल शब्द का निर्माण हुआ, जिसका कोई प्रमाण नहीं है।

---

१६ जहाँ उजाड़ और मिट्टी के ढेर दिखाई देते हैं वहाँ चारों ओर बगला नक पानी बढ़ आता है। जिनके पास भोजन नहीं है उनको वह भोजन देता है और जिनके पास भोजन है उनके पास से भोजन निकाल लेता है। अराजकता के समय वह ग्वाला बनकर मार्ग दिखाता है। वह गला हुई डालियों पर फल लगाता है और जिन डालियों पर फल लगे हुए होते हैं उनको गला देता है। वह असुर, सुर, नाग और नर को निगल जाता है और अपने कुल अर्थात् भक्त समुदाय को बचा लेता है। मगल और अमगल ईश्वर के हाथ है। वह अनेक इन्द्रजालिक क्रियाएँ करता रहता है।

१७ नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग, १४, पृ० १२७-१४२

चौथा मत—डिंगल शब्द डिम+गळ से बना है। डिम का अर्थ डमरु की ध्वनि और 'गळ' का गला होता है। डमरु की ध्वनि रणचंडी का आह्वान करती है तथा वह वीरों को उत्साहित करनेवाली है। डमरु वीर रस के देवता महादेव का वाजा है। गले में जो कविता निकलकर डिम्—डिम् की तरह वीरों के हृदय को उत्साह से भरदे उसी को डिंगल कहते हैं। डिंगल भाषा में इस तरह की कविता की प्रधानता है। इसलिए वह डिंगल नाम से प्रसिद्ध हुई[१८]। —**पुरुषोत्तमदास स्वामी**

समीक्षा—महादेव को वीर रस का देवता और डमरू की ध्वनि को उत्साह वर्धक मानकर इस मत की कल्पना की गई है। पर न तो महादेव वीर रस के देवता हैं, न डमरु की ध्वनि कहीं उत्साह-वर्धक मानी गई है। वीर रस के देवता महादेव नहीं, इन्द्र हैं। महादेव रौद्र रस के अधिष्ठाता हैं। फिर डमरु की ध्वनि की भाँति उत्साह- वर्धक और गले से निकली हुई कविता का गठबंधन तो विलकुल युक्ति शून्य और हास्यास्पद है। अतएव इस मत का निराधार होना स्पष्ट सिद्ध है।

पाँचवाँ मत—डिंगल के कवि पिंगल को पांगळी (पंगु) भाषा मानते हैं और पिंगल के मुकावले में डिंगल को उड़नेवाली भाषा कहते हैं। क्योंकि पिंगल की अपेक्षा डिंगल के व्याकरण, छंदशास्त्र आदि के नियम अधिक सुगम हैं और कवि की इच्छानुसार शब्दों का मनमाना प्रयोग करने की सुविधा भी इस में बहुत है। डगळ शब्द से जो डिंगल भाषा की उक्त विशेषताओं का सूचक है डिंगल शब्द वना है। डग = पंख। ल = लिये हुए। डगल = पंख लिये हुए = पंखवाली = उड़नेवाली = स्वतंत्रता में चलनेवाली अर्थात् सुगमता से काम में आनेवाली।[१९]—उदयराज

समीक्षा—डिंगल भाषा के व्याकरण, छन्दशास्त्र आदि के नियमों को पिंगल के व्याकरण, छन्दशास्त्र आदि के नियमों से अधिक सरल बतलाकर इस मत की सार्थकता सिद्ध करने की कोशिश की गई है। परन्तु वस्तु-स्थिति दूसरी ही है। विलकुल इसके विपरीत है। सच तो यह है कि डिंगल-व्याकरण और छंद-शास्त्र आदि के नियम पिंगल व्याकरण और छन्दशास्त्र आदि के नियमों से अधिक सरल नहीं, वल्कि अधिक जटिल हैं। साथ ही संख्या में

---

१८ नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १४, पृ० २५५

१९ क्षात्र-धर्म-संदेश, वर्ष १, अंक ६-७, पृ० १८

भी ज्यादा हैं। उदाहरण के लिए छंदों ही को लीजिए। पिंगल में जितने छन्द हैं उतने तो डिंगल में हैं ही। इनके अलावा गीत जाति के ६४ छन्द और भी हैं जिनका पिंगल में कहीं पता नहीं है। जैसे—पालवणी, भापटी आदि। इसके सिवा डिंगल में वैणसगाई का नियम ऐसा कठोर है कि जिसके सामने पिंगल काव्य के सब नियम-बंधन मिलकर भी कुछ नहीं के बराबर है। डिंगल के कवि अपने काव्य-ग्रन्थ आदि इसलिए इस भाषा में नहीं लिखते थे कि व्याकरण, छंद आदि की दृष्टि से यह पिंगल से अधिक सुगम थी, बल्कि इसलिए लिखते थे कि यह उनके प्रदेश की भाषा थी। यदि डिंगल वास्तव में पिंगल से सरल होती तो राजस्थान से बाहर के पिंगल के कवि भी अवश्य इस भाषा में काव्य-रचना करते। परन्तु किसी ख्यातनामा कवि ने ऐसा नहीं किया। आगे 'डगळ' से डिंगल की व्युत्पत्ति बतलाई गई है जो भाषाशास्त्र की दृष्टि से अग्राह्य है। भाषाशास्त्रानुसार किसी शब्द में मात्रा और अनुस्वार दोनों की वृद्धि एक साथ नहीं होती। इनका लोप अवश्य होता है। जैसे, डिंगल अथवा डींगळ का डगळ तो हो सकता है पर डगळ का डिंगल या डींगळ नहीं हो सकता। अतः यह मत भी आधार-शून्य एवं खींचातानी का है और भाषाशास्त्र के सर्वसम्मत सिद्धान्तों के विरुद्ध भी है।

इनके अतिरिक्त दो एक मत और भी राजस्थान में प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए कुछ लोग इसे 'डिंम+गळ' से कुछ 'डिंगी+गळ' से और कुछ 'डॉग' से बना हुआ बतलाते हैं। स्वर्गीय पंडित रामकरणजी आसोपा और ठाकुर किशोरसिंहजी बारहठ ने इसकी उत्पत्ति क्रमशः 'डगि' और 'डींड' धातुओं से बतलाई है। डा० ग्रियर्सन और डा० श्यामसुन्दरदास ने लिखा है कि जो लोग व्रज भाषा में कविता करते थे उनकी भाषा पिंगल कहलाती थी, और इससे भेद करने के लिए मारवाड़ी भाषा का उसी की ध्वनि पर गढ़ा हुआ डिंगल नाम पड़ा है। परन्तु सार की बात इनमें भी कुछ नजर नहीं आती। इसलिए इनके विषय में यहाँ कुछ कहना अपना और पाठकों का समय नष्ट करना है।

यथार्थतः 'डिंगल' शब्द डींगळ का परिवर्तित रूप है। प्रारम्भ में जिस समय मारवाड़ी के लिए इस शब्द का प्रयोग होना शुरु हुआ उस समय यह 'डींगळ' ही बोला और लिखा जाता था। बाद में धीरे-धीरे 'डिंगल' हो गया जिसका मूल कारण डा० ग्रियर्सन आदि अंग्रेज़ लेखक हैं। 'डिंगल' शब्द के उच्चारण से अपरिचित होने के कारण इन्होंने 'पिंगल' और 'डींगळ' के उच्चारण में कोई भेद नहीं किया। और अपने ग्रंथों में दोनों को हिज्जः एक ही तरह से लिखी,

Pingala और Dingala। Pingala का उच्चारण हिन्दीवाले 'पिंगल' करते आ रहे थे। इसीलिए यह समझकर कि 'डींगळ' भी इसी तरह बोला जाता होगा उन्होंने इसे 'डिंगल' बोलना और लिखना शुरू कर दिया। राजस्थान के पढ़े-लिखे लोगों ने इनका अनुकरण किया और अब यह शब्द इसी रूप में चल पड़ा है। परन्तु राजस्थान के वृद्ध राजपूत-चारणों में, जिनमें डिंगल साहित्य का विशेष आदर और प्रचार है, इसका शुद्ध रूप आज भी ज्यों का त्यों सुरक्षित है। वे लोग इसका उच्चारण 'डिंगल' कभी नहीं करते, 'डींगळ' ही करते हैं।

यह एक अनुकरणात्मक शब्द है जो शीतल, बाकल, धूमल आदि शब्दों के अनुकरण पर डिंगल साहित्य में वर्णित अत्युक्ति-पूर्ण[२०] वृत्तों को ध्यान में रखकर उसकी इस विशेषता के द्योतनार्थ गढ़ लिया गया है। इसकी उत्पत्ति 'डींग' शब्द के साथ 'ल' प्रत्यय जोड़ने से हुई है। और इसका अर्थ है, डींग से युक्त अर्थात् अतिरंजना-पूर्ण। इस तरह शब्द के साथ ल प्रत्यय जोड़कर बनाये हुए कई शब्द और भी डिंगल भाषा में देखने में आते हैं। जैसे—

> अकबरिये इक बार, दागळ की सारी दुनी।
> अणदागळ असवार, चेटक राण प्रतापसी[२१] ॥१॥
>
> —विरुदछहत्तरी,

---

[२०] In fact, generally speaking, there is probably no bardic literature in any part of the world, in which truth is so marked by fiction or so disfigured by hyperboles, as in the bardic literature of Rajputana In the magniloquent strains of a charan, everything takes a gigantic form, as if he was seeing the world through a magnifying glass every skirmish becomes a Mahabharata, every little hamlet a Lanka, every warrior a giant who with his arms upholds the sky --Dr L P Tessitori (Journal and Proceedings of the Asiatic Society of Bengal, Vol XIII 1917, p 228)

[२१] अकबर ने एक ही बार में सारी दुनिया को (दागल) कलंकयुक्त अथवा दागदार बना दिया। सिर्फ चेटक घोड़े का असवार राणा प्रतापसिंह (अणदागल) बिना दागवाला है।

काटळ आवध मूझ कर मन मढाइण अभ्र।
आवध राखै ऊजळा, मैला ज्याग मन्न[22] ॥२॥
—कायरबावना

बोलचाल की मारवाड़ी की अपेक्षा यह साहित्यिक भाषा डिंगल समझने में कुछ कठिन थी और संस्कृत जैसी सुघटित भी न थी। अत अत्युक्ति के भाव के अतिरिक्त दुरूहता एव अनगढ़ता के भी भाव इस 'डिंगल' शब्द के साथ लिपटे हुए हैं। परन्तु सामान्य जनता इसके ये तीनों अर्थ ग्रहण नहीं कर पाती। सिर्फ वही लोग कर पाते हैं जो सुशिक्षित हैं और जिनका डिंगल भाषा व साहित्य से गहरा परिचय है। आमजनता इसमें केवल अनगढ़ता का अर्थ लेती है। क्योंकि अन्य प्रसगों में इस शब्द का प्रयोग वह बहुधा इसी अर्थ में करती है। जैसे—'यो तो एक डींगळ बात है,' 'मैं तो डींगळ मनख हूँ' इत्यादि। अस्तु।

डा० टैसीटरी ने डिंगल भाषा के दो स्वरूप माने हैं (१) प्राचीन डिंगल और (२) अर्वाचीन डिंगल। लगभग तेरहवीं शताब्दी के मध्य से लेकर सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक की डिंगल को उन्होंने प्राचीन डिंगल और सत्रहवीं शताब्दी के मध्य से लेकर आज तक की डिंगल को अर्वाचीन डिंगल बतलाया है[23]। यह स्वरूप भेद और सीमा-निर्देश उन्होंने डिंगल में प्रयुक्त कुछ शब्दों की हिज्जे और उच्चारण संबंधी कुछ विशेषताओं के आधार पर किया है, व्याकरण के आधार पर नहीं। उनके कथनानुसार प्राचीन डिंगल और अर्वाचीन डिंगल में मुख्य भेद यह है कि प्राचीन डिंगल में जहाँ 'अइ' और 'अउ' का प्रयोग होता था वहाँ अर्वाचीन डिंगल में क्रमशः 'ऐ' और 'औ' का प्रयोग होता है। अपनी इस बात को सिद्ध करने के लिए उन्होंने अपने सपादित प्राचीन डिंगल ग्रथों तथा फुटकर गीतादि में सर्वत्र 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' और 'औ' के स्थान पर 'अउ' का प्रयोग किया है और माथै, चकवै, जैतसी, राठौड़, रौद्र, चित्तौड़, फौज, चूंडौ, जोधौ

प्राचीन और अर्वाचीन डिंगल

[22] (कोई कायर अपनी स्त्री से कहता है।) मेरे हाथ में (कातल) जगार हो रहा है और मेरा मन आकाश-गगा के समान स्वच्छ है। अपने शस्त्रों को उज्ज्वल अथवा मजे हुए तो वे लोग रखते हैं जिनके मन मैले हैं।

[23] वचनिका राठौड़ रतनसिंह जी री महेसदासौतरी, भूमिका पृ० ४।

इत्यादि शब्दों को क्रमश: माथट, चकवइ, जइतसी, गठउड़, रउद्र, चितउड, चूडउ, जोधउ इत्यादि कर के लिखा है।

भाषा एक परिवर्तन शील वस्तु है। अन्य वस्तुओं की तरह इसका रूप भी सर्वदा बदलता रहता है। इसलिए आज की और आज से २००-४०० वर्ष पहले की डिंगल में अन्तर होना स्वाभाविक है। परन्तु जिस आधार पर डॉ० टैसीटरी ने प्राचीन और अर्वाचीन डिंगल का भेद खड़ा किया है वह उनका मनमाना और डिंगल की प्रकृति एवं उच्चारण शैली के विपरीत है। पहली बात तो यह है कि डिंगल में साहित्य-रचना का श्री गणेश ही पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में सं०१४६० के बाद हुआ है और इसलिए प्राचीन डिंगल का चार सौ वर्षों का जो काल (सं० १२५७ सं० १६५७) उन्होंने निश्चित किया है वह गलत है। इस काल को अधिक से अधिक दो सौ वर्षों का माना जा सकता है। दूसरे, शब्द-रचना का उनका उक्त तरीका भी ठीक नहीं है। सिर्फ डिंगल का प्राकृत-अपभ्रंश से संबंध बतलाने के लिए इसकी कल्पना कर ली गई है। इसमें सन्देह नहीं कि डिंगल अपभ्रंश के द्वारा प्राकृत से निकली है। परन्तु इस बात को सिद्ध करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि डिंगल में प्राकृत-अपभ्रंश की सभी विशेषताओं के विद्यमान होने की क्लिष्ट कल्पना करली जाय। हिंदी की तरह डिंगल की भी एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि इसमें भी जो शब्द जिस तरह बोला जाता है ठीक उसी तरह लिखा भी जाता है। राजस्थान में कोई भी जइतसी, राठउड आदि नहीं बोलता। न कोई लिखता है। सभी जैतसी, राठौड आदि लिखते और बोलते हैं। यदि कोई यह कहे कि इनका उच्चारण आज कल तो जइतसी, राठउड़ आदि नहीं होता, पर प्राचीन काल में शायद होता हो तो इसका उत्तर यह है कि डिंगल के बहुत से प्राचीन ग्रंथ एवं फुटकर पद्य मिल चुके हैं और उनमें जैतसी, राठौड़ आदि रूप ही लिखे मिलते हैं। यह दूसरी बात है कि प्राकृत अपभ्रंश से मिलते जुलते प्राचीन रूपों का व्यवहार भी डिंगल के कवियों ने परम्परा के विचार से यत्र-तत्र किया हो। परतु इन थोडे से प्राचीन रूपों के आधार पर कोई व्यापक सिद्धान्त कदापि स्थिर नहीं किया जा सकता। यदि डॉ० टैसीटरी ने अपना यह शब्द विधान कुछ शब्दों तक ही सीमित रखा होता तब भी कुछ ठीक था। परन्तु उन्होंने तो चित्तोड़, नागौर, जोधौ इत्यादि व्यक्तिवाचक सज्ञाओं तक को चितउड़, नागउर, जोधउ इत्यादि बनाकर उनके प्रकृत रूप को विकृत कर

दिया है। अच्छा हुआ कि दो-एक व्यक्तियों को छोडकर राजस्थान के विद्वानों में से किसी ने डा० टैसीटरी की चलाई हुई इस गलत पद्धति का अनुकरण नहीं किया और यह एक पोथियों ही की बात रह गई।

डिंगल भाषा से संबंधित जातियाँ

डिंगल भाषा का उदय और उत्थान होने से पूर्व राजस्थान के राज दरबारों में मुख्यतः संस्कृत भाषा का दौर-दौरा था। प्रत्येक राजसभा में संस्कृत के पंडित और कवि रहा करते थे जो राजकुमारों को शिक्षा देते और प्रशस्तियाँ आदि लिखते थे। परन्तु बाद में जब डिंगल अच्छी तरह से विकसित होकर प्रौढावस्था को पहुँच गई तब इसका भी राजदरबारों में प्रवेश हुआ और संस्कृत के साथ-साथ इसे भी सम्मान मिलने लगा। डिंगल को राजसभाओं में पहुँचाने में मुख्य हाथ चारण आदि कुछ विशेष जातियों के लोगों का था जो राजा-महाराजाओं की प्रशंसा में ग्रंथ तथा फुटकर गीत आदि लिखते और उन्हें सुना-सुनाकर अपनी उदरपूर्ति करते थे। धीरे-धीरे डिंगल का प्रचार बढा और ब्राह्मण,क्षत्रिय आदि अन्य जातियों के लोग भी इसमें साहित्य-रचना करने लगे। परन्तु इन दूसरी जातियों का रचा हुआ डिंगल साहित्य बहुत थोड़ा है। वस्तुत डिंगल भाषा साहित्य-सृजन का मुख्य श्रेय चारण[२४] जाति को और उसके बाद भाट,राव, मोतीसर ढाढी जातियों को है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जातियाँ विश्व-विख्यात हैं और इनके विषय में अनेक ग्रंथ लिखे जा चुके हैं। परन्तु चारण,भाट, राव आदि जातियों के बारे में लोगों में बड़ा भ्रम फैला हुआ दीख पड़ता है। कोई-कोई तो चारण और भाट जाति को एक ही समझते है। इतना ही नहीं, जहाँ कहीं अंग्रेजी के 'बार्ड' शब्द, का अनुवाद करना होता है वहाँ कुछ लोग इसका अनुवाद 'चारण' और कुछ 'भाट' करते हैं। वस्तुतः ये दोनों ही पर्याय गलत हैं। क्योंकि अंग्रेजी का 'बार्ड' शब्द जहाँ किसी जाति विशेष का सूचक नहीं है वहाँ चारण' और 'भाट' शब्द दो भिन्न जातियों के सूचक हैं। इस तरह की

---

२४ राजस्थानी के प्राचीन ग्रंथों में चारण के लिए ईहग, कव, कवि, कविजण, गढवी गुणियण, ताकव, दूथी, नीपण, पात, पोलपात, बारहठ, भाणव, मागण, रेणव, वीदग और हेनव शब्दों का प्रयोग भी देखने में आता है।

भ्रान्तियों को दूर करने के लिए डिंगल भाषा-साहित्य से विशेष सम्बन्ध रखनेवाली उल्लिखित पाँचों जातियो का सक्षिप्त परिचय हम यहाँ देते हैं।

चारण

"चारयन्ति कीर्तिम् इति चारणाः"। अर्थात् कीर्ति का सचार करते हैं इसलिए इनकी सज्ञा चारण है। यह एक बहुत प्राचीन जाति है। वाल्मीकि रामायण, महाभारत, और श्रीमद्भागवत आदि पुराणो मे अनेक स्थानों पर इस जाति का उल्लेख मिलता है। स्वर्गीय चारण इतिहासवेत्ता कविराजा श्यामलदास ने अपने "वीरविनोद" नामक ग्रथ मे अपनी जाति का परिचय देते हुए लिखा है कि 'यह जाति सृष्टि सृजन-काल से पाई जाती है, क्योकि हमारे भारतवर्ष का पहिला मुख्य शास्त्र वेद माना गया है उसमे भी चारण जाति का नाम मिलता है [२५]। श्यामलदास का सकेत यजुर्वेद के इस मत्र की ओर है—

यथेमा वाच कल्याणीमावदानिजनेभ्यः
ब्रह्मराजन्याभ्या शुद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणायच। [२६]
अध्याय २६, म० २

परन्तु इसका अर्थ उन्होंने गलत समझा है। 'चारणाय' शब्द यहाँ चारण जाति का द्योतक नही है। वेदो के सुप्रसिद्ध तीनो भाष्यकारों-सायण, उव्वट और महीधर-ने इसका च × अरणाय पदच्छेद करके 'अरणाय' का अर्थ 'प्रिय न लगनेवाले' किया है। प्रसग और विषयानुक्रम को देखते हुए इन विद्वानो के इस अर्थ मे किसी प्रकार की शका व मतभेद की गुजाइश नही है।

अतीत मे किसी समय यह जाति गन्धमादन पर्वत पर रहती थी। जब महाराज पृथु ने यज्ञ किया तब उन्होंने चारणों को भी उसमे सम्मिलित होने के लिए बुलाया, और यज्ञ की समाप्ति पर उनको तैलग देश दक्षिणा मे दिया। तब से ये लोग गंधमादन पर्वत को छोड़कर तैलग देश मे रहने लगे। कोई आठवी शताब्दी तक ये तैलग देश मे रहे। बाद मे सिन्ध प्रान्त मे जाकर बस गये जहाँ से धीरे-धीरे कच्छ, काठियावाड़, राजस्थान, मालवा आदि प्रान्तो मे फैले हैं। राजस्थान मे इनकी सब से अधिक सख्या मारवाड़ मे है। परन्तु मेवाड, जयपुर, कोटा, बूँदी आदि अन्य रियासतो में भी ये बहुत संख्या मे पाये जाते हैं।

---

२५ वीरविनोद, प्रथम भाग, पृ० १६८

२६ मैं जिस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र तथा वैश्य और अपने प्रिय लगनेवाले और (अरणाय) प्रिय न लगनेवाले जनों के लिए इस कल्याणकारिणी वाणी को बोलूँ।

चारण जाति चार भागों में विभक्त है -- मारू, काछेला, सोरठिया और तुम्बेल। इनके ये नाम भिन्न-भिन्न प्रान्तों मे बसने के कारण पड गये हैं। उदाहरणार्थ, मारवाड में रहने के कारण वहाँ के चारण मारू और कच्छ में रहने के कारण वहाँ के काछेले कहलाने लगे हैं। राजस्थान मे मारू चारण अधिक मिलते हैं। इनकी कई शाखा-प्रशाखाएँ हैं। जैसे आशिया, टापरिया, रोहड़िया इत्यादि।

चारण लोग अपने को चार वर्णों से बाहर देव जाति मे मानते हैं। ये शाक्त मतावलंबी हैं, देवी को जोगमाया के नाम से पूजते हैं और अपने ही में से बहुत सी औरतों को शक्ति अर्थात् देवी का अवतार मानते हैं और उनकी पूजा भी देवियों के समान करते हैं। कहते हैं कि इस जाति में कई लाख देवियों का जन्म हुआ है जिनमें सब से पहली देवी हिंगुलाज मानी जाती हैं। इन देवियों में करणीजी का स्थान सब से ऊँचा माना गया है। करणी जी की शपथ चारणों मे बहुत प्रामाणिक समझी जाती है। चारण लोग अपनी संताना के नाम भी कभी-कभी इन देविया के नाम पर रखते हैं। जैसे, हिंगुलाजदान, करणीदान, आवड़दान आदि। ये नाम क्रमशः हिंगुलाज, करणी, आवड आदि इनकी आराध्य देवियो के नाम पर रखे गये है।

राजस्थान के चारणों की रहन-सहन, रीति-रिवाज, वेष-भूषा, खान-पान, आचार-व्यवहार आदि सब यहाँ के राजपूतो से मिलते-जुलते हैं। केवल एक बात मे भेद है। राजपूतों मे ज्येष्ठ पुत्र अपने पिता की सम्पत्ति का अधिकारी होता है और छुटभाइयों को उनकी आजीविकार्थ कुछ मिल जाता है। परतु चारणों में पिता की सम्पत्ति का बँटवारा सभी पुत्रों मे बराबर होता है। छोटे बडे का कोई लिहाज नहीं रखा जाता।

चारण राजपूतों की याचक जाति है। राजपूतों को छोड़कर इस जाति के लोग किसी दूसरी जाति से नही माँगते। राजपूत भी चारणों को बडी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं और 'भाभा', 'बारहठजी'[२७] आदि आदर-सूचक

---

[२७] बारहठ उन चारणों को कहते हैं जिनको राजपूत लोग अपना पोल (सं० प्रतोली) का नेग देते हैं। जब कोई वर किसी के घर विवाह करने को जाता है तब दुलहिन के पिता का चारण उसके प्रवेश द्वार पर खड़ा रहता है। वर जिस हाथी अथवा घोडे पर चढ़कर तोरण बदाता है उस हाथी अथवा घोड़े को लेने का अधिकार उस चारण का होता है। 'बार' दरवाजे को कहते हैं, और दरवाजे पर हठ कर के नेग लेनेवाला चारण बारहठ कहलाता है। डिंगल साहित्य में प्रयुक्त 'बारठ' 'बारैठ', शब्द इसी 'बारहठ' के रूपान्तर हैं।

शब्दों द्वारा उनको सबोधित करते हैं। राजस्थान की छोटी-बडी सभी रियासतों मे राजपूतों ने चारणों को गॉव दे रखे हैं जिनसे इनका जीवन निर्वाह होता है। राजस्थान में शायद ही कोई ऐसा अभागा चारण मिलेगा जिसके पास दो चार बीघा जमीन न हो। कइयो के पास तो दस-दस बीस-बीस हजार की वार्षिक आय के बडे बडे गॉव हैं। जोधपुर राज्य का मूँधियाड़ ठिकाना तो लगभग साठ हजार का माना जाता है। इन गॉवों पर इनको किसी प्रकार का कोई लगान नही देना पड़ता। राजस्थान में इनको 'माफी के गॉव' कहते हैं। अकेले जोधपुर-राज्य में चारणों के लगभग पौने चार सौ गॉव हैं जिनसे इनको अनुमानतः चार लाख रुपयों की वार्षिक आमदनी होती है।

इसके अलावा जब कभी किसी प्रतिष्ठित राजपूत के घर विवाह आदि का कोई शुभ अवसर होता है तब इनको दान मिलता है। इस दान को ये 'त्याग' कहते हैं। कुछ वर्ष पूर्व इस 'त्याग' के लिए चारण राजपूतों को बहुत तग किया करते थे। ये राजपूतों से अधिक 'त्याग' लेना चाहते और वे कम से कम देने की कोशिश करते थे। कहा जाता है कि इस 'त्याग' के दुःख से बचने के लिए बहुत से गरीब राजपूत कभी-कभी अपनी कन्याओं को मार भी डालते थे, ताकि न उनका विवाह हो और न त्याग देने की परेशानी का सामना करना पडे। परन्तु आज कल पढ़े-लिखे चारण 'त्याग' लेना पसद नही करते। कुछ सुधार-प्रिय व्यक्तियों ने इसके विरुद्ध आवाज भी उठाई है। सरकार ने भी इस पर थोडा-सा प्रतिबध लगा दिया है। इससे इस कुप्रथा मे कुछ कमी अवश्य आई है, पर बिलकुल बद फिर भी नही हुई है। किसी न किसी रूप में जारी ही है।

प्राचीन काल में अधिकाश चारण राज् दरबारी हुआ करते थे और कविता करके अपना पेट भरते थे। परन्तु आधुनिक दुनियॉ मे इस तरह के धंधों के लिए अब कोई स्थान नही रह गया है। अत. जिन चारणों के पास बडी बडी जागीरें हैं वे तो घर बैठे अपना जीवन निर्वाह कर लेते हैं। परन्तु जो गरीब हैं और जिनके पास बड़ी-बडी जागीरें नहीं हैं वे खेती, नौकरी, पशु-पालन आदि द्वारा अपनी जीविका चलाते हैं।

चारण जाति एक राज-भक्त और स्वामि-भक्त जाति है। बहुत दीर्घ काल तक इसने राजपूतों को उनके स्वाधीनता-सग्राम में सहायता दी है। इसने

दु:ख और सुख की, युद्ध और शान्ति की, निराशा और आशा की सभी तरह की अच्छी और बुरी घड़ियों में राजपूत जाति का साथ दिया है। इसकी वीर वाणी ने अतीत में कई कायरों में जीवन फूंका है। कई हताश व्यक्तियों को आशावान बनाया है। कई हारे हुए युद्धों को जिताया है।

राजपूतों के साथ-साथ चारण जाति का भी ह्रास हुआ है। इस समय इस जाति में न तो कोई अच्छे कवि हैं, न विद्वान। दो-एक जो हैं वे भी लकीर के फकीर बने हुए हैं। शिक्षा की भी इस जाति में बहुत कमी है। यदि यह जाति उन्नति करे तो प्राचीन काल की तरह अर्वाचीन काल में भी देश के लिए बड़ी हितकर सिद्ध हो सकती है। क्योंकि देश के लिए जनमत तैयार करने तथा लोगों में उत्साह भरने की एक ऐसी ढब इस जाति में पाई जाती है जो इसी की चीज है, इसी को फबती है।

भाट

भाट शब्द संस्कृत भट्ट का रूपान्तर है। "शब्द-स्तोम-महानिधि", "शब्द कल्पद्रुम", "शब्दार्थ चिन्तामणि", "बृहत्संस्कृताभिधान" इत्यादि संस्कृत कोषों में भट्ट' शब्द के दो अर्थ मिलते हैं (१) वेदाभिज्ञ पण्डित और (२) स्तुति पाठक जाति विशेष। परन्तु इससे बना हुआ भाट शब्द ये दोनों अर्थ नहीं देता। इससे केवल दूसरे अर्थ अर्थात उस जाति का बोध होता है जो ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जातियों की वंशावलियाँ रखती है। यह जाति ब्राह्मण नहीं है। भाट सभी जातियों के होते हैं। भिन्न-भिन्न जातियों के भाट भिन्न भिन्न नामों से प्रसिद्ध हैं। जैसे, राजपूतों के भाट बड़वा और महेसरियों के जागा कहलाते हैं। स्वयं भाटों के भी भाट होते हैं जो 'वही रॅच्या' भाट कहे जाते हैं।

भाटों की कई जातियाँ-उपजातियाँ हैं। इनका मुख्य कर्म अपने यजमानों की पीढ़ियाँ रखना है। परन्तु कोई-कोई भाट ग्रन्थ तथा गीत कवित्त भी लिखते हैं। भाटों की बहियों पर लोग बहुत विश्वास करते हैं और बहुत से मामलों में सरकार भी इनको प्रमाणिक मानती है।

इनके विवाह आदि के रस्म-रिवाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि अन्य जातियों के समान ही हैं। ये मदिरा, मॉस और तमाखू का सेवन करते हैं। इनमें नाता (पुनर्विवाह) भी होता है।

अधिकांश मनुष्य राव और भाट जाति को एक समझते हैं। परन्तु राव

राव लोग इसे स्वीकार नहीं करते। वे अपने को भाट जाति से भिन्न मानते हैं और अपनी उत्पत्ति ब्रह्मा के यज्ञ से बतलाते हैं। हमारे विचार में भी राव और भाट जाति में थोड़ा सा अन्तर है पर यह अन्तर वर्ण का नहीं, कर्म का है। जो लोग पीढी-वंशावलियाँ रखते हैं और जिनकी यजमानी ब्राह्मण, वैश्य आदि सभी जातियों के यहाँ है वे भाट कहलाते हैं और जो केवल राजपूतों के याचक या राज दरबारी हैं और पीढी वंशावलियाँ रखने का काम नहीं करते वे 'राव' नाम से प्रसिद्ध हैं। यह 'राव' इस जाति की पदवी है जिसमें इसका असली नाम छिप गया है। राजस्थान में ऐसी कुछ और भी जातियाँ हैं जिनके नाम उनकी पदवियों में छिप गये हैं। जैसे—पागोरी, महता, भंडारी, कोठारी आदि।

यह राजपूतों की याचक जाति है। उनसे 'त्याग' लेती है और उनके अलावा दूसरों से नहीं माँगती। राजपूत लोग इनको भी बड़े आदर की दृष्टि से देखते हैं और अपने राजदरबार तथा घरों में बड़ा सम्मान देते हैं। उनकी तरफ से इनको सैकड़ों गाँव मिले हुए हैं जिन पर इनका गुजारा होता है।

इस जाति में डिंगल और पिंगल के कई अच्छे-अच्छे कवि और विद्वान हो गए हैं। इनमें चंद बरदाई, किशोरदास, बख्तावरजी, गुलाबजी आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

गुजरात आदि प्रान्तों में राव जाति इस समय बड़ी समृद्धावस्था में है। उधर के राव अब याचक वृत्ति नहीं करते। व्यापार करते हैं और व्यापार के द्वारा बड़े धनी-मानी बन गये हैं। परन्तु राजस्थान के रावों की हालत बहुत बिगड़ी हुई है। अधिकांश लोग गरीब हैं। शिक्षा का अभाव है। और ऊपर उठने की महत्वाकांक्षा भी इनमें कम दिखाई देती है।

इस जाति का प्रामाणिक इतिहास नहीं मिलता। कहा जाता है कि **मोतीसर** कच्छ-भुज के राजकवि माउलजी नामक किसी चारण ने अपनी एक कन्या का विवाह माणकजी नामक एक राजपूत के साथ कर दिया था जिसकी संतान मोतीसर कहलाती है। मोतीसरों की संख्या अब बहुत थोड़ी रह गई है और दिन-दिन घटती जा रही है। इनकी आठ खाँपें (शाखाएँ) हैं जिनके नाम इस दोहे में गिनाए गये हैं:—

बालण ग्वाला बिजमला रामहिया पड़िहार।
मांगणिया न माँदगा, गजनाणा मतदार ॥

मोतीसर चारणों के याचक हैं। जिस तरह चारण राजपूतों के सिवा किसी दूसरी जाति से नहीं माँगते उसी तरह मोतीसर भी चारणों के अतिरिक्त दूसरों के सामने हाथ नहीं पसारते। दशहरे के बाद ये लोग अपने घरों से निकलते हैं और दो चार महीने चारणों के गाँवों में घूम-घामकर अपने गुजारे भर के लिये कुछ ले आते हैं। जब कोई मोतीसर किसी चारण के घर जाता है तब वह उससे उठकर मिलता है और उसके प्रति बड़ा आदरभाव बतलाता है। चारण-मोतीसरों के पारस्परिक व्यवहार के विषय में किसी चारण के बनाये हुए प्राचीन गीत की यह पंक्ति राजस्थान में प्रसिद्ध है —

"मोतीसर म्हारै सिर ऊपर, हूँ व्हाँरै कदमाँ रै हेठ"

मोतीसर बहुत पढ़े-लिखे नहीं होते पर डिंगल भाषा के गीत बनाने में बहुत पटु होते हैं। इनके गीत चारणों के गीतों से भी जोरदार माने गये हैं। कोई-कोई धनवान चारण किसी होशियार मोतीसर को अपने यहाँ नौकर रख लेते हैं और उससे गीत बनवा कर खुद राज दरबारों आदि में ले जाकर पढ़ते हैं।

ढाढी

यह ढोलियों से मिलती-जुलती जाति है। केवल इतना अंतर है कि ढोली ढोल बजाते हैं और ढाढी सारंगी या रबाब बजाते हैं। ढाढियों का कहना है कि हम श्री रामचन्द्र के समय में विद्यमान थे और उनके जन्म-दिन हमको बधाई भी मिली थी। अपने इस कथन की पुष्टि में निम्न लिखित पद्य भी ये जब तब दोहराया करते हैं—

दशरथ रे घर राम जनमियाँ, हँस ढाढिन मुख बोली।
अठारा करोड लै चौक मेलिया, काम करन को छोरी ॥

कृष्ण जन्माष्टमी के दिन वैष्णव मन्दिरों में भगवान श्रीकृष्ण की मूर्ति के सामने ढाढो-ढाढ़िन बनकर गाने-नाचने की प्रथा भारतवर्ष में अनेक स्थानों पर बहुत प्राचीन काल से चली आती है। एक आदमी ढाढी का स्वांग भरता है और दूसरा ढाढिन का। फिर दोनों मिलकर खूब नाचते-गाते हैं। इस पर इनको कुछ इनाम-इकराम भी मिलता है।

इस प्रथा से ढाढी जाति की प्राचीनता पर कुछ प्रकाश पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह जाति श्रीकृष्ण के समय में विद्यमान थी और उस समय इसका हिन्दू मन्दिरों में प्रवेश भी होता था। परन्तु बाद में अस्पृश्यता का जोर बढ़ने से अथवा अन्य किसी कारण से इस जातिवालों का हिन्दू मंदिरों से निष्कासन हो गया और इनका स्थान दूसरी जातियों के लोगों ने ले लिया जो अब इनका स्वांग भरकर इनकी कमी पूरी करते हैं।

आइने-अकबरी में भी इस जाति का उल्लेख हुआ है। अबुलफजल ने लिखा है कि बहुत से ढाढी रणभूमि में शूरवीरों की तारीफ करते हैं और लड़ाई के मैदान को चमकाते हैं। मारवाड में इसको 'सिंधू देना' कहते हैं। यह एक राग है जिसे ढोली और ढाढी सेना के आगे-आगे गाते हुए चलते है।

उपरोक्त बातों से इतना तो स्पष्ट है कि यह एक प्राचीन जाति है। परन्तु कितनी प्राचीन है, इसका ठीक- ठीक उत्तर देना अशक्य है। अस्पृश्य होने से इस जाति के विषय में प्राचीन हिन्दू ग्रथों में भी कुछ लिखा नही मिलता।

ढाढी हिन्दू भी है और मुसलमान भी। मुसलमान ढाढी मलानूर कहलाते हैं। कोई औरगज़ेब के समय में ये हिन्दुओं से मुसलमान हुए हैं।

हिन्दू ढाढी जाट,सुनार, छीपी आदि जातियों से माँगते हैं। ये अपने यजमानों की पीढियाँ जबानी याद कर लेते हैं और उनकी प्रशसा के गीत बना-बनाकर भी गाते हैं। इनकी औरतें विवाह, जन्मोत्सव आदि के मौको पर अपने यजमानों के घरों में गाने-बजाने का काम करती हैं।

डिंगल भाषा का संक्षिप्त व्याकरण

स्वर

अ. आ. इ. ई. उ. ऊ. ऋ. ए. ऐ. ओ. औ. अं. अः।

व्यंजन

क. ख. (ष) ग. घ ङ.। च. छ. ज. झ. ञ.। ट. ठ. ड. ढ. ण.। त. थ. द. ध न। प फ. ब. भ. म.। य. र. ल. व। श. ष. स. ह.। ळ. व. ड. ढ.

उच्चारण

(१)डिंगल में 'ल' का उच्चारण कहीं दन्त्य 'ल' और कहीं वैदिक भाषा तथा मराठी, गुजराती आदि के 'ळ' की तरह मूर्धन्य होता है। आजकल

कुछ लोगों में 'ळ' के स्थान पर 'ल' लिखने तथा बोलने की प्रवृत्ति दिखाई देती है जो गलत है। यह 'ळ' जब किसी शब्द के आदि अथवा मध्य में आता है तब उसके स्थान पर 'ल' लिखने व बोलने से उसके अर्थ में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता, यद्यपि उच्चारण की अशुद्धता वहाँ अवश्य रहती है। परन्तु बहुत से ळकारान्त शब्द ऐसे हैं जिनको लकारात कर देने से उनका अर्थ बिलकुल बदल जाता है। यथा —

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
माळी	जाति विशेष	माली	आर्थिक
महळ	स्त्री	महल	राजप्रासाद
खाळ	पनाला	खाल	चमड़ा
चचळ	घोड़ा	चचल	चपल
पाळ	बाँध	पाल	बिछाने का कपड़ा

(२) डिंगल में बहुत से शब्द ऐसे हैं जिनका उच्चारण करते समय किसी अक्षर विशेष पर जोर देना पड़ता है। जोर देकर न पढने से उस शब्द का अर्थ कुछ और निकलता है और जोर देकर पढने से कुछ और हो जाता है। उदाहरणार्थ 'मौर' शब्द को लीजिये। इसमें 'मो' पर जोर देकर न पढने से इसका अर्थ 'पीठ' होता है, पर जोर देकर पढने से 'मुहर' हो जाता है। इस तरह के कुछ और शब्द देखिये —

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
नार	स्त्री	नार	सिंह
कद	ऊँचाई	कद	कब
नाथ	स्वामी	नाथ	नथबधन
पीर	पीड़ा	पीर	पीहर

(३) 'व' का उच्चारण डिंगल में दो तरह से होता है, एक संस्कृत 'व' अथवा अंग्रेजी w की तरह और दूसरा अंग्रेजी v की तरह। उच्चारण का यह अन्तर बतलाने के लिए लिखने में एक व तो वैसा ही रहने दिया जाता है पर दूसरे के नीचे बिंदी (व़) लगादी जाती है। ऐसा न करने से अनेक स्थानों पर भ्रम हो जाने की सभावना रहती है। क्योंकि 'व' के स्थान पर 'व़' और 'व़' के स्थान पर 'व' का प्रयोग होने से शब्द का अर्थ बिलकुल उलट जाता है। ऐसे कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं जिनसे स्पष्ट होगा

कि 'व' के नीचे बिंदी न लगाने से शब्द का क्या अर्थ होता है और बिंदी लगा देने से उच्चारण के अनुसार उसका अर्थ किस प्रकार परिवर्तित हो जाता है —

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
वार	दिन, आक्रमण	व़ार	सहायतार्थ चिल्लाना
वीर	बहादुर	व़ीर	वीरोन्माद
वचिया	बच गया	व़चियो	छोटा सा बच्चा
वात	वायु	व़ात	कहानी

(४) डिंगल की वर्णमाला में तालव्य श नहीं है। अतः लिखने में तालव्य श के स्थान पर दन्त्य स ही लिखा जाता है। परन्तु बोलते समय जहाँ जो 'श' अथवा 'स' बोला जाना चाहिये वही बोला जाता है। यथा —

व्याकरण पुराण समृति सासत्र विधि
वेद च्यारि षट अङ्ग विचार ।
सासि चतुरदस चौंसठि जाणी
अनंत अनंत तसु मधि अधिकार ॥

यह पद्य लिखने में उपरोक्त ढग से लिखा जायगा पर पढ़ते समय इसमें आये हुए विभिन्न सकारों का उच्चारण निम्नलिखित ढग से होगा :—

व्याकरण पुराण समृति शासत्र विधि
वेद च्यारि षट अङ्ग विचार ।
शाशि चतुरदस चौसठि जाणी
अनत अनत तसु मधि अधिकार ॥

(५) मूर्धन्य 'ष' का उच्चारण डिंगल में प्रायः 'ख' होता है। परन्तु तत्सम शब्दों में कहीं कहीं शुद्ध संस्कृत उच्चारण भी होता है। जैसे- पोष, आषाढ, भीष्म आदि।

(६) डिंगल में 'य' का उच्चारण 'य' और 'ज' दोनों तरह से होता है। जब 'य' किसी शब्द का पहला अक्षर होता है तब इसका उच्चारण प्राय: 'ज' किया जाता है और 'ज' ही लिखा जाता है। परन्तु जब 'य' शब्द के पहले अक्षर के बाद आता है तब वह ज्यों का त्यों 'य' बोला और लिखा जाता है। जैसे— (क) जुद्ध (युद्ध), जोधा (योद्धा), जात्रा (यात्रा),

जमराज (यमराज)। (ख) न्याय, ख्यात, गायजादा, माया, सयन, बयण गुणियण।

(७)डिंगल में विसर्ग (:) का प्रयोग नहीं होता और अनुनासिक (ँ) का प्रयोग भी अभी-अभी होने लगा है। प्राचीन लिखित ग्रंथों में अनुनासिक के स्थान पर सर्वत्र अनुस्वार ही लिखा मिलता है। जैसे-दांत, आंत, भांत आदि।

(८) राजस्थान वासियों की प्रवृत्ति अनुस्वार प्रयोग की ओर कुछ विशेष देखने में आती है। अनेक स्थानों पर जहाँ अनुस्वार की आवश्यकता नहीं होती वहां भी ये अनुस्वार का उच्चारण करते हैं। अतः डिंगल में अनेक स्थानों पर अनुस्वार का अनावश्यक प्रयोग देखने में आता है। परन्तु कहीं-कहीं आवश्यक होते हुए भी उड़ा दिया जाता है। दोनों तरह के उदाहरण देखिये—
(क) मांण, भांण, असमान, मेंगल, गांधा इत्यादि।
(ख) सिंह-साह या सी (प्रतापसी जैतसी आदि) माँस-मास, पाँव-पाव इत्यादि।

वर्णागम और वर्णव्यत्यय

(१) डिंगल में ऋ का स्वतन्त्र प्रयोग नहीं होता। किसी दूसरे वर्ण के साथ होता है। जैसे--स्मृति, वृत।

पूरे ऋ के स्थान पर प्रायः रि का प्रयोग देखने में आता है। जैसे, ऋषि रिषि, ऋतु-रितु।

(२) डिंगल में रेफ का प्रयोग नहीं होता। रेफ या तो पूरे रकार में बदल जाता है या स्थानान्तरित हो जाता है। जैसे—
(क)दुर्लभ-दुरलभ,दुर्ग-दुरग, कीर्ति-कीरत।
(ख) धर्म-ध्रम, कर्म-क्रम, निर्मल-निर्मळ।

(३) डिंगल में अनेक स्थानों पर ए का हे, स का छ और व का म हो जाता है। जैसे—
(क) एक- हेक, एकठा-हेकठा, एकल हेकल, एव-हेव।
(ख) सावाण छावाण, तुलसी-तुलछी, सभा-छभा, अपसर-अपछर।
(ग) हेवर-हेमर, किवाड़-किमाड, गवण-गमण, सुहावणो-सुहामणो।

(४)डिंगल में 'ए' कभी कभी 'ओ' में और 'आ' कभी-कभी 'ए' में बदल जाता है। जैसे—
(क) तेग-तोग, गेहू-गोहू, बेर-बोर।
(ख) कौरव-कैरव, म्हौल-म्हैल।

(5) डिंगल में पाद-पूर्ति के लिये कहीं-कहीं 'ह' और कहीं कहीं 'र' आगम होता है। जैसे—

(क) समर-समहर अबर-अबहर, सजळ-सरजळ, सधीर-सरधीर।

(ख) रजपूती-रजपूतीह, कहिया-कहियांह, रामो-रामोह, मोती-मोतीह।

(6) डिंगल में सुखोच्चारण अथवा पादपूर्ति के लिए शब्द के प्रारंभ में कभी-कभी कोई स्वर जोड देते हैं। जैसे—थाण-आथाण, रण आरण।

(7) संस्कृत-हिन्दी के नकारान्त शब्द डिंगल में बहुधा णकारांत कर दिये जाते हैं। जैसे-जीवन-जीवण, मान-माण, रानी-राणी।

लिंग

डिंगल में दो लिंग होते हैं (1)पुल्लिंग और (2) स्त्रीलिंग। प्राचीन काल में डिंगल पर गुजराती का प्रभाव बहुत अधिक था जिसके फल स्वरूप डिंगल के प्राचीन ग्रन्थों में कहीं कहीं नपुंसकलिंग के उदाहरण भी मिलते हैं—

(1) धर वर लिंग सधर सुपीन पयोधर, घणू खीण कटि अति सुघट।

(2) उम्वरा नर्गे असपति सू कहौ जान का सूं कहौं।

परन्तु इनको अपवाद स्वरूप समझना चाहिए। नपुंसकलिंग अब पुलिंग में छिप गया है।

कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो पुलिंग और स्त्रीलिंग दोनों में काम आते हैं। जैसे—टावर, मावीत आदि।

वचन

डिंगल में दो वचन होते हैं, (1) एकवचन और (2) बहुवचन। संस्कृत में जिस तरह द्विवचन होता है, डिंगल में नहीं होता। हिंदी में एक-वचन से बहुवचन बनाना कुछ कठिन नहीं है, पर डिंगल में कुछ कठिन है। डिंगल में एकवचन से बहुवचन बनाने के कुछ साधारण नियम ये हैं—

(1) अकारान्त पुल्लिंग तथा अकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों का बहुवचन अन्त्य स्वर के बदले 'आ' करने से बनता है। जैसे —

(क) पुल्लिंग—नर-नरा खेत-खेता, कायर-कायरा।

(ख) स्त्रीलिंग— रात-राता, चील-चीला, आंख-आंखा।

(2) इकारान्त-ईकारान्त पुल्लिंग तथा इकारान्त-ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के बहुवचन में 'यां' लगाया जाता है। जैसे—

(क) पुलिंग—कवि कवियाँ, अरि-अरियाँ, तेली तेल्याँ।
(ख) स्त्रीलिंग- मूरति मूरत्या रोटी-रोट्याँ, घोड़ी-घोड्याँ।

(३) ओकारान्त पुल्लिंग शब्द बहुवचन में आकारान्त हो जाते हैं। जैसे-घोड़ा घोटा या घोड़ा, भाला-भाला या भाला, पोतो-पोता या पोता।

(४) आकारान्त, ऊकारान्त तथा ओकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के बहुवचन में 'वाँ' लगाया जाता है। जैसे—
(क) मा मावा, भासा-भासावाँ।
(ख) लू-लूवा, बहू-बहुवा।
(ग) पो-पोवा गौ-गोवा।

कारक-विभक्तियाँ

डिंगल में कारकों के निर्विभक्तिक और सविभक्तिक दोनों रूप देखने में आते हैं। एक 'ए' विभक्ति डिंगल में ऐसी है जो सम्बोधन को छोड़कर शेष सभी कारकों में पुल्लिंग एकवचन में लगती है। बहुवचन में प्राय 'आँ' अथवा 'याँ' हो जाता है। कर्ता के पुल्लिंग बहुवचन में विकल्प से 'आ' भी होता है। सबंध कारक में 'ए' के अलावा 'इ' विभक्ति भी लगती है। सबोधन के चिह्न डिंगल में 'ए' और 'रे' हैं।

कर्ता

(१) ढोलै करह चलावियौ, करि सिणगार अपार (एकवचन)।
—ढोला मारू रा दूहा
(ढोला ने बहुत शृंगार करके ऊँट को चलाया)

(२) समरै मरण सुधारियौ, चहूँ थोकाँ चहुँआण (एकवचन)।
—दुरसाजी
(चौहाण समर ने चारों तरह से अपनी मृत्यु को सार्थक किया।)

(३) कायरड़ा मजन करै आँसू-धार मँझार (बहुवचन)।
—कायर बावनी
(कायर आँसुओं की धार में स्नान करते हैं।)

(४) पारख कीधी पँडिताँ, सरव मिलै सताँह (बहुवचन)।
—वचन विवेक पच्चीसी
(सब पडितो और सतो ने मिलकर परीक्षा की है।)

(५) अखियाताँ वाताँ वचै, जरा काल डर छड्ड (बहुवचन)।
—सुजस छत्तीसी

(जरा और मृत्यु का डर छोड़कर प्रसिद्ध बातें बचती हैं।)

(६) जाया रजपूताणियाँ, वीरत दाधी वेह (बहुवचन)

—बाँकीदास

(राजपूतानियों ने जन्म दिया विधाता ने वीरता दी।)

कर्म—

(१) हाथी घोड़ाए मारयौ

*(हाथी ने घोड़े को मारा)

(२)किरि कठचीत्र पूतळी निज करि, चीत्रारै लागी चित्रण (एक वचन))

—वेलि

(मानो काठ में चित्रित की हुई पुतली अपने चित्रकार को अपने हाथों में चित्रित करने लगी हो।)

(३) भिडजाँ भड़ाँ चारणाँ भाटाँ, मुँहगा वरतणहार मुवा (बहुवचन)

—फुटकर

(घोड़ों, बहादुरों, चारणों और भाटों को मुहँगा रखने वाला मर गया।)

(४) नरा न दीजो नारियाँ पेखौ संगत पह (बहुवचन)।

—सूर्यमल

(हे पुरुषो! स्त्रियों को दोष मत दो। यह तो संगत का फल देखना चाहिये।)

करण—

(१) मावीत्र मजाद मेटि बोल मुखि (एकवचन)।

—वेलि

(माता-पिता की मर्यादा को मिटाकर मुँह से बोला।)

(२) रूकै निरदळिया रवद (एकवचन)।

—राजरूपक

(तलवार से मुसलमानों को नष्ट किया।)

(३) पितनूँ कमलाँ पूजसी, वारण मुख बडभाग (बहुवचन)।

—वाँकीदास

(बड़भागी गजानन पिता को कमलों से पूजता है।)

(४) सुतौ रूकाँ टूका हुवो (बहुवचन)।

—नाथूदान

(बेटा तलवारों से टुकड़े-टुकड़े हो गया।)

सँप्रदान—

(१) कळह करै मत कामणी, थाडै री देतांह (एकवचन)।

—अज्ञात

(हे कामिनी ! थाड़े को धन देते समय कलह मत कर)

(२) राजा राणीनै जागीर दीधी। (स्त्री० लि०)

(राजा ने रानी को जागीर दी।)

(३) उमा नग हरनूं तुचा, दांत किरातां दीध (बहुवचन)।

—सीह-छत्तीसी

(उमा को नग, शिव को गज-चर्म और भीलों को हाथी दाँत दिए।)

अपादान—

(१) नाखै हियै निसास, पास न राणा प्रतापसी (एकवचन)।

—दुरसाजी

(प्रतापसिंह को पास न देखकर हृदय से निश्वास छोड़ता है।)

(२) चिहुरै जळ लागो चुवण (एकवचन)।

—वेलि

(केशपाश से जल टपकने लगा।)

(३) तात विदेसां आविया, साळे दाठा हाथ (बहुवचन)।

—नाथूदान

(पिता विदेशों से आया, मकान के दरवाजे पर कर-चिह्न दिखाई दिए)

संबंध—

(१) ढोलै मन आणन्द भयो, मारू तणै उछाह (एकवचन)।

—ढोला मारूरा दूहा

(ढोला के मन में मारू के मिलने के उत्साह से आनन्द हुआ।)

(२) भव टाळिय भवांह, भव काज सारीस्यां (एकवचन)।

—पृथ्वीराज

(जन्म-जन्मान्तर का आवागमन तूने टाल दिया। मेरा भी कल्याण कर।)

(३) पंवारां मदन वरमाळ सूं पूजिया (बहुवचन)।

—बांकीदास

(पंवारों के घर वरमाला से पूजा गया।)

(४) माथै मुगलाळांह वधि वधि खांडा वाहतो (बहुवचन)।

—रतन रासौ

(मुगलों के सर पर बढ-चढकर तलवारें चलाता था।)

(५) हलधर का वाहतॉ हळाँह (बहुवचन)।

—वेलि

(बलराम के चलाए हुए हलों के प्रहार में।)

अधिकरण—

(१) जाळो मगि चढि चढि पथी जावै (एकवचन)।

—वेलि

(चढ चढ कर जाली से मार्ग में पथिकों को देखती है।)

(२) कंत घरै किम आविया (एकवचन)।

—सूरजमल

(हे कंत! घर पर क्या आये?)

(३) पीछोलै पाणी पियाँ (एकवचन)।

—अज्ञात

(तालाब में पानी पिएँ।)

(४) चचळाँ चढि महा सरवर री पाळ आइ ऊभी रही। (बहुवचन)

—रतन रासौ

(बाडा पर चढकर महा सरोवर की पाल पर आकर खडी हुई।)

संबोधन—

(१) ऐ बक-मूनी ऊजळा, मीठा बोला मार।

—बाँकीदास

(हे बक-रूपी श्वेत मुनि! मधुर भाषी मार।)

(२) नारायण भज रे नरा, अंतरजामी एक।

—हरिरस

(हे मनुष्य! तू अन्तर्यामी श्री नारायण का भजन कर।)

परसर्ग

विभक्तियों के अतिरिक्त डिंगल में निम्नलिखित पाँच कारकों में परसर्गों का प्रयोग भी होता है। मुख्य मुख्य परसर्ग ये हैं :—

कर्मकारक—नै, प्रति।

करण कारक—करि, सूं।

संप्रदान कारक—नै, प्रति।

अपादान कारक—कनै, थी, हूँत, हुतौ, हूँती।

सबध कारक—रा, री, रे, गे, चा चीं, चै, चौ, केरी, केरा, केरो, तणा, तणी, तणो।

आवकरण कारक—मँझार, मॉझ, मॉ, मॉझल, मधि, मे इत्यादि।

कर्म—

(१) धूमकुँवर नै मारियों, चौपड पासा चौळ।

—प्राचीन

(धूमकुँवर को चौपड-पासे के खेल मे मार डाला।)

(२) लागै मात्रि लोक प्रति लागौ, जळ दाहक सीतळ जलण।

—वेलि

(माघ के लगते ही लोगों को जल जलानेवाला और अग्नि शीतल लगने लगी।)

करण—

(१) मुख करि किसू कही जै माहव, अतरजामी सू आलोज।

—वेलि

(हे माधव! अतर्यामी से मन के विचार मुख से कैसे कहे जायँ)

(२) अवधेस रा रूप सूँ रीझि आई।

—सूरज प्रकास

(रामचद्र के रूप से मोहित होकर आई।)

सप्रदान—

(१) महारुद्र नै सिर पेस करा।

—रतन रासौ

(महादेव को सर भेंट करें।)

(२) प्रभणन्ति पुत्र इम मात पिता प्रति।

—वेलि

(पुत्र माता-पिता को इस प्रकार कहने लगा।)

अपादान—

(१) इद्र मॉगै जिन कनै दक्षिणा

—प्राचीन

(इन्द्र जिन से दक्षिणा मॉगता है।)

(२) विहारौ प्रातलोक थी सगलोक जाइस्यॉ।

(करोड़ों प्रकार के उपाय करने पर भी कायर की तलवार और मूँजी का धन अपने कोष से नहीं निकल पाते ।)

चौली केरे पान ज्यूँ दिन दिन पीळी थाइ ।

—ढोला मारू रा दूहा

(मजीठ के पत्ता की तरह दिन दिन पीली पड़ती जा रही है ।)

(३) प्रभू घणा चा पाडिया, दैत्य वडा चा दंत ।

—नागदमण

(प्रभु ने बहुत से बड़े-बड़े राक्षसों के दाँत गिराये ।)

धर ची वाहर करण नूँ, मिलियो आय मरद ।

—प्राचीन

(देश की सहायता करने के लिए वह वीर आ पहुँचा)

हींदूनाथ दिली चै हाटै, पतो न खरचै खत्रीपण

—राठौड़ पृथ्वीराज

(हिंदुओं का नाथ महाराणा प्रताप दिल्ली के बाजार में अपने क्षत्रियत्व को नहीं बेचता ।)

कागळ चौ ततकाळ कृपानिधि, रथ बैठा सॉभळि अरथ ।

—वेलि

(पत्र का आशय समझकर कृपानिधि तुरन्त रथ में जा बैठे ।)

(४) अचरज हुवौ लोक अजमेरॉं, वड दळ देखे बीक तणा ।

—चानण

(बीकाजी की बड़ी सेना को देखकर अजमेर के लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ ।)

तिणी वार त्रिया रतनेस तणी, विधि साहस सोल सिंगार वणी ।

—रतन रासौ

(उस वक्त रतनसिंह की पत्नी ने विधिपूर्वक सोलह शृंगार किये ।)

वेष नट तणै खडो बन बीथियॉं, वटपडो कुँवर ब्रजराज वाळो ।

—बॉकीदास

(ब्रजराज का कुँवर, लुटेरा कृष्ण, नट के वेष में वन की गलियों में खड़ा है ।

वीरोचंद-सुत आंहियापुर वार, रवि सुत तणौ अमरपुर राज

—प्राचीन

(नागलोक में बलि मुझे दूर भगाता है और देवलोक में कर्ण का राज्य है।)

(५) गणपत हँदा बाप रो, धवळ उठावै भार।

—धवल-पचीसी

महादेव का बोझ श्वेत वर्ण का बैल उठाता है।)

वॉ हँदी आसा करै, खैराती खटब्रन्न।

—दातार बावनी

(उसका दान लेने वाले षट्दर्शन आशा करते हैं।)

मादूळौ खीजै सुणै, जळहर हन्दौ गाज।

—सीह-छत्तीसी

(सिंह मेघ की गर्जना को सुनकर खीजता है।)

तौ दाता हँदै करग, धन ठहरे चित धार।

—दातार-बावनी

(तब मन में समझो कि दाता के हाथ में धन रह सकता है।

अधिकरण—

रिण नहँ भीनी रुधर सूँ, मद सूँ गोठ मँझार

—मावड़िया मिजाज

(युद्ध में रक्त से नहीं भीगी, किन्तु दावत में मदिरा से भीगी।)

मेवाड़ो तिण माँह, पोयण फूल प्रतापसी।

—राठौड़ पृथ्वीराज

(उस में मेवाड़ का राणा प्रताप कमल के फूल के समान है।)

बाहर था ते ऊगरे, भीगा माझ घरेह।

—ढोला मारू रा दूहा

(जो बाहर थे वे भीग गये और मैं घर में भीग रहा हूँ।)

काठी साहँत मूठि मा, कोडी कामी सत।

—ढोला मारू रा दूहा

(वे मुट्ठी में कसकर पकड़ते और मैं खूब प्रसन्न रहती।)

अरि देखे आराण मैं, तृण मुख मांझल ल्यॉह।

—सूर-छत्तीसी

(शत्रु को युद्ध में देखते ही मुँह में तिनका ले लेते हैं।)

कीधै मधि माणिक हीरा कुंदण, मिळिया कारीगर मयण।

—वेलि

(कामदेव रूपी कारीगर ने सुवर्ण में हीरे जड़कर बीच में माणिक मिला दिया है।)

पड़ै आगि मैं उड्डि जेहा पतग।

—रतन रासौ

(जैसे पतिंगे उड़कर आग में पड़ते हैं।)

सर्वनाम

डिंगल के सर्वनाम शब्दों के रूप बहुत कुछ अपभ्रंश के सर्वनाम शब्दों के रूप में मिलते हैं। हिंदी की तरह डिंगल में भी सर्वनाम शब्दों के रूप लिंग के कारण नहीं बदलते। भिन्न-भिन्न सर्वनामों के रूप इस प्रकार होते हैं।

पुरुषवाचक सर्वनाम (हूं=मैं)—(तूँ=तू)

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	हूँ, म्हैं	म्हे
कर्म	मूँ, हूँ, मुझ, अम्ह	म्हाँ
संबंध	मुझ, मुझ-झ, म्हारौ, मो, म, अम्हीणौ।	म्हारौ, अम्हीणौ अम्हाँ

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	तूँ, तैं, थैं	थे
कर्म	तइँ	तुम्ह, तुम्हाँ, थाँ
संबंध	तुझ, तुझ-झ, थारौ, थारी (स्त्री०)	म्हाँरौ, थाँकौ, थाँकै

निश्चयवाचक सर्वनाम (आ=यह)—(वो, सो=वह)

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	ओ, ए, एह, आ	अै, इणाँ, याँ, एह
कर्म	इण, अण, एह, एण, इणनै	इण, अण, एह, इणाँनै, ओंनै
संबंध	इणरा, ईरा,	इणाँरा, अैरा याँरा

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	सो, सु, ऊ, उण, ते, तिको, तिका, वो, सोइ, तिणि।	सो, उणाँ, ते, तिके, व तेह तिणाँ, वाँ।
कर्म	उण, तिणि, तेण, त्याँ, ता, तिणनै	उवाँ, त्याँ, ताँह, तिणाँनै
संबंध	उणरौ, तास, तसु, तस, तिणरा	तिणका, ताँहका, तिणाँरा, उणाँरा, वाँरा।

सम्बन्धवाचक सर्वनाम (जो, जिका = जो)

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	जो, जिका, जु, ना, जिका, जे जिण ।	ज, जिका, जिकाँ, जिणाँ
कर्म	जिण, जेण जो, ज्यों, जोइ, जे, जिणनै ।	जे, जिका, जिकाँ, जिणाँनै
सम्बन्ध	जास, जिणरा, जिणग, ज्यांगै, जिए ।	जिणाँरा, ज्याँरा, जिणाकौ, ज्याँकौ

प्रश्नवाचक सर्वनाम (कुण = कोन)

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	कुँण, कूँण, कवण, का, का, किण	कुण, किणाँ
कर्म	किणनै, किण, किणि, केण, कवण कान	कीनै, कणाँनै
सम्बन्ध	कीरा, किणरा, कुणह	किणाँरा

अनिश्चयवाचक सर्वनाम 'काई' के रूप डिंगल में 'का' 'कोंय' कोय' आदि बनते हैं और निजवाचक 'आप' के 'आपा', 'आपण, आपणौ, इत्यादि पाए जाते हैं।

विशेषण

विशेषण के लिंग, वचन और कारक डिंगल में विशेष्य के लिंग वचन और कारक के समान ही होते हैं। स्त्रीलिंग-सूचक विशेषण प्रायः इकारान्त होते हैं। यथा—

> उर चौडी कड पातळी, झीणी पाँसळियाँह
> कै मिळसी हर पूजियाँ, हीमाळे गळियाँह ॥

क्रिया

वर्तमान काल

डिंगल में वर्तमान काल दो तरह से व्यक्त किया जाता है। एक तो मूल क्रिया में 'ह' विभक्ति लगाकर और दूसरा मूल क्रिया के पीछे छै, छूँ, और छा लगाकर। जैसे—

(१) चुगै चितारै भी चुगै, चुगि चुगि चितारेह ।

—ढोला मारू रा दूहा

(चुगती है, फिर अपने बच्चों को याद करती है और चुग-चुग कर फिर याद करती है।)

(२) रोकै अकबर राह, लै हिन्दू कुकर लखाँ ।

—दुरसा जी

(अकबर हिन्दू रूपी लाखों कुकरों को लेकर रास्ता रोकता है ।)

(३) म्हांगी आंखडली फरकै छै, ढोलौ आवसी

—फुटकर

(मेरी आँख फडकती है, पति आएगा ।)

(४) पूजा रै मिसि अंबिका रै देहरै नगर बाहिरि हूँ आवूँ छूँ ।

—वेलि की टीका

(नगर के बाहिर अंबिका के मंदिर में मैं पूजा के बहाने आती हूँ ।)

(५) माणस हवाँत मुख चवाँ, म्हे छाँ कूँ झड़ियाँह ।

—ढोला मारू रा दूहा

(मनुष्य हो तो मुख से कहे, हम तो कूँझें हैं ।)

भूतकाल—

डिंगल में भूतकाल की क्रिया के रूप प्रायः एक वचन में आकारांत और बहुवचन में आकारान्त होते हैं[२९] । जैसे—

(१) भोळा की डर भागियौ ।

—सूर्य्यमल

(हे मूर्ख ! किस डर से भाग आया ?)

(२) ऊभी गाख अवेखियौ ।

—वीर सतसई

(झरोखे में खड़ी हुई ने देखा ।)

(३) ब्रह्मा विसन महेस इन्द्र सुर साथी आया ।

—रतन रासौ

(ब्रह्मा, विष्णु, महादेव इन्द्र और देवता साथ में आये ।)

भविष्यत काल—

डिंगल में भविष्यत काल स्या, सी आदि प्रत्यय लगाकर भी बनाया जाता है और 'ला' प्रत्यय लगाकर भी । जैसे—

(१) दिली जीवतो जदी देखस्यौं, जद थांनै देस्यो जोधांण ।

फुटकर

---

२९ 'होना' क्रिया के रूप भूतकाल में लिंग-वचन के अनुसार हुओ, हुआ तथा हुई भी होते हैं और भयो, भया तथा भई भी होते हैं । कहीं-कहीं भयो, भया और भई का प्रयोग भी देखने में आता है ।

(हम लोग जान जी दिल्ली तभी देख सकेंगे जब कि इनको जोधपुर मिल जायगा।)

(२) जोडै हरि अटका रहजासी, आसी वटका कुण अरथ।

— फुटकर

(यह जगन्नाथ के अटकों की तरह हो जायगा फिर ये टुकडे किस काम आवेंगे।)

(३) बूडैला बुध-वायरा, जळ बिच छोड जहाज।

—हरिरस

(वे बुद्धिहीन प्राणी समुद्र में नाव से गिरनेवाले मनुष्य के समान संसार-सागर में डूब जायँगे।)

(४) पाकड जम घातेला फाँसी, पापी इण दिन नै पछतासी।

—फुटकर

(यमराज पकड कर फाँसी पर चढा देगा। हे पापी! उस दिन तू पछतावेगा।)

पूर्वकालिक क्रिया—

पूर्वकालिक क्रियाएँ डिंगल में प्रायः क्रिया के अन्त में 'अ' 'इ' 'र' 'एवि' 'नै' 'ह' आदि प्रत्यय लगाकर बनाई जाती हैं। जैसे—

पालिअ (पालनकर), ठानि (ठानकर) जायर (जाकर), प्रणमेवि (प्रणामकर), लिखनै (लिखकर), भरेह (भरकर) इत्यादि।

आज्ञार्थ क्रिया—

आज्ञार्थ क्रियाओं के रूप डिंगल में प्राय: मूल क्रिया के अन्त में 'वै' तथा 'जै' प्रत्यय जोड़ने से बनते हैं। जैसे—

लिखावै, करावै, दिरावै, दीजै, लीजै, पेखिजै इत्यादि।

क्रिया विशेषण

काल वाचक—

आज, अज्ज, कद, कदे, काले, नत, तडकै, रातै, जद, तद, पछै, हिव, पुणि, अजै, मौडौ, वेगौ, परभातै।

स्थान वाचक—

किह, किहां, कथि, काई, इहाँ, एथि, तिहाँ, उवाँ, जह, जिह, जहाँ, ऊपरै, नीचै, आगै, पाछै, अठै, उठै, जठै, तठै, वार, पार, नेड़ो, कनै, परै,

दूर, दूरा, वांसै, तले हेठै, नजीक, पाछलौ, आगलौ, पूरबलौ, साथै, विचलौ, आगल।

रीतिवाचक—

इम, एम, यूं, जिम, जेम, ज्यूं, जूं, किम, कम, क्यू, जॅ, जेण, केण, तिण, निम, तिड़, जथा, तथा, कदास, अचाणक, हाँ, किरि, झट, नाहक, इकनाक, जेज, ता, पण, पिण, नीठ, अपूठौ, न, नहँ, म, माँ, मति, त, अवस, सहीं, वेसक, कदेक, जदकद।

परिमाण वाचक—

घणौ, थोड़ा, कॉईक, कित्तौ, बहु, अत, अत्यन्त, भारी, इतरौ, उतरौ, जितरौ,।

डिंगल साहित्य

"साहित्य किसी देश या जाति के काल विशेष के विचारा और भावों का प्रतिबिंब होता है" यह उक्ति डिंगल साहित्य पर भी ठीक-ठीक घटती है। डिंगल साहित्य मे राजस्थान के सैकड़ो वर्षों के सस्कार, उसका सघर्षमय लोकजीवन तथा उसका इतिहास प्रतिबिंबित है और उसमें उसकी भावनाएँ व्यक्त हुई हैं। देश-प्रेम, जातीय गौरव तथा आजादी के झंझावान बहुल संदेशों से यह लबालब भरा हुआ है। इस साहित्य में पटरानियों के अट्टहास, नायक-नायिकाओं के गुप्त मिलन और राज-महलों के विलास-वैभव का वर्णन नहीं है। इसमे है रणोन्मत्त राजपूत वीरो, मरणातुर राजपूत महिलाओं और रणांगण की रक्तरंजित हाय-हत्या का भावमय चित्रण। यह साहित्य जीवन का साहित्य है और सदा जीवन को लेकर आगे बढा है। यह ऐसे लोगों का साहित्य है और ऐसे लोगों द्वारा रचा गया है जिन्होंने तलवार की चोटें अपने मस्तक पर झेली हैं, जीवन-सग्राम में जूझकर प्राण दिए हैं।

साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होने के साथ ही साथ यह साहित्य इतिहास की दृष्टि से भी परम उपयोगी है। पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय साहित्य में यह कमी बतलाई है कि इसमे इतिहास विषयक सामग्री का एक तरह से अभाव है। परन्तु उनका यह आक्षेप डिंगल साहित्य पर लागू नहीं होता। डिंगल साहित्य उनके इस कथन का अपवाद है। इतिहास विषयक सामग्री डिंगल में मिलती है और प्रचुर मात्रा में मिलती है। बल्कि कहना चाहिए डिंगल मे

ऐतिहासिक महत्व

इतिहास सबंधी सामग्री ही का प्राधान्य है। पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यतक के लगभग चार सौ वर्षों के दीर्घकाल में यहाँ हिन्दू-मुसलमानों में जो अनेकानेक युद्ध हुए और फलस्वरूप भारतवासियों के राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक विचारों में जो क्रांतियाँ हुई उनका सविस्तर वृत्तान्त यदि कहीं मिलता है तो डिंगल साहित्य में। परन्तु ऐसे उपयोगी साहित्य की अभी तक उपेक्षा की गई है। भारतवर्ष के मुसलमान कालीन इतिहास पर जितने भी ग्रन्थ अभी तक लिखे गये हैं उनके प्रणयन में मुसलमानी तवारीखों ही से सामग्री ली गई है और डिंगल साहित्य को बिलकुल छोड दिया गया है। अतः ये इतिहास बहुत कुछ अधूरे, भ्रमात्मक, एकपक्षीय और प्रागभावपूर्ण हैं। मध्य-युगीय भारत का सच्चा इतिहास लिखने के लिए डिंगल साहित्य का छानबीन भी आवश्यक है।

डिंगल की इतिहास विषयक यह सामग्री गद्य और पद्य दोनों में मिलती है।

गद्यात्मक सामग्री अधिकतर ख्यात, वात, विगत और पीढी-वंशावलियों के रूप में प्रचलित है। जैसे—

(१) ख्यात[30]—सीसोदियाँ री ख्यात, राठौड़ाँ री ख्यात, कछवाहाँ री ख्यात, मुंहणोत नैणसी री ख्यात, महाराजा मानसिंहजी री ख्यात, जोधपुर री ख्यात, उमरावाँ री ख्यात, बीकानेर री ख्यात, देवलियै रा धणियाँ री ख्यात, चहुवाँण सोनगराँ री ख्यात, जाडेचा रा ख्यात इत्यादि।

(२) वात[31]—राणै उदैसिंघ री वात, हाडै सूरजमल री वात, राणै कूँभा चितभरमिया री वात, राव बीकैजी री वात, पाबूजी री वात, राव लूणकरण री वात, जैसलमेर री वात, सोढाँ री वात इत्यादि।

(३) विगत—मेवाड़ रा भाखराँ री विगत, सीसोदिया चूडावता री साख री विगत, गैहलोता री च्यौबीस साखाँ री विगत, कछवाहा सेखावताँ री विगत, जोधपुर बीकानेर टीकायताँ री विगत, जोधपुर रा निवाणाँ री विगत, गढ कोटाँ री विगत इत्यादि।

(४) पीढी—ईडर रा धणी राठौड़ाँ री पीढ़ियाँ, राठौड़ाँ री खाँपाँ री

---

३०. ख्यात संस्कृत शब्द 'ख्याति' का रूपान्तर है। राजस्थान में यह 'इतिहास' के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

३१ राजस्थानी भाषा मे 'वात' कहानी को कहते हैं। यह संस्कृत शब्द 'वार्ता' से बना है।

पीढ़ियाँ, हमीरौत भाटियाँ री पीढियाँ, आहाडा री पीढियाँ, भायला री पीढ़ियाँ, चद्रावताँ री पीढियाँ इत्यादि ।

(५) वंशावळी—राठौडाँ री वंसावळी, झाला री वंसावळी, बीकानेर रै राठौड़ राजावाँ री वंसावळी, रजपूता री वंसावळी, उदैपुर रा राजावाँ री वंसावळी, जैसलमेर रा भाटा महारावळ री वंसावळी इत्यादि ।

पद्यात्मक सामग्री क्रमबद्ध काव्य ग्रथा के रूप में भी पाई जाती है और फुटकर कविता के रूप में भी ।

क्रमबद्ध ग्रंथों में अधिकाश ग्रथ इस तरह के देखने में आते हैं जिनके नाम या तो उनके चरित्र नायकों के नाम के साथ रासौ, प्रकास, विलास, रूपक और वचनिका जोड़कर रखे गये हैं। या उनमें व्यवहृत छंदों के आधार पर रखे गये हैं। यथा—

(१) चरित्र-नायकों के नाम पर रखे गये ग्रथों के नाम :

(क) रासौ—रायमल रासौ, राणा रासौ, सगतसिंघ रासौ रतन रासौ, महाराजा श्री सुजाणसिंघजी रो रासौ इत्यादि ।

(ख) प्रकास—राजप्रकास, सूरजप्रकास, भीमप्रकास, रतनजस प्रकास कीरत प्रकास इत्यादि ।

(ग) विलास—राजविलास, जगविलास, विजैविलास, रतनविलास, अभयविलास, भीमविलास इत्यादि ।

(घ) रूपक—राजरूपक, गोगा दे रूपक, राव रिणमल रो रूपक, महाराजा गजसिंघजी रो रूपक, रतन रूपक इत्यादि ।

(ङ) वचनिका—अचलदास खीची री वचनिका, राठौड़ रतनसी री महेसदासौत री वचनिका इत्यादि ।

(२) छदों के आधार पर रखे गये ग्रंथों के नाम :

(क) नीसाणी—गोगैजी चहुवाण री नीसाणी, राठौड़ अजबसिंघ गज्जासिंघोत री नीसाणी, आँबेर रा महाराजा प्रतापसिंघजी री नीसाणी, राव खंगारजी री नीसाणी, नीसाणी वीरमाण री इत्यादि ।

(ख) झूलणा—सोढ़ों रा गुण झूलणा, राजा गजसिंघजी रा झूलणा, राव सुरताण देवड़ै रा झूलणा, अमरसिंहजी रा झूलणा, इत्यादि ।

(ग) वेल—राजकुमार अनोपसिंहजी री वेल, राजा रायसिंघजी री वेल,

रायौ उदेसिंघजी री वेल, राठौड देईदास जैतावत री वेल, राजा सूरजसिंघजी री वेल इत्यादि।

(घ) झमाल—बीदावत करमसेण हिमतसिंघोत री झमाल, झमाल जोरसिंघ चाँपावत री, झमाल आउआ री इत्यादि।

(ङ) गीत—सीधलाँ रा गीत, पँवाराँ रा गीत, जाड़ैचा रा गीत, राठौड़ रामसिंघजी रा गीत, राजा रायसिंघजी रा गीत इत्यादि।

(च) कवित्त—महाराज अभैसिंघजी रा कवित्त, पँवार अखैराज राठौड़ रतनसी रा कवित्त, जोधपुर महाराज गजसिंघजी रा निर्वाण रा कवित्त, चहुवाण साँवलदासजी करमसिंघजी रा कवित्त इत्यादि।

(छ) दूहा—पाबूजी रा दूहा, राव अमरसिंघजी रा दूहा, सांगै रायौ रा दूहा, हमीर रायौ रा दूहा, समरसी चहुवाण रा दूहा, लाखै फूलाणी रा दूहा इत्यादि।

इनके अतिरिक्त पाघड़ी, दवावैत, त्रोटक आदि दो-एक अन्य छन्दों में रचे ग्रंथ भी कुछ मिलते हैं।

ये ग्रथ भिन्न भिन्न समय और भिन्न भिन्न स्थानों में लिखे गए हैं पर इनके लिखने का प्रकार लगभग समान ही है। प्रारम्भ मे मगलाचरण और मुख्य-मुख्य देवी-देवताओं और गुरु की स्तुति की गई है। इसके बाद राजवशावली शुरू होती है जिसमें सृष्टिकर्ता ब्रह्मा से लेकर ग्रथनायक तक के राजाओं के नाम गिनाए गए हैं। बीच में कहीं-कहीं बडे-बडे राजाओं का वर्णन कुछ अधिक विस्तार से भी कर दिया गया है। मुख्य कथा चरित्र नायक के जन्म दिन से प्रारम्भ होती है। चरित्र-नायक के युद्ध, उसकी वीरता, उसके आतक-पराक्रम, उसके बाहुबल और सैन्यबल का बहुत सजीव एव वीरदर्प-पूर्ण वर्णन इन ग्रंथों में देख पड़ता है। प्रायः ग्रथ-नायक की किसी बहुत बड़ी विजय अथवा उसकी मृत्यु के साथ ग्रन्थ की समाप्ति हो जाती है।

फुटकर कविता

फुटकर कविता दोहा, कवित्त (छप्पय) और गीत छन्दों मे लिखी अधिक मिलती है। इस तरह की कविता को राजस्थान में 'साख री कविता' (साक्षी की कविता) कहते हैं। क्योंकि यह किसी प्राचीन घटना आदि के सत्य होने का प्रमाण अथवा गवाही देती है।

राजस्थान में असख्य वीर एव दानी पुरुष हो गये हैं और अनेक युद्ध-घटनाएँ घटी हैं। ये फुटकर दोहे, कवित्त और गीत इन महान व्यक्तियों

तथा ऐतिहासिक घटनाओं के छोटे-छोटे फोटोग्राफ हैं जो थोड़ी देर के लिए उनके वास्तविक स्वरूप को हमारी आँखों के सामने ला खड़ा करते हैं। किसी में किसी महत्वपूर्ण प्राचीन घटना-तिथि का उल्लेख है तो किसी में किसी युद्ध का चित्रांकन और किसी में किसी सुपात्र की वीरता-दानशीलता की प्रशंसा या कुपात्र की कायरता-कदर्यता की निंदा[32]। यथा—

दूहा

(क) तेरा सौ तेर तवाँ, जनम्यो आसळ धाम।
तेरा सौ सैंतीस मैं, कमधज आयौ काम ॥१॥
पनरै सै पैंताळवै, सुद वैसाख सुमेर।
थावर बीज थरप्पियौ, बीकै बीकानेर ॥२॥
पत्तौ पावटियाँ लड़ै, जयमल महलाँ बीच।
रण आँगण कल्लौ लड़ै, केसर हुवो कीच ॥३॥
कट पड़ियौ ठाकर कनै, असमर झड़ियौ अंग।
लड़ियौ संग सुरताण रै, रूपावत नै रंग ॥४॥
देताँ क्रोड़-पसाव नित, धिनौ गौड़ बछराज।
गढ़ अजमेर सुमेर सूँ, ऊँचौ दीसै आज ॥५॥
महाराज अजमाल री, जद पारख जाणीह।
दुरगौ देसाँ काढियौ, गोलाँ गांगाणीह ॥६[33]॥

---

३२ राजस्थान में कविता दो तरह की मानी गई है (१) सर और (२) विसर। प्रशंसात्मक कविता को यहाँ सर और निन्दात्मक कविता को विसर कहते हैं। उद्धृत दोहों में पाँचवाँ दोहा सर और छठवाँ विसर है। क्योंकि इन में क्रमश गौड़ बछराज की प्रशंसा और महाराजा अजीतसिंह की निंदा की गई है।

३३ स० १३१३ में धाँधल के घर जन्म लिया और स० १३३७ में राठौड़ (पाबूजी) मारा गया ॥१॥ स० १५४५ वैशाख सुदी दूज शनिवार के शुभ दिन बीकाजी ने बीकानेर को स्थापित किया ॥२॥ पत्ताजी सीढ़ियों पर, जयमलजी महलों में तथा कल्लाजी रणांगण में लड़ रहे हैं और रक्त का कीचड़ हो गया है ॥३॥ अपने ठाकुर के पास कट कर गिर पड़ा और तलवार से उसके शरीर के टुकड़े हो गये। रूपा के वंशज को रंग है कि वह सुरताण के साथ लड़ा ॥४॥ गौड़ बछराज को धन्य है कि जो हमेशा क्रोड़पसाव अर्थात् एक करोड़ रुपये का दान देता है। और जिसकी वजह से आज अजमेर का गढ़ सुमेर पर्वत से भी ऊँचा दिखाई दे रहा है ॥५॥ महाराजा अजीतसिंह की परीक्षा तब हुई जब उन्होंने दुर्गादास को देश से निकाला और गोलों को गाँगाणी गाँव दिया ॥६॥

(ख) अलाबदी प्रारम्भ, क्रोध सोनागर ऊपर ।
हुवौ समर तलहटी, जुड़ै चहुवाँण मछर भर ॥
सकतीपुर रौ साम, प्राण सुरताँण सँकायौ ।
गाँजै घड गजरूप, चीत आलम चमकायौ ॥
राँजियौ राव कान्हड़ रिणह, कोतक रवि-रथ थंभियौ ।
वरमाल कंठ अपछर वरै, माल्ह विवायौ मालियौ[३४] ॥

गीत

(ग) बूझै पतसाह पता दे कूंची
धग पलटी न कीजै धौड़ ।
गढ रौ धणी कहै गढ माहरौ
चूडाहरो न दियै चितौड़ ॥१॥
गोळयां नाळ चत्रकोट गाजे घणी
हिन्दु तुरक आवटै घणा ।
जग्गा सुत न दीयै जीवतो
तीजा लोचन पृथी तणा ॥२॥
झटका झडा औझडा झाडै
अटका अझा रोकै रिमराह ।
ऊभै पतै चढचौ नहिं अकबर
पड़ियै पतै चढ्यौ पतसाह ॥३॥
पतसाहो साल [illegible] [illegible] आडो
[illegible] [illegible] [illegible] भतौ ।

---

३४ एक बार सुलतान अलाउद्दीन ने जालौर पर आक्रमण किया । उस समय चौहाणों का सोनगरा शाखा का कान्हड़देव वहाँ का राजा था । इस युद्ध में उसके एक वीर साल्हा ने बड़ी वीरता दिखाई । उसी का वर्णन इस छप्पय में किया गया है ।

अलाउद्दीन ने सोनगर (कान्हड़देव) पर आक्रमण प्रारम्भ किया । तलहटी में युद्ध हुआ । क्रोध में भर कर चौहाण भिड गये । दिल्ली के सुलतान के प्राण शंका में पड़ गये । गज-वाहिनी का गंजन कर संसार के चित्त को चमत्कृत कर दिया । रण को देख राव कान्हड़देव बहुत प्रसन्न हुआ । कौतुक देखने को सूर्य का रथ रुक गया । गले में माला डाल कर अप्सराओं ने वरण किया । साल्हा विमान में बैठ गया ।

उदयसिंह राणौ इम आखै
धरा पलटी न धणी पतौ[३५] ॥४॥

इतिहास संबंधी ग्रंथों के अतिरिक्त धर्म, नीति, तत्वज्ञान, वृष्टि-विज्ञान, शालिहोत्र इत्यादि कुछ अन्य विषयों पर लिखे ग्रंथ भी डिंगल में मिलते हैं। ये ग्रंथ प्राचीन संस्कृत ग्रंथों के आधार पर रचे गए हैं और विषय की दृष्टि से मौलिक नहीं हैं। परन्तु भाषा-शास्त्र की दृष्टि से बड़े उपयोगी हैं और राजस्थानी भाषा के क्रमिक इतिहास का ज्ञान कराने में सहायक हो सकते हैं।

अन्य विषय

विशुद्ध काव्य की दृष्टि से डिंगल-साहित्य कैसा है, यह बात भी विचार करने योग्य है। आचार्य मम्मट ने काव्य रचना के यश-प्राप्ति, धन प्राप्ति इत्यादि छह प्रयोजन बतलाए हैं[३६] और अधिकतर इन्हीं पर नजर रखकर डिंगल काव्य रचा गया है। अतः प्राचीन भारतीय काव्य-परिपाटी के अनुसार यह ठीक है। परन्तु पाश्चात्य काव्य-मर्मज्ञ इसे उचित नहीं समझते। उनका कहना है कि धन की आशा से, प्रतिष्ठा के लोभ से, श्रोताओं को प्रभावित करने के अभिप्राय से, अथवा इसी प्रकार के अन्य किसी सांसारिक लाभ की इच्छा से जो कविता

डिंगल-काव्य

३५—सं० १६२४ में मुगल सम्राट अकबर ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की। उस समय महाराणा उदयसिंह वहाँ राज्य करते थे। उन्होंने किले की रक्षा का भार पत्ता और जयमल नामक अपने दो सामन्तों को सौंप दिया और खुद पहाड़ों में चले गये। बहुत दिनों की लड़ाई के बाद अकबर जब किले पर पहुँचा तब वहाँ पत्ताजी ने उसका सामना किया। इस गीत में उसी का वर्णन है।

बादशाह कहता है कि हे पत्ता! पृथ्वी पलट गई है तू विघ्न मत डाल, किले की चाबी मुझे दे दे। लेकिन गढ़ का स्वामी, चूंडा का वंशज, पत्ता, कहता है कि गढ़ मेरा है। और वह चित्तौड़ नहीं देता है ॥१॥ चित्तौड़ पर बहुत बंदूक-गोलियाँ गरज रही हैं। बहुत हिन्दू-तुर्क उबल रहे हैं। लेकिन जग्गाजी का बेटा, जीते जी चित्तौड़ नहीं देता है ॥२॥ (खड्ग आदि के) प्रहार की झड़ियों से वह ओझड़ियाँ काटता है और हठ करके शत्रु के मार्ग को रोके हुए है। पत्ता जब तक खड़ा रहा, बादशाह किले पर नहीं चढ़ सका। पत्ता के धराशायी होने पर ही चढ़ा ॥३॥ बादशाह के लिए शल्य और राणा के घर का रक्षक उस पत्ता को मुगलों ने मार डालने का निश्चय किया। राणा उदयसिंह कहता है कि पृथ्वी के पलट जाने पर भी स्वामी पत्ता नहीं पलटा ॥४॥

३६—काव्यं यशसेऽर्थकृते, व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये, कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ॥

की जाती है वह कविता कविता नहीं रह जाती, वाग्मिता बन जाती है[37]। इसी बात को गोस्वामी तुलसीदास ने यों कहा है—

"कीन्हे प्राकृत जन गुण गाना, सिर धुनि गिरा लगत पछिताना"

मत यथार्थ है। और इस दृष्टि से यदि देखा जाय तो डिंगल-काव्य दोष युक्त है। निःसंदेह डिंगल मे भी कुछ कवि ऐसे हुए हैं जिन्होंने स्वान्तः सुखाय रचना की है। किन्तु ऐसे कवियों की संख्या अधिक नहीं है। एक, दो, तीन और बस।

रस

डिंगल कविता प्रधानतया वीर रसात्मक है। दान-वीर, धर्म-वीर, युद्ध-वीर और दया-वीर सभी का इसमे बहुत सजीव और स्वाभाविक वर्णन मिलता है। वीर रस का वर्णन संस्कृत, हिन्दी, बंगला, आदि अन्य भारतीय भाषाओं के कवियों ने भी किया है। परन्तु उनके वर्णन में वह ओज और सचाई नहीं है जो डिंगल के कवियों मे पाई जाती है। इसका कारण है। डिंगल के कवि निरे कवि न थे, अपितु योद्धा भी थे। युद्ध संबंधी बातों का उन्हें अनुभूत ज्ञान था। इसके विपरीत संस्कृत आदि के कवि कोरे कवि थे और रणभूमि से कोसों दूर किसी शान्त वातावरण मे बैठ केवल सुनी सुनाई बातों के आधार पर अपनी कल्पना द्वारा वीर रस के चित्र अंकित किया करते थे जो बहुधा अस्पष्ट, अपूर्ण और अस्वाभाविक होते थे। उनकी कल्पना-शक्ति को प्रत्यक्षानुभव का सहारा तनिक भी न रहता था। अतः जिस तरह उपन्यासकार किया करते हैं उस तरह इन कवियों ने भी रणभूमि की प्रचंडता, युद्ध की भयंकरता, सेनाओं की विशालता, शत्रु के आतंक, हाथी-घोड़ों की रेल-पेल इत्यादि बाह्य बातों का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन तो किया और बहुत अच्छा किया। परन्तु वीर-वीरांगनाओं के मनोभावों का विश्लेषण उनसे न हो सका जो डिंगल के कवियों ने बड़ी मार्मिकता के साथ किया है। उदाहरण लीजिए—

एक बार कोई युवक किसी युद्ध में गया। उसकी माँ उसी युद्ध में स्वयंसेविका के तौर पर घायलों को जल पिलाने का काम करती थी। दुपहरी

37. When a poet turns round and addresses himself to another person, when the expression of his emotions is tinged also by that desire of making an impression upon another mind, then it ceases to be poetry and becomes eloquence John Stuart Mill

का जब युद्ध समाप्त हुआ तब वह घायलों को जल देने के लिए अपने घर से रवाना हुई। उसके साथ उसकी पुत्रवधू भी थी। पुत्रवधू के सर पर पानी का एक घड़ा था और माँ के हाथ में एक करवा। दोनों रणक्षेत्र में पहुँची। माँ को आई देखकर घायल बेटे ने पुकारा—"माँ पानी"। इस पर माँ ने पूछा—"तुम्हारे कितने घाव हैं बेटा"। "सात घाव"—"बेटे ने उत्तर दिया। इतने में कोई दूसरा घायल चिल्ला उठा—'मेरे दस घाव हैं"। माँ ने जाकर उसे पानी पिलाया। इस तरह माँ अधिक-अधिक घाववाले योद्धाओं को जल देती रही और बेटे की बारी ही नहीं आई। बेटा घावों की पीड़ा, दुपहर की गर्मी, और मारे प्यास के तड़फ रहा था। माँ की तरफ से निराश होकर उसने अपनी स्त्री को इशारा किया। परन्तु वह क्या करती। विवश थी! पानी पिलाने की 'ड्यूटी' माँ की थी। अपनी निःसहायता प्रकट करती हुई वह बोली—

किण विध पाऊँ आणियौ, बोलता जळ लाव।
बाँटै सास बळोबळी, भालाँ हदा घाव[३८]॥

भाव की बड़ी कोमलता और मर्म-स्पर्शिता है इस दोहे में। रणभूमि की विकरालता, बेटे की बेचैनी, बहू की असमर्थता और माँ की निष्पक्षता का चित्र आँखों के सामने घूमने लगता है। और मन में माँ के प्रति श्रद्धा, बेटे के प्रति सहानुभूति और पुत्रवधू के प्रति करुणा के भाव उमड़ने शुरू होते हैं।

और भी

तात विदेसाँ आवियौ, कौळै दीठा हाथ।
एण बधाई हूलसै, सुत-बू बळिया साथ।[३९]

किसी वीर युवक का पिता कहीं परदेस में गया हुआ था। कुछ महीनों के बाद वह वापस लौटा। अपने मकान से जब वह कोई चालीस-पचास

---

३८ तुम्हारे यह कहने पर कि मुझे जल पिला, कैसे मैं तुम्हें जल लाकर पिला दूं। सास तो एक के बाद दूसरे को भालों के घावों के अनुपात से जल दे रही है।

३९ पिता जब विदेश से आया तब उसने दरवाजे पर हाथ देखे। इस बधाई से कि बेटा और बहू दोनों साथ-साथ जले हैं वह बहुत प्रसन्न हुआ।

प्राचीन समय में राजस्थान में यह रिवाज था कि जब कोई स्त्री सती होने के लिए अपने घर से रवाना होती तब अपने घर के दरवाजे के दोनों पार्श्व पर कुंकुम भरे पूरे हाथों के चिन्ह लगा जाती थी। बाद में इन कर-चिन्हों पर पन्नी चढ़ा दी जाती थी और लोग इनकी पूजा करते थे। राजस्थान के गाँव-नगरों में अनेक घरों के दरवाजों पर ये चिन्ह आज भी ज्यों के त्यों दिखाई देते हैं।

गज की दूरी पर था तब क्या देखता है कि मकान के दरवाज़े की दीवार पर दोनों तरफ कुकुम भरे हाथो की छापें लगी हुई हैं। उसने अनुमान लगा लिया कि उसका बेटा कहीं युद्ध मे मारा गया है और उसकी स्त्री उसके साथ सती हुई है। हाथ के चिन्हों द्वारा प्राप्त हुई इस बधाई से वह बहुत उल्लसित हुआ।

दोहा राजस्थान की संस्कृति की जीती- जागती तस्वीर है। बेटा युद्ध मे मारा गया इसलिए वह बहादुर। उसकी पत्नी उसके साथ सती हुई इसलिए वह भी बहादुर। दोनों की मृत्यु पर पिता ने हर्ष प्रकट किया इसलिए वह भी बहादुर। अर्थात् सारा घर का घर बहादुर। बात साधारण है। परन्तु बहुत अनूठे ढग से कही गई है। दोहे मे 'बधाई' शब्द बडे मार्के का है। इसने दोहे को सप्राण बना दिया है। घर का बड़ा -बूढा कुछ दिनों के लिए जब कहीं बाहर जाता है और उसकी अनुपस्थिति में उसके घर मे पुत्र-जन्म अथवा इसी तरह की कोई खुशी की बात पैदा होती है तो उसकी खबर सुनाने के लिए घरवाले बडे आतुर रहते हैं, और जब उसके वापस लौटने के समाचार मिलते हैं तो दौडकर रास्ते मे उसे हर्ष-सवाद सुनाते हैं। यहाँ अवसर पुत्रोत्पत्ति का नहीं है, पुत्र की मृत्यु का है। परन्तु एक समय था जब राजस्थान मे युद्ध मे मरनेवाले पुत्र की मृत्यु के दिन भी उतना ही हर्ष प्रकट किया जाता था जितना उसके जन्म-दिन। अतः बहादुर पिता के लिए यह अवसर भी खुशी का ही है। परन्तु इसकी खबर देनेवाला अब घर मे कोई नहीं रह गया है। अतः दरवाजे पर अकित सती के हाथों के मूक चिन्ह बधाई देने का काम करते हैं। बड़ी सुन्दर कल्पना है!

डिंगल की वीर रसात्मक कविता में एक विशेषता और भी दृष्टिगोचर होती है। संस्कृत, हिंदी आदि के कवियों ने स्त्री जाति को शृंगार अथवा करुण रस के आश्रय-आलंबन के रुप में ही अधिक ग्रहण किया है और वीर रस के लिए अनुपयुक्त समझकर स्त्री समाज की बडी अवज्ञा की है। वीर रस का वर्णन करते समय उनकी आँख हमेशा पुरुष जाति पर गड़ी रही और कभी यह नहीं सोचा कि स्त्रियाँ भी बहादुर होती हैं, उनमें भी वीरोल्लास का अक्षुण्ण प्रवाह प्रवाहित होता है और मरने मारने की इच्छा उनमें भी उतनी ही प्रबल होती है जितनी पुरुषों में। परन्तु डिंगल-कवियों ने उन्हें नहीं भुलाया। पद्मिनी, करुणावती, जवाहर बाई, कृष्णाकुमारी आदि वीर नारियों के असंख्य उदाहरण सामने रहते हुए वे भुलाते भी कैसे? अतः नारी

समाज की वीर भावनाओं को भी उन्होंने अपनी कविता में ला उतारा जो विश्व-साहित्य को उनकी एक अपूर्व देन है। उदाहरण—

हाकलियाँ पाराथियाँ, हियौ द्रमकै त्याँह।
आभरणौ नहँ बाँधियौ, गोरी काळाडाँह ॥१॥
मतवाळा घूमै नहीं, नहँ घायल घरणाय।
बाळ सखी ऊ देसड़ौ, भड बापड़ा कहाय ॥२॥
देवै गीधरण दुरवडी, ममळी चपै सीस।
पंख झपेटाँ पिउ सुवे, हूँ बलिहार थईस ॥३॥
धव घावाँ छकिया घणाँ, हेली आव दीठ।
मारिगियौ कंकू वरण, लीलौ रंग मजीठ ॥४॥
नहँ पड़ोस कायर नराँ, हेली वास सुहाय।
बळिहारी उण देस री, माथा मोल बिकाय ॥५॥
पंथी हेक सदेसड़ौ, बाबल नैं कहियाह।
जायाँ थाळ न वज्जिया, टामक टहटहियाह ॥६॥
घोड़ै चढणौ सीखिया, भाभी किसड़ै काम।
बब सुणीजै पार रौ, लीजै हाथ लगाम ॥[40]॥ ॥७॥

---

४० प्राचीन समय में जब कोई स्त्री सती होने को अपने घर के बाहर निकलती तब उसके सर के बाल खुले रहते थे और उस पर कोई आभूषण नहीं रहता था। इसी भाव को लेकर यह दोहा कहा गया है।

जिनकी हुँकार से बडे-बडे बहादुरों के दिल दहल जाते हैं। उनकी स्त्रियाँ भी अपने काले केशों पर आभूषण नहीं पहिनतीं। (कारण कि सर पर आभूषणों के होने से उनको खोलने में समय लगता है और सती होने में देरी पड़ती है। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि वीर पुरुष की स्त्रियाँ भी वीर होती हैं। वे भी मरने को पहले ही से तैयार रहती हैं) ॥१॥ हे सखी! उस देश में आग लगा दे जहाँ मतवाले योद्धा नहीं घूमते हैं। घायल नहीं चक्कर खाते हैं और जहाँ बहादुर को 'बेचारा' कहा जाता है ॥२॥ मैं उस स्थान पर बलिहारी जाती हूँ जहाँ गिद्धनी थपथपी देती है। चील सर चापती है और पति पंखों की झपेटों में सोते हैं ॥३॥ हे सखी! पति बहुत से घावों से छके हुए आते नजर आ रहे हैं। रास्ता (रक्त के बहने से) कुंकुम-वर्ण का और उनका श्वेत अश्व मजीठ के रंग का हो गया है ॥४॥ हे सखी! मुझे कायर पुरुषों का पडोस अच्छा नहीं लगता। मैं उस देश पर बलिहारी जाती हूँ जहाँ मस्तक मोल बिकते हैं ॥५॥ हे पंथी! मेरे पिता को एक संदेशा कह देना-जिस समय मैं पैदा हुई थी उस समय थाली भी नहीं बजी पर इस समय (जब कि मैं सती होने को जा रही हूँ) मेरे आगे ढोल बज रहे हैं ॥६॥ हे भाभी! घोडे पर चढ़ना किस लिए सीखा था? दुश्मन की बब सुनाई दे रही है। लगाम को हाथ में ले लो ॥७॥

इसके साथ-साथ सेना, युद्ध आदि वीर रस से संबद्ध अन्यान्य ऊपरी बातों का भी डिंगल के कवियों ने बड़ा भव्य, मनोहर और रोमहर्षण वर्णन किया है।

वीर रस की प्रधानता देखकर कुछ लोगों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि डिंगल भाषा जितनी वीर रस के लिए उपयुक्त है उतनी दूसरे रसों के लिए नहीं है। परन्तु यह उनकी भ्रान्त धारणा है। वीर रस के अतिरिक्त शृंगार आदि अन्य रसों के निरूपण की क्षमता भी डिंगल में पूरी-पूरी पाई जाती है और अन्य रसों की भी बड़ी सरस, भावपूर्ण एवं विशिष्ट कविता डिंगल में हुई हैं :—

शृंगार रस —

[क] घण चोतरफ घटा घुमरारै। केकी मसत हाय कोहौकारै ॥
सुजळ अथाह फैलियौ सारै। पण आली कद पीव पधारै ॥
उझट जीव लग रही उदासी। व्याप अन्त उर बाढ व्यथासी ॥
देखू वाट ए री सुण दासी। आ कह री वालम कद आसी ॥
निरख रहूँ इकटक नैणां सूँ। बौहौ मनवार करूँ बैणां सूँ [४१]॥

[ख] नैण थकाणाँ मग निरख, कई सिधाणा कोल।
पण न थकाणा राज रा, वाट झँकाणा बोल ॥१॥
मैं जोबन री मार, मदमाती जाणी नहीं।
तिथ तूटै सौ बार, वार न टूटै वीझरा ॥२॥
टोळी सूँ टळियाँह, हिरणाँ मन माठा हुवै।
वालम बीछड़ियाँह, जीवै किण विध जेठवा ॥३॥
दुनियाँ जोड़ी दोय, सारस नै चकवा सुण्याँ।
मिल्यौ न तीजो मोय, जो जो हारी जेठवा ॥४॥ ॥[४२]॥

---

४१ चारों ओर घनघोर घटा छाई है और मोर मस्त होकर कुहुक रहे हैं। अपार जल सर्वत्र फैल गया है। पर हे सखी! पति कब आएँगे। मन उचट गया है। उदासी लगी हुई है और अन्तस्थल में व्यथा की बाढ़ सी आ गई है। हे दासी! मैं बाट देख रही हूँ। यह बता कि प्रीतम कब आएँगे। मैं नेत्रों से एकटकी लगाकर उनको देखूँगी। वचनों से बहुत मनुहार करूँगी।

४२ मार्ग देखते-देखते आँखें थक गई हैं और तुम्हारी कई प्रतिज्ञाएँ यों ही निकल गई हैं। लेकिन प्रतीक्षा करवानेवाले तुम्हारे ये वचन अभी तक नहीं थके हैं ॥१॥ मुझ मद-माती ने यौवन की मार को नहीं समझा था। हे वीझरा! तिथि तो सौ बार टूटती

भयानक रस

चहूँ चक्क चलचलिय, सेस चलचलिय सहस सिर ।
कमठ पीठ कलमलिय, थहण दलमलिय सुचर थिर ॥
दहले दिग्गज दिसा, मेर मरजादा मुकिय ।
अदल बदल जल उदध, चंडि सिध आसन चुकिय ॥
भयभीत हुआ चौदह भुवण, स्रवै गरभ तिय दिस दसिय ।
रघुनाथ कहो सझ डबर रिण, कमर आज किण पर कसिय[४५]॥

अद्भुत रस

सीस सरग सातमे, परग सातमें पयालै ।
अरवण माते उदर, विरध रोमाच त्रिचालै ॥
नदी सहस नाडियाँ, प्रगट परबत मम्पूरज ॥
श्रुत दिस पवन उसास, सकल लोयण ससि सूरज ॥
सिव सूँ उमँग पूछे सगत, इचरज अत आवत यहै ।
ऊ कहो मोहि प्रभु मन उर, रात दिवस किण विध रहै[४६] ।

रौद्र रस

विस्वामित्रेम्म एण वात, कोपियौ भयकरा ।
गिरा तरास रा गभीर, धृजवै वसूधरा ॥
रोमच अग धोम रूप, ब्रह्म तेज मे वणै ।
जटा छटा छटा जड़ागि, आगि नेत्र ऊफणै[४७] ॥

---

४५ हे रघुनाथ ! बताइए आज आपने यह आडबर सजाकर युद्ध के लिए किस पर कमर बाँधी है जिससे चारों दिशाएँ चलायमान हो गई हैं। शेषनाग के हजार मस्तक मलसला गए है। कच्छप की पीठ कलमला गई है। चराचर जीवो के स्थान दहल गए हैं, दिशाओं के हाथी डर गए है। सुमेर पर्वत ने अपनी मर्यादा छोड दी है । समुद्र का जल उथल-पुथल हो गया है। चडी और सिद्धों के आसन हिल गए हैं। चौदह भुवन भयभीत हो गए है और गर्भवती स्त्रियों के गर्भ गिर गए है।

४६ पार्वती शिव से पूछती है कि जिस प्रभु का मस्तक सातवें स्वर्ग में है। चरण सातवें पताल में है। मानों समुद्र जिसके पेट में है। बीच-बीच के वृक्ष जिसकी रोमावलि हैं। हजारों नदियाँ जिसकी नाडियाँ हैं। पर्वत जिसकी हड्डिया हैं। दिशाएँ कान हैं। पवन जिसका श्वासों सास है कला सहित चद्रमा और सूरज जिसके नेत्र हैं। वह सन्त पुरुषों के हृदय में रात-दिन कैसे निवास करता है।

४७ इस बात से विश्वामित्र को भयकर क्रोध आ गया। उनकी गभीर वाणी के त्रास से पृथ्वी कपायमान होने लगी। रोमाच हो आया और ब्रह्मतेज युक्त उनके शरीर ने (धोम) अग्नि का रूप धारण कर लिया। उनकी जटा दीपक ज्योति के समान बिखर गई और आँखों से आग उफनने लगी।

बीभत्स रस

करै किरमाळ वहै तिण काळ। कटै भड़पाळक भाळ कपाळ।
कटै जरदाळ ब्रढ़ै छक डाळ। रुळै वरमाल ढुळै रुहिराळ।
महेस कपाळ चणै कज माळ। चलै रत खाळ तठै पद चाल।
धडे लगि सार उठै रत धार। उगी फळ बिंब कि कंब अपार॥
हुए इक सत्थ बिना खग हत्थ। मिलै लथबत्थ बिना के मत्थ।
रड़ब्बड मुंड पड़ै चडि रुड। तिसा विण सुंड वणै गजतुंड॥
हिचै नर वीर खगां कर हाक। छकी रिण चौसठ जोग्रण छाक[४८]।

शान्त रस

थारी नहँ देह परवार न थारौ, वित थित घर थारौ नहँ वंक।
सुत पित मात वडाणै सारै, हटवाड़ा रौ मेळो हेक॥१॥
काचौ पिंड कुटुम धन काचौ, सह काचौ संसार सपेख।
भाईबंध काचा रे भाया, सपना री दौलत स विसेख॥२॥
काया धन सुत कलत्र कारमो, खलक कारमो बाजीगर खेल।
दीसण तणौ चलाचल दीसै, औ सारौ पाणी ऊभेल॥३॥
ओहला तिर तिर बह आया, करमा वस बन बन रौ काट।
करम कमाई भुगत कानियाँ, वहणौ उठ आया जिण वाट[४९]॥४॥

---

४८ उस समय हाथ में तलवार चलती है। सेनापतियों के ललाट और कपाल कटते हैं। कवच वाले वीर कटते हैं और हाथी झटते हैं। वरमाला पड़ती है और रक्त बहता है। अपनी माला के लिए शिव कपाल चुनते हैं। रक्त का प्रवाह बहता है वहां पांव फिरते हैं धड पर तलवार के लगने से रक्त की धार उठती है, मानों बिंबफल की टहनी उग रही है कई योद्धा एक साथ बिना खड्ग और हाथ के हो जाते हैं। और कई बिना मस्तक के भ गुत्थमगुत्था करते हैं। रुंड-मुंड इधर उधर लुढकते और पड़ते हैं। उसी तरह हाथियों के मस्तक बिना सूँडों के हो जाते हैं। वीर पुरुष हुँकार करके तलवारों से युद्ध करते हैं। चौसठ योगिनिया रण-मद से तृप्त हो गई है।

४९ देह तेरी नहीं है न परिवार तेरा है। धन, स्थिति और घर को अपने मत समझ। बेटा, माता-पिता और बडे सब एक हटवाडे का मेला है॥१॥ शरीर कच्चा है कुटुम्ब और धन कच्चा है। सारे संसार को कच्चा मान। हे भाई! भाईबंद कच्चे हैं। विशेष कर दौलत एक सपना है॥२॥ शरीर, धन, सुत-कलत्र एक कारवाँ है। संसार एक कारवाँ बाजीगर का खेल है॥ चल और अचल जितना भी दिखाई देता है वह सब पानी की लहर के समान अस्थायी है॥३॥ बहुत से तैर-तैरकर पास आ गये हैं। कर्मों के वशीभूत र बन-बन का काठ हो रहा है। हे कानियाँ! कर्मों की जो कमाई की है उसे भोग। उठ जिस रास्ते से आया है उसी से वापस चलना है।

डिंगल कविता सीधी-सादी कविता है। इसमें अलंकारों की प्रधानता नहीं है, भाव या अर्थ की प्रधानता है। अलंकारों का

अलङ्कार प्रयोग भी डिंगल के कवियों ने किया है परन्तु बहुत थोड़ा और संयम के साथ। अलंकार ज्ञान-प्रदर्शन के हेतु भाव को भ्रष्ट करने की प्रवृत्ति इनमें कहीं दिखाई नहीं देती।

अर्थालंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि सादृश्य मूलक अलंकार डिंगल में अधिक देखने में आते हैं, खासकर उन स्थानों पर जहाँ सेना, युद्ध, प्रकृति और रूप-सौन्दर्य का वर्णन किया गया है। सांगरूपक डिंगल कवियों के विशेष रूप से बहुत सुन्दर बन पड़े हैं। इनमें बड़ी कांति, स्वाभाविकता और पूर्णता है। उदाहरण—

गीत छोटो साणौर

(१) पं कीरत बीज, खेत रजपूती
  दाह सत्रा उर खात दियौ।
हळ भालौ करता बड़ हाळी
  करमण आरम्भ गजब कियौ ॥१॥
काकळ प्रधळ वाहणी काढै
  महपत सबळ घणां दळ माण
सत्रह र डगळ किया सह सूधा
  दळ चाउर फेरै दइवांण॥२॥
अरि अळियौ जड हूंत उपाडै
  साकुर भोरी हॉक सरै।
ल्हास[५०] करै फौजा बड़ लगर
  कीध नीनाणी समर करै ॥३॥
लगरवत दूल्हावत लाला
  सुपह दात फरसा कर सार।
सर डूचण दौष्या रण सरसा
  बड़ करसा झोका इण वार ॥४॥
पाहड़ धरा अवर कुण पूगै
  जुगतहरा हासल री जोड़।

५० खेती के काम में सहायता देने के लिए बुलाए हुए अवैतनिक व्यक्तियों को जो खाना दिया जाता है वह ल्हास कहलाता है। इसी का दूसरा नाम हलमा भी है।

रस आई जाणी रजवाड़ा
रजवट री खेती राठोड[५१] ॥५॥

कवित्त

(२) भड़ वड पाळ प्रबध, अग छंग किया तरोवर।
गेहर नीर मम भरे, मंछ नाचत सरोवर ॥
सीस कॅवळ फूलियौ, चवर सेवाळ परठ्ठै।
भॅवर ग्रीध भणहणै, हस गता कर दिठ्ठै ॥
सुण सूर त्रप रिडमाल सुत, काळीकी खप्पर भरै।
सत दूण सगण धडीग जिम गिण नाळा मजण करै[५२] ॥१॥

शब्दालकारों में वैणसगाई डिंगल का एक अत्यन्त लोकप्रिय अलकार रहा है। यह एक प्रकार का शब्दानुप्रास है। परन्तु सस्कृत-हिंदी के अलंकार-ग्रंथों में इसका नाम नहीं मिलता। यह डिंगल का अपना अलकार है। डिंगल के रीतिग्रथो मे इसकी बड़ी महिमा गाई गई है और कहा गया है कि

---

५१ पृथ्वा म कीर्ति बीज है, रजपूती खेत है और शत्रुओं के हृदय की दाह खाद है। हे बड़े खेतिहर ! भाले को हल बनाकर तूने गजब की खेती करना प्रारम्भ कर दिया है ॥१॥ युद्ध में जबरदस्त सेना लेकर, बहुत मे बलवान राजाओ की सेना का मान-मर्दन कर, तूने शत्रु-रूपी समस्त ढेलों को सीधा कर दिया है और हे श्रेष्ठ ! उन पर अपनी सेना का पटा फेर दिया है ॥२॥ अश्वरूपी बैलों को हाककर तू ने शत्रु-रूपी कूडा-कर्कट को जड़ से उखाड़ दिया है, बडी सेना की लहास बनाकर तू ने समर-रूपी निराई कर डाली है ॥३॥ हे सेनाओं से युक्त ! दूल्हा के पुत्र ! राजा लालसिंह ! तेरे हाथ में तलवार रूपी दाती-फरसा है। तू रण में शत्रुओं के सरों को दबानेवाला है। हे बडे कृषक ! इस बार तुझे धन्य है ॥४॥ हे जुगनसिंह के पोते ! ऐसी पहाडी धरती तक और कौन पहुच सकता है। और कौन तेरे हासिल की बराबरी कर सकता है। तेरी खेती मे रस आया, यह सब रजवाडों ने जान लिया है। हे राठौड ! यह रजपूती की खेती है ॥५॥

५२ शत्रुओं के अगों को वृक्षों को छांगने के समान काट-काटकर तालाब की पाल के समान ढेर लगा दिया है। जिसमें पानी के स्थान पर रक्त भरा हुआ है। वीरों के टूटे हुए अगों के टुकड़े मछलियों की भाँति उसमें नाच रहे हैं। उनके सिर फूले हुए कमल के समान और केश सिवार के समान शोभा दे रहे हैं। गिद्ध-रूपी भौंरे भिनभिना रहे हैं, उनके हाथ प्रसन्न चित्त हस के समान दिखाई दे रहे हैं। रिणमल के पुत्र शूरवीर चॉपा के युद्ध की प्रशसा सुन कालिका खप्पर भर रही है। और चौदह ही गण निरन्तर पानी के अन्दर रहने वाले कमल के समान स्नान कर रहे है।

जिस स्थान पर वैणसगाई संघटित हो जाती है वहाँ फिर अशुभ गण, दग्धाक्षर इत्यादि के दोष नहीं रह जाते—

आवै इण भाषा अमल, वयण सगाई वंस।
दग्ध अगण बद दुगण रो, लागै नहँ लवलेस॥
खून कियाँ जाणौ खलक, हाड़ वैर जो होय।
वैण सगाई वयण तो, कल्पत रहै न कोय॥

वैणसगाई 'वैण' और 'सगाई' इन दो शब्दों से मिलकर बना है और इसका अर्थ होता है, वर्ण का संबंध या वर्ण द्वारा स्थापित संबंध। वैण-सगाई का साधारण नियम यह है कि छंद के किसी चरण के प्रथम शब्द का प्रारंभ जिस वर्ण से हुआ हो उसके अंतिम शब्द का प्रारंभ भी उसी वर्ण से होना चाहिए। जैसे—

(१) सखी अमीणो साहिबौ सूर धीर समरत्थ।
जंग में वामण डड जिम, हेली बाधै हत्थ॥

(२) दाटक अनड दंड नहँ दीधौ
दोयण घड सिर दाव दियौ।
मेळ न कियौ जाय बिच महला
कैलपुरै खग मेळ कियौ॥

वैणसगाई के सात भेद माने गये हैं जिनमें तीन मुख्य हैं—अधिक, सम और न्यून। इनको क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधम भी कहते हैं।

(१) अधिक—जहाँ चरण के पहले शब्द और अन्तिम शब्द के आदि के वर्णों को मिलाया जाय। यथा—

विकट करो तीरथ वरत, धरा भेष के धार।
बिना नाम रघुवीर रे, परत न उतरै पार॥

(२) सम—जहाँ चरण के प्रथम शब्द के आदि के अक्षर और अंतिम शब्द के मध्य अक्षर का मेल किया जाय। यथा—

नाम लियाँ थी मानवाँ, सरकै कलुष विसाल।
मह जैसे मेटै तिमिर, रसम परस किरमाळ॥

(३) न्यून—जहाँ चरण के आदि के और अंत के अक्षरों को मिलाया जाय। यथा—

मरद जिके संसार में, लखजै जीव विसाल।
रात दिवस रघुनाथ रा, ळेवै नाम रसाल ॥

डिंगल के रीति ग्रन्थों में 'वैणसगाई' का निर्वाह न होना कोई दोष नहीं माना गया है। परन्तु प्राचीन कवियों ने और विशेषकर मध्यकालीन कवियों ने, इसका ऐसी कट्टरता से पालन किया कि परवर्ती कवियों के लिये यह एक अनिवार्य नियम सा बन गया, और छोटे-बड़े सभी कवि इसका निर्वाह करते रहे। यदि किसी स्थान पर वैणसगाई का निर्वाह किसी कवि से न होता तो वह काव्य-दोष तो नहीं माना जाता था परन्तु उस कवि की कवित्व-शक्ति की कमजोरी का सूचक अवश्य समझा जाता था। बूंदी के कविराजा सूरजमल पहले व्यक्ति थे जिन्होंने पहले पहल इस बात का अनुभव किया कि वैणसगाई एक प्रकार का कृत्रिम बंधन है जो न केवल कवि-कल्पना की स्वाभाविक गति को बाधा पहुँचाता है, बल्कि उसकी वजह से भाव के स्पष्टीकरण में भी कठिनाई होती है, और कभी-कभी रसोद्रेक को भी आघात पहुँचता है। अतएव उन्होंने इसकी उपेक्षा करना प्रारंभ किया। परन्तु अपने समकालीन कवियों के रोष का भय उन्हें भी था। इसलिए अपनी 'वीर सतसई' में यह दोहा लिखकर उन्होंने अपनी सफाई दी—

वैण सगाई वाळियाँ, पेखिजै रस पोस।
वीर हुतासण बोळ में, दीसे हेक न दोस[५३] ॥

सूरजमल अपने समय में राजस्थान के सर्वश्रेष्ठ कवि थे और राजस्थान के कवि-समाज पर उनका बड़ा दबदबा था। अत: उनकी देखादेखी दूसरे लोग भी वैणसगाई के प्रयोग में कुछ ढिलाई करने लगे। परन्तु इसका प्रयोग बिलकुल बंद फिर भी नहीं हुआ। सूरजमल्ल के पहले यह बात थी कि वैणसगाई के बिना डिंगल कविता की कल्पना ही नहीं की जा सकती थी। वैसी बात तो फिर नहीं रह गई। लेकिन वैणसगाई का निर्वाह करनेवाले कवियों को तरजीह फिर भी दी ही जाती थी जो प्रवृत्ति आज भी कुछ लोगों में देखी जाती है। और डिंगल के गीतों में तो वैणसगाई का पालन आज भी उसी कठोरता से किया जाता है जैसा प्राचीन-काल में कभी किया जाता था।

---

५३ वैणसगाई के नियम को जला देने से वीर रस का पोषण ही दिखाई देता है। वस हुतासन (अग्नि) के रंग में दोष तो एक भी दिखाई नहीं देता।

संस्कृत-हिन्दी में प्रयुक्त गाहा, पद्धरि, मुक्तादाम, भुजगप्रयात तोमर, त्रोटक, इत्यादि प्रसिद्ध-प्रसिद्ध प्रायः सभी छंदों का प्रयोग

छन्द

डिंगल के कवियो ने भी किया है। परन्तु दोहा, कवित्त (छप्पय), नीसाणी, झूलना, कुंडलिया, दवावैत, वचनिका, झमाल, बेअक्खरी और गीत छंदों का प्रयोग अधिक देखने में आता है। इनमे से भी दोहा, कवित्त और गीत का प्रयोग विशेष रूप से बहुत ज़्यादा हुआ है।

दोहा एक मात्रिक छन्द है। राजस्थान में यह 'दूहो' कहलाता है। इसका बहुवचन 'दूहा' होत है। हिंदी में 'दोहा' एक ही

दोहा

प्रकार का माना गया है। परन्तु डिंगल मे इसके पाँच भेद बताए गये हैं—दूहो, सोरठियो दूहो, बड़ो दूहो, तूंवरी दूहो और खाड़ो दूहो।

(१) दूहो—इसमे चार चरण होते हैं। पहले और तीसरे चरण में १३। १३ मात्राएँ तथा दूसरे और चौथे चरण में ११। ११ मात्राएँ होती हैं। जैसे—

> जिण वन भूल न जावता, गैंद गिवल गिड़राज।
> तिण वन जबुक ताखड़ा, ऊधम मडै आज॥

(२) सोरठियो दूहो—यह हिंदी का सोरठा है। डिंगल के कवियों ने इसकी बड़ी प्रशंसा की है। इसके पहले और तीसरे चरण में ११। ११ मात्राएँ तथा दूसरे और चौथे में १३। १३ मात्राएँ होती हैं। यथा—

> अकबर समँद अथाह, सूरापण भरियौ सजळ।
> मेवाडौ तिण माँह, पोयण फूल प्रतापसी॥

(३) बड़ो दूहो— इसे साँकळियो दूहो भी कहते हैं। इसके पहले और चौथे चरण में ११। ११ मात्राएँ तथा दूसरे और तीसरे चरण मे १३। १३ मात्राएँ होती हैं। जैसे—

> गोपी अकबर राड, कोट झडै नह काँगरै।
> पटकै हाथळ सीह पग, बादल हुै न बिगाड॥

(४) तूंवरी दूहो— इसके पहले और चौथे चरण में १३। १३ मात्राएँ तथा दूसरे और तीसरे चरण में ११। ११ मात्राएँ होती हैं। जैसे—

> मेवा तजिया महमहण। दुरजोधन रा देख।
> केळा छोत विसेख, जाय विदुर घर जीमिया॥

(५) खाड़ा दूहा- इसके पहले और तीसरे चरण में ११। ११ मात्राएँ तथा दूसरे और चौथे में क्रमशः १३ और ६ मात्राएँ होती हैं। जैसे—

नाडी भरियौ नीर टाबरियौ झूलण गयौ।
नरै न पूगौ नीर वो डूबौ ॥

संस्कृत में यह षट्पदी और हिंदी में छप्पय कहलाता है। हिंदी में एक ही प्रकार का छप्पय प्रसिद्ध है। परन्तु डिंगल में इसके

कवित्त

तीन भेद कहे गये हैं। (१) कवित्त (२) सुध कवित्त और (३) दोढा कवित्त।

(१) कवित्त - इसमें छह चरण होते हैं जिनमें पहले चार चरण रोला के और शेष दो दोहा के होते हैं। जैसे—

हहा करै हित हाण, झझा तन व्याध जगावै।
घघो राज भय भरै, ररो धन नास करावै ॥
घघो भ्ररण घट घाट त्रिफल नर ननो नमाड़ै।
खय जस करै खकार, भभो परदेस भमाड़ै ॥
अक आठ कहिया असुभ,चित धुर धरो विचार।
अवभ ईस गुण गावतॉ, लगै न दोस लगार ॥

(२) सुध कवित्त— यह हिंदी का छप्पय है। इसमें भी छह चरण होते हैं, पहले चार रोला के और अन्तिम दो उल्लाला के। जैसे—

एक पडै ऊपड़ै, रथ ऊथडै वक्तर।
सार वहै सूरमा, पार विण छूटै पजर ॥
एक पहर नभ अरक, ईम्ब रहियौ अचंरज्जै।
निरख काळ नचियौ, समै खग चाल सहज्जै ॥
आवस्त जुद्ध परखै अमर, हरखै रिख नारद हर।
कमधज्ज निहट्टै किरमरा, अन जुटै खूटै असुर ॥

(३) दोढो कवित्त— इसमें आठ चरण होते हैं। इनमें पहले छह चरण रोळा के और बाद के दो उल्लाला के होते हैं। जैसे—

प्रथम लाख समपियौ, कवी बारट मकर कर।
लखपति बारट लाख, दीध दूजौ करि डबर ॥
तीजौ लख तिण वार, अजा भादा करि अप्पै।

भणि ताराचँद भाट, मौज लख चवथ समप्पै ॥
पात नाम भट गोप, करै जस प्रगट प्रकासा ।
मौज लाख पाचमौं, जेण बगसै महराजा ॥
पुह सूर करै रूपक परख, अवँ कुरब वहौ क्रीत वरि ।
छत्रपति लाख दीधौ छठौ, कविया भानीदास करि ॥

गीत नाम से प्रायः उस पद्यात्मक रचना का भान होता है जो गाई जाता है। परन्तु डिंगल भाषा के गीत दूसरी तरह के हैं। ये गाये नहीं जाते विशेष ढग से पढे जाते हैं। और इनके लिखने की भी, एक खास शैली है। एक गीत में तीन या तीन से अधिक पद होते हैं। प्रत्येक पद (stanza) दोहला कहलाता है। पूरे गीत मे एक ही घटना अथवा तथ्य का वर्णन रहता है जिसे सभी दोहलों मे प्रकारान्तर से दोहराया जाता है। पहले दोहले मे जो बात कही जाती है वही दूसरे मे भी रहती है। परन्तु दोहराई इस तरह से जाती है कि पढ़ने व सुननेवालों को उसमे पुनरावृत्ति दिखाई नहीं देती और उसका प्रभाव उन पर अधिकाधिक दृढ एव गहरा होता जाता है। नमूने के तौर पर एक गीत यहाँ दिया जाता है :—

गीत

गीत

पाताळ तठै बळि रहण न पाऊ।
रिध्र माडे लग करण रहै ॥
मो म्रितलोक राइसिंघ मारै।
कठै रहूँ हरि, दळिद्र कहै ॥१॥
वीरोचद-सुत अहिपुर वारै।
रवि-सुत तणौ अमरपुर राज ॥
निधि-दातार कलावत नरपुर।
अनंत रौर गति केही आज ॥२॥
रयण-दियण पाताळ न राखै।
कनक-स्रवण रूधौ कविळास ॥
महि पुडि गज-दातार ज मारै।
विसन, किसै पुडि माडू वास ॥३॥
नाग अमर नर भुवण निरखता।
हेक ठौड़ छै, कहै हरि ॥

धर और नान्हा सिध धानिया।
कुरिद, तठै लाइ वास कार[५४] ॥४॥

इस गीत मे बीकानेर के महाराजा रायसिंह की दानशीलता का वर्णन है। यही इसका केन्द्रीय भाव है। इसी को शब्दान्तर के साथ चारो दोहलों में दोहराया गया है जो गीत-रचना के नियमानुसार आवश्यक है। यदि कवि एक ही बात को इस प्रकार दूसरे शब्दों मे पुनरावृत्ति न कर सके तो उसकी रचना साहित्य की दृष्टि मे हीन श्रेणी की समझी जाती है।

राजस्थान म एक कहावत प्रसिद्ध है जिससे गीत-रचना की महिमा और लक्ष्य का पता लगता है। "गीतडा के भीतडा" अर्थात् मनुष्य का यश या तो गीतों मे अमर रहता है या देवालय जलाशय आदि बनवाने से। अतः मानव-कीर्ति का अक्षुण्ण रखने के अभिप्राय से लिखे गए गीत डिंगल मे हजारों हा मिलते हैं और यह डिंगल साहित्य की प्रमुख विशेषता है। उत्तरी भारत की अन्य किसी भाषा मे इस तरह के गीत नहीं पाए जाते। कहते हैं कि दक्षिण भारत के मलाबार प्रान्त की भाषा मलयाली मे इनसे मिलते-जुलते कुछ गीत प्राप्त होते हैं।

डिंगल में गीत भक्ति, शृंगार आदि अनेक विषयों पर रचे गये हैं। परन्तु वीर रस के गीतो की सख्या बहुत अधिक है। प्राचीनकाल में इन गीतों को सुनकर वीर पुरुष पतगो की तरह रणाग्नि मे कूद पडते थे और वीरागनाएँ जौहर-ज्वाला मे बैठ जाती थी। इस तरह के गीत लिखनेवाले अब राजस्थान में गिने-चुने रह गए हैं और ठीक तरह से रिसाइट करनेवाले भी दो चार ही हैं। यह कला अब दिन-दिन नष्ट हो रही है।

५४— पाताल में बलि है इसलिए मे वहा नहीं रह पाता हूँ। स्वर्ग में रिद्धि सहित कर्ण रहता है। इस मृत्युलोक मे मुझे रायसिंह मारता है। दारिद्रय कहता है कि हे हरि ! आ ही बनाइए अब मे कहा रहूँ ॥१॥ नागलोक में विरोचन का पुत्र बलि मुझे दूर भगाता है। देवलोक में सूर्य के पुत्र कर्ण का राज्य है। नरलोक में कल्याणसिंह का पुत्र, निधि दातार (रायसिंह) है। हे अनन्तदेव मेरी आज अन्यत्र कहा गति है? ॥२॥ पृथ्वी का दान करने वाला बलि मुझे पाताल म नहीं रखता। स्वर्णदान करनेवाले कर्ण ने मेरे लिए स्वर्ग का द्वार बंद कर रखा है। इस पृथ्वी मडल पर हाथियो का दान देनेवाला रायसिंह मुझे मारता है। हे विष्णु, मे किस लोक मे अपना निवास बनाऊँ ॥३॥ नागलोक, अमरलोक एवं नरलोक का निरीक्षण करने के बाद हरि कहते हैं कि अब एक स्थान बाकी है। हे दारिद्रय ! तू रायसिंह द्वारा परास्त शत्रुओं के घरों में जाकर वास कर ॥४॥

कहा जा चुका है कि ये गीत रिसाइट करने के लिए हैं। इनका सौन्दर्य और चमत्कार अधिकतर ठीक तरह से रिसाइट करने पर निर्भर रहता है। पत्रारूढ होने ही इनका सारा ओज एव चमत्कार नष्ट हो जाता है। प्रायः देखा गया है कि जो गीत लिखित रूप में बहुत साधारण कोटि का प्रतीत होता है, वही जब किसी योग्य व्यक्ति के मुँह से बाहर निकलता है तब दूसरा ही दिखाई देने लगता है। अतएव क़ागज पर पढकर इनकी अच्छाई-बुराई के विषय में सम्मति देना अनुचित है, जैसा कि कुछ लोगों ने किया है।

गीतों के कई भेद हैं। डिंगल के भिन्न-भिन्न रीति ग्रन्थों में इनकी संख्या भिन्न भिन्न बतलाई गई है। उदाहरणार्थ रणपिंगल मे ३३, रघुनाथरूपक मे ७२ और रघुवरजसप्रकास में ६४ प्रकार के गीतों का लक्षण-उदाहरण सहित विवेचन है। अंतिम ग्रन्थ रघुनाथरूपक के रचयिता किशनजी आढ़ा ने यह भी लिखा है कि गीतों के नाम ६६ सुने गए हैं। परन्तु देखने मे नहीं आए और जब देखा नहीं है तब उनका वर्णन कैसे किया जा सकता है :—

> वसंत रमण आदक बरतावै, गीत निनाणु नाम गिणावै।
> सुणिया दीठा जके सखी जै, विण दीठा किण भात वदीजै ॥

इन ६४ प्रकार के गीतों में विशेष प्रचलित गीत 'छोटो साणौर' है। डिंगल के कवियों ने इसी का व्यवहार अधिक किया है। अतः इसके स्वरूप को समझ लेना आवश्यक है। इसके प्रत्येक दोहले में चार चरण होते हैं, और पहले तथा तीसरे चरण मे १६। १६ मात्राएँ और दूसरे तथा चौथे चरण में यदि अंत म गुरू हो तो १४। १४ मात्राएँ और लघु हो तो १५।१५ मात्राएँ होती हैं। परन्तु प्रथम दोहले के प्रथम चरण मे १८ मात्राएँ होती हैं। जैसे—

> कर घातै मूछ कहौ की ऊपर
> ठाकर बोरा बाद ठहै।
> राजकुळा पैंतीस रायमल
> करबा ओळग मेळ कहै ॥१॥
> कनक तुरी डँड लै कुंभावत
> राया माल मकर मन रीस।
> मंडलवै मेवाड़ नरेसुर
> पाय विलग्गा कुळ पैंतीस ॥२॥

बळ परहरै बना बघ बोलै
सनस असा राखै घर सूत ।
गण तुहाली पोळ रायमल
राजधणी मेवै रजपूत ॥३॥

काव्य के मुख्य अर्थ की प्रतीति को हानि करनेवाली वस्तु को दोष कहते हैं। डिंगल में काव्य-दोष ग्यारह प्रकार के माने गए हैं—

काव्य दोष अध, छक्काळ, हीण, निनंग, पागळौ, जातविरोध. अपस, नाळछेद, पखतूट, बहरौ और अमगळ ।

(१) अध—जहाँ उक्त विषय का निर्बाध निर्वाह न हो सके और किसी चरण में उक्त विषय सम्मुख और दूसरे में परामुख हो तो वहाँ यह दोष माना जाता है। जैसे—

दिलडा ! समझ रै सगळौ जग दाखै
पछै घणौ पिछतासी ।
पुरुष जनम कद तू पामैला
गुण कद हरि रा गासी ॥१॥
मात-पिता बँधव दौलत-मद
सुत त्रिय जोड़ सँधाणौ ।
माया रा आडबर माँहि,
बदा ! केम बँधाणौ ॥२॥
समुझै क्यूँ न अजूँ समझाऊँ,
भूल मती हिव भाया ।
दौड़ै ऊमर चटका देती
छित जिम बादळ छाया ॥३॥
सोवै खाय करै नहैं सुक्रत
खोवै दीह खलीता ।
प्रीत करै सिमरै सीतापत
जिकै जमारौ जीता ॥४॥

इस गीत के प्रथम और द्वितीय दोहले में परामुख उक्ति है। तृतीय में सम्मुख उक्ति है। और फिर चतुर्थ में परामुख उक्ति है। एक ही उक्ति का निर्वाह नहीं हुआ है। अतः यहाँ अंध दोष है ।

(२) छवकाळ — विरुद्ध भाषाओं अथवा विभिन्न भाषाओं को डिंगल में मिला देने से यह दोष आ जाता है। जैसे—

प्रीति करै तीरथ रै ऊपर,
मौज दियै - मन मानी।
तक्यौ न मन हर· पग जिह ताई
पार न उतरै प्रानी ॥१॥
कर विधान करवत ले कासी
ले व्रज रेणू लेटे।
पग्यौ न दिल प्रभु रै पद-पंकज
भिसत न त्यॉंतिक भेटै ॥२॥

यह पद्य डिंगल भाषा का है। परन्तु इसमें 'प्रानी' शब्द ब्रजभाषा का और 'भिसत' शब्द फारसी का आ गया है। इसलिए छवकाळ दोष है।

(३) हीण— जहाँ कोई निश्चित अर्थ न हो सके अथवा जहाँ अर्थ का अनर्थ होने की संभावना हो वहाँ यह दोष होता है। यथा—

"अज अजेय जगईस"
"जग में राम तुहालै जोड़े, हुवो न कोई फेर हुवै"।

प्रथम उदाहरण में 'अज' से अभिप्राय शिव से है या ब्रह्मा से या विष्णु से यह बात स्पष्ट नहीं है। क्योंकि ये तीनों ही अजन्मा और जगत के ईश हैं। दूसरे में 'राम' शब्द से यह पता नहीं लगता कि कवि रामचन्द्र का वर्णन कर रहा है अथवा परशुराम का अथवा बलराम का। अतः हीण दोष है।

(४) निनग— जहाँ क्रमभंग वर्णन हो अर्थात् जो बात पहले कहने की हो उसे बाद में कहा गया हो और जो बाद में कहने की हो उसका उल्लेख पहले कर दिया गया हो, वहाँ यह दोष होता है। जैसे—

"रद नद तिरत कबंध, -सार इम चली निनंग सुज।"

पहले तलवारें चलती हैं, बाद में रक्त बहता है और फिर कबंध तैरते हैं। परन्तु उक्त पंक्ति में उलटा वर्णन किया गया है। इसमें रक्त की सरिता में कबंध के तैरने का वर्णन पहले और तलवार के चलने का वर्णन बाद में किया गया है। अतः निनग दोष है।

(५) पागळौ— छंदशास्त्र के नियमों के विरुद्ध किसी छंद के किसी चरण में कम अधिक मात्राओं का होना पागळौ दोष कहलाता है। जैसे—

सागर पूछै सफराँ, आज रतबर काह।
भारत तणी उमेदिया, खाग झकोळी माँह ॥

यह दोहा है। छंदशास्त्र के अनुसार इसके पहले तथा तीसरे चरण में १३। १३ मात्राएँ और दूसरे तथा चौथे में ११। ११ मात्राएँ होनी चाहिएँ। परन्तु यहाँ ऐसा नहीं हुआ है। पहले चरण में बारह ही मात्राएँ हैं। इसलिए पाँगळौ दोष है।

(६) जात विरोध—यदि किसी गीतादि के भिन्न भिन्न चरण भिन्न भिन्न जाति के छंदों के हों तो वहाँ यह दोष होता है। जैसे—

अवनी में जिके भलाई आया
करै सदा सुकरत रा काम।
दान सदा वितसारूँ देवै
नित रसणा लेवै हरिनाम ॥१॥
गिणजै सद ज्याँरी जिंदगाणी
उमै विरद धरियाँ अखत।
पारमै दौलत पुन पाणाँ
पुणै सुवाणाँ सीतपत ॥२॥
धन वे पुरुष बड़ा पणधारी
खलक सिरोमण सुजस खटै।
उमगे दान ऊधमै आचाँ,
राम राम मुख हूँत रटै ॥३॥
देह जिकण वाताँ ऐ दोई
तिके सदाई तीखा।
बीजा जड़ जंगम वसुधारा
सारा जीव सरीखा ॥४॥

जिस जाति का गीत हो उसके सभी चरणों में उसी जाति के चरण आने चाहिएँ। परन्तु उक्त गीत में प्रथम चरण बेलियो गीत का, दूसरा खुडद साणौर का, तीसरा सोहणा गीत का और चौथा जाँगड़े गीत का है। अतः जात विरोध दोष है।

(७) अपस—जहाँ किसी बात का सीधा वर्णन न करके कूट-अर्थ पहेली की तरह घुमा-फिराकर किया गया हो वहाँ यह दोष होता है। जैसे—

नदियाँ सुत तासु सुता रौ नायक, जिणनूँ काठौ झालै।
जलसुत मीत तासु सुत जिणनूँ, घात कदै नहँ घालै॥

यहाँ सीधा विष्णु न कहकर नदियों का स्वामी समुद्र और उसकी कन्या का पति कहा गया है, और यमराज न कहकर जल का पुत्र कमल, उसका मित्र सूर्य और उसका पुत्र कहा गया है। इसलिए अपस दोष है।

(८) नाळछेद—काव्य-परिपाटी के विरुद्ध किसी विषय का मनमाने ढंग से वर्णन करना नाळछेद दोष कहलाता है। जैसे—

कच-अहि मुख-ससि लक-स्यंघ कुच-कोक नाळछिद।

यहाँ पहले चोटी का और बाद में मुख का वर्णन किया गया है जो नखसिख-वर्णन की परपरा के विरुद्ध है। इसी तरह कमर और कुच के वर्णन में भी क्रमभग हुआ है।

(९) पखतूट—जहाँ छद में कच्ची जोड़ अर्थात् अनुप्रास रहित पद और पक्की जोड़ अर्थात् अनुप्रास सहित पद दोनों का समावेश हुआ हो वहाँ पखतूट दोष होता है। जैसे—

अठी राम रा सुभड़ नै रावण उठी
लंक रै जोरवर खेत लडवा।
तीर सेलां छूरा झीक तरवारियाँ,
बाजिया विनै ही रभ बग्वा॥ १॥
उड़ै पग हात किरका हुवै अग रा
वहै रत जेम सावण वहाळा।
आप आपा बरी जोय नै आडियाँ
लड़ै रिण भलभलौ निराताळा॥ २॥
तहक नीसाण गिरवाण हरखाण तन
चिता सरसाण रभगाण चाळै।
निडर रिखराण गणपाण वीणा नचै
भाण रथ ताण धमसाण भाळै॥ ३॥
हयो कुभेणसा जोधहर श्रीहथा,
करै कुण तेण परमाण काया।
जगत सारो अजू साख दे जिकण री,
खोपरी गुळ्चा भीम खाया॥४॥

इस गीत के प्रथम दो दोहला में कच्ची जोड और आगे पक्की जोड है। इसलिए पखनट दोष है।

(१०) वहरो—जहाँ शब्द-योजना इस तरह की हो कि शब्दों का दुतरफा मतलब निकलकर भ्रम पैदा हो जाय वहाँ यह दोष होता है। जैसे—

"रामण हणियौ राम"

इसम राम ने रावण को मारा, और 'रावण ने राम को मारा' दोनों अर्थ निकलते हैं। कुछ और उदाहरण देखिए:—

"नरां न ठीणौ नारियाँ"
"वीर भागौ नहीं मार वागा"
"पराजै हुई नहँ फतै पाई"

(११) अमगळ—यदि छद के किसी चरण के पहले और अतिम अक्षर के मिलने से कोई अमंगल-सूचक शब्द बनता हो तो वहाँ पर यह दोष होता है। जैसे—

"महपत मे पथ गस रे"

छप्पय की इस तुक के पहले अक्षर 'म' और अन्तिम अक्षर 'रे' से 'मरे' शब्द बनता है जो अशुभ है। अतः अमगळ दोष है।

× × × × × × ×

पिंगल

पिंगल शब्द का वास्तविक अर्थ छदशास्त्र है। परन्तु राजस्थान में इससे ब्रजभाषा अर्थ भी लिया जाता है और इस अर्थ मे इसका प्रयोग काफी लबे अर्से से होता चला आ रहा है। इधर कुछ वर्षों से इसके अर्थ में थोड़ा-सा परिवर्तन और हो गया है। आजकल लोग 'पिंगल' से 'ब्रजभाषा' अर्थ न लेकर 'राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा' अर्थ लेते हैं और ब्रजभाषा को शुद्ध ब्रजभाषा कहते हैं।

पिंगल मे राजस्थानी की कुछ विशेषताएँ देखकर बहुत से लोग पिंगल को भी डिंगल कह देते हैं। परतु इन दोनों में बहुत अतर है। पिंगल एक मिश्रित भाषा है। इसमे ब्रजभाषा और राजस्थानी दोनों की विशेषताएँ पाई जाती हैं। इसके विपरीत डिंगल मे केवल मारवाडी व्याकरण का अनुकरण किया जाता है।

पिंगल में कितना अंश ब्रजभाषा का और कितना राजस्थानी का हो, इसका कोई नियम नहीं है। यह कवि की इच्छा और अभ्यास पर निर्भर है। किसी का झुकाव ब्रजभाषा की ओर अधिक रहता है, किसी का राजस्थानी की तरफ विशेष पाया जाता है। उदाहरण-स्वरूप पृथ्वीराज रासौ को लीजिए। इसमें राजस्थानी की अपेक्षा ब्रजभाषा की विशेषताएँ अधिक देखने में आती हैं। दूसरा उदाहरण सूरजमल कृत वंशभास्कर का है। इसकी भाषा का झुकाव राजस्थानी की ओर अधिक है।

पिंगल साहित्य भी राजस्थान में लगभग उतना ही रचा गया है जितना कि डिंगल साहित्य। खुमाण रासौ, पृथ्वीराज रासौ, हमीर रासौ, अवतार चरित्र, राजविलास, पांडव यशेन्दु चन्द्रिका आदि ग्रंथ पिंगल ही के हैं। इनके अतिरिक्त पिंगल की फुटकर रचनाएँ भी प्रचुर परिमाण में मिलती हैं।

ब्रजभाषा

पिंगल के सिवा राजस्थानी कवियों के लिखे शुद्ध ब्रजभाषा के ग्रंथ भी राजस्थान में बहुलता से पाए जाते हैं। बिहारीलाल, कुलपति मिश्र, सोमनाथ, नागरीदास इत्यादि कवियों के ग्रंथ शुद्ध ब्रजभाषा के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

हिन्दी-हिन्दुस्तानी

इधर कुछ समय से हिंन्दी-हिन्दुस्तानी लिखने की प्रथा भी राजस्थान में चल पड़ी है। राजस्थान के आधुनिक गद्य-लेखक अपने ग्रंथ अधिकतर हिंदी-हिंदुस्तानी में लिखते हैं, यद्यपि अपने घरों में बोलते वे राजस्थानी हैं।

अगले पृष्ठों में राजस्थानी, पिंगल, ब्रजभाषा आदि उल्लिखित सभी भाषाओं के साहित्य का इतिहास प्रस्तुत किया गया है जो निम्नलिखित चार कालों में विभक्त है। यह काल-विभाजन मुख्यतः राजस्थानी भाषा और साहित्य के क्रमिक विकास को देखकर किया गया है—

प्रारंभ काल—सं० १०४५—१४६०
पूर्व मध्यकाल—स० १४६०—१७००
उत्तर मध्यकाल—स० १७००—१९००
आधुनिक काल—स० १९००—२००५

दूसरा प्रकरण

प्रारंभ काल (सं० १०४५-१४६०)

इस काल का साहित्य जितना अधिक राजस्थानी भाषा में मिलता है उतना भारत की अन्य किसी प्रान्तीय भाषा में नहीं मिलता। जिस प्राचीन भाषा में यह साहित्य रचा गया है उसे पाश्चात्य भाषा-शास्त्रियों ने 'प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी' और गुजराती साहित्यकारों ने 'जूनी गुजराती' नाम दिया है। इसमें आधुनिक राजस्थानी और आधुनिक गुजराती दोनों का पूर्व रूप गुथा हुआ है और प्राकृत-अपभ्रंश की भी बहुत-सी विशेषताएँ पाई जाती हैं।

इस युग के साहित्य-सृजन में जैन मतावलंबियों का हाथ विशेष रहा है। कोई पचास के लगभग जैन साहित्यकारों के ग्रंथों का पता है[1]। परन्तु जैन विद्वानों का यह प्रचुर साहित्य जितना भाषाशास्त्र की दृष्टि से महत्वपूर्ण है उतना साहित्य की दृष्टि से नहीं है, यद्यपि साहित्यिक सौन्दर्य भी इसमें यत्र-तत्र दृष्टिगत होता है।

---

१. कुछ महत्व के नाम ये हैं धनपाल (सं १०८१), जिनवल्लभ सूरि (सं ११६७), पल्ह (सं ११७०), वादिदेव सूरि (सं. ११८४), वज्रसेन सूरि (सं. १२२५), शालिभद्र सूरि (सं १२४१), नेमिचन्द्र भंडारी (सं १२५६), आसगु (सं. १२५७), धर्म (सं १२६६), शाह रयण और भत्तउ (सं १२७८), विजयसेन सूरि (सं १२८८), राम (सं १२८०), सुमति गणि (सं. १२९०), जिनेश्वर सूरि (१२७८-१३३१), अभय तिलक (सं १३०७), लक्ष्मीतिलक (सं १३११-१७), सोममूर्ति (सं १२९०-१३३१), जिनपद्म सूरि (सं १३०१-२२), विनयचंद्र सूरि (सं १३२५-५३), जगडु (सं. १३३१), संग्रामसिंह (सं १३३६), पद्म (सं १३५८), जयशेखर सूरि (सं १३६०-[illegible]), प्रज्ञातिलक सूरि (सं १३६३), वस्तिग (सं. १३६८), गुणाकर सूरि (सं १३७१), अम्बदेव सूरि (सं. १३७१), फेरू (सं. १३७६), धर्मकलश (सं. १३७७), सारमूर्ति (सं १३९०), जिनप्रभ सूरि (सं. १३६०-९०), सोलण (१४ वीं शताब्दी), राजशेखर सूरि (सं १४०५), जयानंदसूरि (सं. १४१०), नरप्रभ सूरि (सं. १४११), विनयप्रभ (सं. १४१२), जिनोदय सूरि (सं. १४१५), ज्ञानकलश (सं. १४१५), पृथ्वीचंद (सं. १४२६), जिनरत्न सूरि (सं. १४३०), मेरुनंदन (सं. १४३२), देवसुन्दर सूरि (सं. १४४०), साधुहंस (सं. १४५५)।

इस काल की बहुत-सी जैन रचनाओं को तो जैन सम्प्रदायवालों ने नष्ट होने से बचा लिया है, पर किसी सम्प्रदाय अथवा समाज विशेष का सहारा न होने से जैनेतर रचनाएँ अधिकतर नष्ट हो गई हैं, और थोड़ी-बहुत जो बची हैं वे भी अभी तक पूरी तरह प्रकाश मे नहीं आ पाई है। केवल शार्ङ्गधर, असाइत और श्रीधर की रचनाओं का पता प्रामाणिक रूप से लग सका है।

ये तीन भाई थे-शार्ङ्गधर, लक्ष्मीधर और कृष्ण। इनके पिता का नाम दामोदर और पितामह का राघव था। इनका लिखा 'शार्ङ्गधर संहिता' नामक एक वैद्यक ग्रथ प्रसिद्ध है। दूसरा ग्रंथ 'शार्ङ्गधर पद्धति' है। यह एक सुभाषित ग्रथ है। इसकी पद्य-सख्या ४६८६ है। इसमे कुछ पद्य इनके और कुछ अन्य कवियों के हैं।

शार्ङ्गधर

इस ग्रथ का निर्माण-काल स० १४२० है। ये दोनो ग्रंथ सस्कृत मे हैं। परन्तु परंपरा से प्रसिद्ध है कि शार्ङ्गधर ने 'हम्मीर रासौ' और 'हमीरकाव्य' नामक दो ग्रथ लोकभाषा मे भी बनाये थे जिनका पता इस समय नही लगता। परन्तु इन ग्रन्थों के कुछ अश इधर-उधर बिखरे मिलते हैं। कुछ 'प्राकृत पैंगल" मे भी हैं। नमूने के तौरपर एक को यहाँ उद्धृत किया जाता है। इस मे रणथंभौर के चौहाण राजा हमीर के सेनापति जज्जल की वीर प्रतिज्ञा का वर्णन है—

> पिधउ दिढ सणाह वाह उप्पर पक्खर दइ।
> बधु समदि रण धसउ हम्मीर बअण लइ।
> उड्डुल णहपह भमउ खग्ग रिउ सीसहि डारउ।
> पक्खर पक्खर ठेल्लि पेल्लि पब्बअ अप्फालउ।
> हम्मीर कज्जु जज्जल भणइ कोहाणल मुहमह जलउ।
> सुलताण सीस करबाल दइ तज्जि कलेवर दिअ चलउ॥

(मजबूत कवच पहनकर, घोड़े पर पाखर डालकर, बंधुजनो को आश्वासन देकर, शाह हमीर के वचनों को ग्रहणकर मैं रण में उतरा हूँ। मैं अंतरिक्ष और आकाश मार्ग में भ्रमण करता हूँ। खड्ग से शत्रुओं के सिरों को काटता हूँ। पाखर से पाखर ठेल-पेलकर पर्वतों को हिलाता हूँ। जज्जल कहता है कि हमीर के कार्य के लिए मैं कोपाग्नि में जलता हूँ। और सुलतान के सिर पर तलवार देकर इस शरीर को छोड़ स्वर्ग को चलता हूँ)

ये सिद्धपुर में पैदा हुए थे और जाति के औदिच्य ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम राजाराम था जो ख्याति प्राप्त कथाकार थे[२]। असाइत-रचित एक छोटी-सी पुस्तक का पता है जिसका नाम 'हंसावली' है। रचना-काल सं० १४२७ है। इसमें मुख्यतः चौपाई छंद प्रयुक्त हुआ है, पर बीच में कहीं-कहीं दोहे भी हैं। तीन भिन्न-भिन्न स्थानों पर तीन विरह-गीत भी हैं। रचना सरस है। उदाहरण—

असाइत

किलकिलतीं वन विचरतीं, बेली वर वीसास।
सांध सामी साहस कीउ, हूँ एकली निरास॥
भणि असाइत भव अतरि, समरि सामणी कंत॥
हंसाउलि धरती ढळी, पीउ पीउ मुखि भणंति॥

ये ईडर के राठौड़ राजा रणमल के समकालीन थे। इनका रचनाकाल सं० १४५७ के लगभग है[3]। इन्होंने 'रणमल छंद' नामक एक छोटा-सा ग्रंथ बनाया जिसमें पाटण के सूबेदार जफरखाँ और रणमल की लड़ाई का वर्णन है। यह युद्ध सं० १४५४ के आस पास हुआ था और जफरखाँ इसमें हारा था।

श्रीधर

रणमल छंद की पद्य संख्या ७० है। भाषा-शैली अलंकारमयी और सजीव है। वीर-रस की उत्कृष्ट रचना है। नमूना देखिए—

हय खुरतल रेणइ रवि छाहिउ, समुहर भरि ईडरवइ आइउ।
खान खवास खेलि बलि धायु, ईडर अडर दुग्गतल गाहुयु॥
दमदमकार दमाम दमक्कइ, ढमढम ढमढम ढोल ढमक्कइ।
तरवर तरवर बेस पहट्टइ, तरतर तुरक पड़इ तलहट्टिइ॥
विसर विरङ्ग वज्जरव पसरइ, रहि रहिमान मनन्तरि समरइ।
गह गुज्जार-निमाज कराणी, हयमर भौज फिरइ सुरताणी॥
मत्तिरि सहस सहिय सिल्लारह, दहु दिसि फिरवी करि पुक्कारह।
सुहड़ सद्द सम्मलिवि रउद्दह, धसमस धूस करइ मफरद्दह॥

डा० ग्रियर्सन और उनके मतानुगामी हिंदी के कुछ विद्वानों ने दलपत कृत खुँमाण रासौ, नाल्ह कृत बीसलदेव रासौ इत्यादि को इस काल की

२. केशवराम काशीराम शास्त्री, कवि चरित, भाग पहला, पृ० ५

3 K. M. Munshi Gujrat and Its Literature, p. 101.

रचनाएँ बतलाया है। और इनके आधार पर अपने रचे हिंदी-साहित्य के इतिहासों में वीरगाथा-काल की स्थापना की है। परन्तु इस विषय में उन्होंने बड़ा धोखा खाया है। यथार्थतः ये ग्रंथ इस काल के नहीं हैं। बहुत पीछे से लिखे गये हैं। हुआ यह है कि इन ग्रंथों के चरित्र नायकों के आविर्भाव-समय को इन रचनाओं का निर्माण-काल मान लिया गया है जो एक भारी भूल है। यदि आज कोई ग्रंथकार भगवान बुद्ध का जीवन चरित लिखे और सौ या दो सौ वर्ष बाद कोई उस, चूँकि उसमें बुद्ध का चरित्रवर्णित है इसलिए, बुद्ध के समय का लिखा हुआ, ढाई हज़ार वर्ष का पुराना ग्रंथ, बतलाए तो यह बात जितनी हास्यास्पद होगी उतनी ही हास्यजनक बात इन रासो ग्रंथों को आज उनके चरित्र-नायकों की समकालीन रचनाएँ बतलाना है।

इन ग्रंथों को प्राचीन बतलाते समय एक दलील यह दी जाती है कि इनके रचयिताओं ने इनमें सर्वत्र वर्तमान कालिक क्रिया का प्रयोग किया है और इससे उनका अपने चरित्रनायकों का समकालीन होना सिद्ध होता है। परन्तु यह भी एक भ्रान्ति है। यह कोई आवश्यक बात नहीं है कि वर्तमान कालिक क्रिया का प्रयोग करनेवाले कवि समसामयिक ही हों। यह तो काव्य रचना की एक शैली मात्र है। काव्य में वर्णित घटनाओं को सत्य का रूप देने के लिए कवि प्रायः ऐसा किया करते हैं। अनेक ऐसे ग्रन्थ मिलते हैं जिनके कर्ता समकालीन न थे पर जिन्होंने वर्तमान कालिक क्रिया का प्रयोग किया है। राजस्थान में चारण-भाट आज भी जब प्राचीन काल के वीर पुरुषों पर ग्रंथ तथा फुटकर गीत आदि लिखते हैं तब वर्तमान कालिक क्रिया का प्रयोग करते हैं। बारहठ केसरीसिंह कृत 'प्रताप-चरित्र' इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है जो सं० १९९२ में लिखा गया है।

इसके अतिरिक्त ये रासो ग्रंथ जिनको वीर गाथाएँ नाम दिया गया है और जिनके आधार पर वीरगाथा-काल की कल्पना की गई है, राजस्थान के किसी समय विशेष की साहित्यिक प्रवृत्ति को भी सूचित नहीं करते। केवल चारण, भाट आदि कुछ वर्ग के लोगों की जन्मजात मनोवृत्ति को प्रकट करते हैं। प्रभुभक्ति का भाव इन जातियों के खून में है और ये ग्रंथ उस भावना की अभिव्यक्ति हैं। यदि इनकी रचनाओं के आधार पर कोई निर्णय किया जाय तब तो वीरगाथा काल राजस्थान में आज भी ज्यों का त्यों बना है। क्योंकि राजा-महाराजाओं अथवा उनके पूर्वजों की कीर्ति के ग्रंथ आदि लिखने का काम ये लोग आज भी उसी उत्साह से कर रहे हैं जिस उत्साह से

पहले किया करते थे। परन्तु राजस्थान के वातावरण तथा इन जातियों से अपरिचित लोगों का यह बात समझ लेना कुछ कठिन है।

ये तपागच्छीय जैन साधु शान्तिविजय के शिष्य थे। इनका असली नाम दलपत था। परन्तु दीक्षा के बाद बदलकर दौलतविजय रख लिया गया था। हिंदी के विद्वानो ने इनका मेवाड़ के

दलपत

रावळ खुँमाण द्वितीय (सं० ८७०) का समकालीन होना अनुमानित किया हैं, जो गलत हैं। वास्तव में इनका रचनाकाल सं० १७३० और सं०१७६० के मध्य में है।[४]

इनका रचा 'खुमाण रासौ' एक प्रसिद्ध ग्रथ है। इसमें बापा रावळ सं० ७६१) से लेकर महाराणा राजसिंह (सं०१७०६—३७) तक के मेवाड़ के राजाओं का वृत्तान्त है—

राणौ इक दिन राजसी, सह लै चढ्यौ शिकार।
गग त्रिवेणी गोमती, अनड़ छु विचै अपार॥
नदी निरखी नागद्रहो, चिंतइ राजड़ राण।
नदी बँधाऊँ नास कर,(तो) हूँ सही हिंदवाण॥

परन्तु खुंमाण का वृत्तान्त अधिक विस्तार से होने के कारण इसका नाम 'खुमाण रासौ' रखा गया है।

खुंमाण रासौ आठ खण्डों में विभाजित है। इसकी भाषा पिंगल है। रचना इस प्रकार की है—

कवित्त

आव भाव अंबाव, भगति कीजै भारत्ति
जाग जाग जगदंब, सत सानिध सकत्ति
प्रसन होय सुरराय, वयण वाचा वर दीजै।
बालक बेलें बाँह, प्रीत भर प्यालो पीजै॥

महाराज राज-राजेश्वरी, दलपति सूं कीजै दया।
घन मौज महिर मातगिनी, माथ करौ मोसूँ मया॥

भ्रकुटि चंद झलहळै गंग खळहळै समुज्जळ।
एकदंत उज्जळो, सुंड ललवलै रुंड गळ॥
पुहप धूप मम्मळै, सेस सलवलै जीह लल।
धूम्र नेत्र परजळै, अंग अक्कलै अतुल बल॥

४. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ४४ अंक ४, पृष्ठ ३८७ ३९८

रम टलें विधन दाळिद् अलग, त्रमर ढळ उजळ कमळ ।
सुंडाळ देव रिध सिध दियण, सुमर दास गणपति भवळ ॥

नल्लसिंह का प्रामाणिक इतिवृत्त नहीं मिलता। इनके नाम से प्रचलित विजयपाल रासौ से सूचित होता है कि ये सिरोहिया शाखा के भाट और विजयगढ़ (करौली राज्य) के यदुवंशी नरेश विजयपाल के आश्रित थे जिन्होंने इनको हिंडोन नामक एक नगर, सौ गाँव, हाथी, घोड़े रत्नादि इनाम में दिए थे—

नल्लसिंह

भये भट्ट प्रथु यज्ञ तैं, है सिरोहिया अल्ल ।
वृत्तेश्वर जदुयम के, नल्ल पल्ल दल सल्ल ॥

सीमा सा गजगान, वाजि सोलह सो माते ।
दिये सात सौ ग्राम, सहर हिंडोन सुदाते ॥
सुनर दिये द्वै सहस रुकम गिलमैं भरि अवंरं ।
कंचन रत्न जड़ाव बहुत दीनेजु अडंबर ॥

कुल पूजित राव सिरोहिया, यादवपति निज सम कियव ।
नृप विजयपाल ज विजयगढ, साहू ये जू सम्मपियव ॥

विजयपाल रासौ का थोड़ा-सा अंश उपलब्ध है जिसमें महाराजा विजयपाल की दिग्विजय और पंग की लड़ाई का वर्णन है। इस युद्ध का समय नल्लसिंह ने सं० १०९३ बतलाया है। ग्यारहवीं शताब्दी में करौली पर विजयपाल नाम के एक प्रतापी राजा हुए हैं जिनका करौली और उसके आसपास के अलवर, भरतपुर, धौलपुर आदि राज्यों के कुछ भागों पर अधिकार था[5] परन्तु गजनी, ईरान, काबुल, दिल्ली, ढूँढाड़, अजमेर आदि पर विजयपाल का एक-छत्र राज्य होने की जो बात नल्लसिंह ने अपने इस ग्रन्थ में लिखी है वह इतिहास-विरुद्ध और अनिरंजना है—

बैठइ पाट विजयपाल आग, अल्लालखाँन जीत्यौ गहीर ।
इक लक्ख मीर दहवट्ट कान, रो राख रिद्धि सब खोसि लीन ॥
साहिब्बदान गजनी उंआरि, तत्तारखाँन को मान मारि ।
खुरसान खग्गान गर्त्ति जीति, गज्नी सुटेक जद्दव सुरीति ॥
तेगन अमोरि तूरान तोरि, ईरान पेसकस लीन मोरि ।

5. The Ruling Princes, Chiefs, and Leading Personages in Rajputana, (sixth edition) p 115.

अंछुनि मारि बल्लम उजारि, खन्धार काट सब दीय पारि ॥
काबिली किलङ्गी रोह जीति, राखिय नरेन्द्र हिन्दवान रीति ।
बलकी बुखार सब जेर कीन, खुरसान खोसि इवसान लीन ॥
आरबी रूम लटियाल कूटि, फिरगोन देम दुइ बार लूटि ।
लीनीम पेमकस अवर देश, राखियौ धर्म जद्दव नरेश ॥
पांचाल देश बयराट मारि, अजमेर सोम कौ गर्व गारि ।
मंडोवर कौ परिहार डंडि जोइया पारस खग्गनि खडि ॥
तोंवर अनग दिल्ली सुमांनि थापियौ थान सगपन्न जानि ।
ढूंढाहर मंडे हय खुरनि गाहि पञ्जाब करन निज सेन चाहि॥
मेवात मरुस्थल मद्दि लीन, उतराध पथ सब जेर कीन ।
इहि तेज ताप बिजयपाल राज नाहरा तेग जादव समाज ॥

इस वर्णन से स्पष्ट है कि विजयपाल रासौ विजयपाल के समय की रचना नहीं है। मिश्रबंधुओं ने इसका रचनाकाल सं० १३५५ के आस पास माना है। परन्तु ग्रंथ उतना भी पुराना नहीं है। इसकी भाषा-शैली पर 'पृथ्वीराज रासौ' (१८वीं शताब्दी) और 'वंशभास्कर' (सं० १८९७) दोनों का प्रभाव साफ झलकता है। अतः सं० १९०० के आस पास यह रचा गया है, पर प्राचीन बतलाने के लिए इसके रचयिता ने नल्लसिंह का कल्पित परिचय इसमें जोड़ दिया है जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है।

विजयपाल-रासौ पिंगल भाषा का ग्रंथ है। सब मिलाकर उसमें ४२ छंद हैं—८ छप्पय, १८ मोतीदाम, ८ पद्धरि, ६ दोहे और २ चौपाइयाँ। इसकी वर्णन-शैली सजीव और चित्ताकर्षक है। वीर रस का इसमें अच्छा परिपाक दृष्टिगोचर होता है।

विजयपाल रासौ का थोड़ा-सा अंश और यहां दिया जाता है—

छंद मोतीदाम

जुरे जुध यादव पङ्ग मरद्द, गही कर तेग चढ्यौ रणमद्द ।
हकारिय जुद्ध दुहूं दल शूर, मनो गिरि श्याम जल्लधरि पूर ॥
हलौ हिल हॉक बजी दल मद्धि, भई दिन ऊगत कूक प्रसिद्धि ।
परस्पर तोप बहैं विकराल, गजै सुर भुम्मि सरग्ग पताल ॥
लगैं वर यत्रिय छत्तिय शुद्ध, गिरै भुवभार अपार विरुद्ध ।
बहैं भुवबान ढंक्यौ असमान, खयङ्कर खेचर पाव न जान ॥

वहँ कर मायक यायक जग, लग्ग विप आशिय पासिय अग।
वहँ भिडपालक पाल लगन, उड़ै शिर ढौव धरज्जि पतग ॥
वहँ कर मकुल शीस निसार, परैं विकराल वेवार सुमार।
वहत गुज्ज गहन्त मरद्द, भये शिर चून विखू न गरद्द ॥
मुदग्गर मार वहँ विकराल, लटक्कत भुम्मि फटन्त कपाल।
वहँ कर कत्तिय मत्तिय मार, गिरैं धर मध्य प्रसिद्धि जुझार ॥
लगैं उर मागिसु कगल पार लटक्कत शूर चटक्क कुठार।
लगैं किरवान मुकन्द कुत्तार कटै वर हड्डु जनेनु उतार ॥
लग खपुवा नमडाड सुमार, किधौं खिरकी दिय छुट्टन्त द्वार।
वहँ कर खजर पंजर भीर मनों मन वान करै मुड चीर ॥
वहँ कर खञ्झर गञ्झर दुज निकरन्त वत्रिय फोरि सुव्याल।
कटक्क कुटन्त गिरंत कपाल, खटक्कत खाग चलें रन ख्याल ॥
गटक्कत गोठिय गिद्धनि गाल, घुटक्कत जुग्गिनि घुण्ड कपाल।
नदन्निमि नाचय मावत नाच चटक्कत चूरि कि रचन आच ॥

नरपति नाल्ह कृत बीसलदेव रासो की हिन्दी संसार में बड़ी चर्चा है। परन्तु इनके व्यक्तिगत जीवन के विषय में हमारी जानकारी प्राय नहीं के बराबर है। कोई इन्हें राणा और कोई भाट बतलाते हैं।

नरपति परन्तु ये सब अनुमान ही अनुमान हैं। कोई सुदृढ़ ऐतिहासिक आधार अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है। लेकिन बीसलदेव रासो में इन्होंने अपने लिए कई स्थानों पर 'व्यास' शब्द का प्रयोग किया है जिससे इनकी जाति पर प्रकाश पड़ता है—

"**व्यास** वचन इम ऊचरई, दिन दिन प्रतिपै बीसलराई।"
प्रथम खंड, छंद ६६

"नरपति **व्यास** कहइ करि जोडि, तौ तूठा तैतिसौ कोडि।"
प्रथम खंड, छंद ८४

"चउरास्या महु वर्णव्या अमृत रसायण नरपति **व्यास**।"
तृतीय खंड, छंद १०३

व्यास जाति राजस्थान में ब्राह्मण जाति के अन्तर्गत मानी जाती है और इसी का दूसरा नाम सेवग या भोजक जाति है। अतः नरपति का ब्राह्मण होना स्पष्ट है। इनके नाम के साथ 'नाल्ह' जो लिखा मिलता है वह यदि

हस्तलिखित प्रतियों में ठीक जगह से पढ़ा गया हो तो इनका अवटक मालूम देता है।

बीसलदेव रासो का पद्रह के लगभग हस्तलिखित प्रतियों का पता है। इनमें सबसे प्राचीन प्रति सं० १६६६ की लिखी हुई है। भिन्न-भिन्न प्रतियों में इसका रचनाकाल भिन्न-भिन्न लिखा मिलता है—

"संवत सहस तिहुतरइ जाँणि"।

"संवत सहस मतिहुतरइ जाँणि, नाल्ह कवीसर सरसीय वाणि"।

"संवत बार बरोतरा मझारि, जेठ वदि नवमी बुधवार।"

"संवत तेर सतोतरइ जाणि"।

नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण में इसका निर्माण-काल सं० १२७२ दिया हुआ है—

"बारह सै बहोतराहाँ मँझारि, जेठ वदी नवमी बुधवारि।

प्रथम-सर्ग, छंद ६

परन्तु ये सभी संवत् प्रक्षिप्त हैं। वास्तव में बीसलदेव रासौ इतना पुराना नहीं है।

'बारहसै बहोतराहाँ' का अर्थ कुछ लोगों ने १२१२ किया है और इस अशुद्ध अर्थ के आधार पर उन्होंने नरपति को बीसलदेव रासौ के चरित्र नायक अजमेर के चौहाण राजा बीसलदेव अर्थात् विग्रहराज चतुर्थ का समकालीन माना है जिनका शासनकाल सं० १२१०-१२२१ है। परन्तु नरपति को विग्रहराज चतुर्थ का समसामयिक नहीं माना जा सकता। कारण, बीसलदेव रासौ में इतिहास संबंधी अनेक ऐसी भूलें विद्यमान हैं जिनका सम-कालीन कवि की रचना में होना असंभव है। यथा—

(१) बीसलदेव रासौ में बीसलदेव का धार के परमार राजा भोज की लड़की राजमती से विवाह होना लिखा है। परन्तु बीसलदेव और भोज का समकालीन होना इतिहास से सिद्ध नहीं होता। इतिहासकारों ने भोज का राज्यकाल सं० १०६७-१११२ निश्चित किया है। अतः भोज और बीसलदेव के समय में लगभग १०० वर्ष का अंतर है।

(२) बीसलदेव रासौ में कालिदास और माघ को बीसलदेव का समका-लीन कहा गया है जो बीसलदेव से बहुत पहले हुए हैं।

(३) बीसलदेव रासौ में लिखा है कि भोज ने बीसलदेव को आलीसर, कुड़ाल, मंडोवर, गुजरात, सोरठ, साँभर, टोंक, तोडा, चित्तौड़ आदि प्रदेश

दहेज में दिए थे। परन्तु इन प्रदेशों का भोज के अधीन होना इतिहास से प्रकट नहीं होता।

(४) बीसलदेव रासौ में जैसलमेर और बूँदी के नाम आये हैं। परन्तु तब तक ये नगर बसे भी न थे।

(५) बीसलदेव रासौ में बीसलदेव के उड़ीसा जीतने की बात कही गई है जिसका समर्थन बीसलदेव के शिलालेखों तथा अन्य ऐतिहासिक सूत्रों से नहीं होता। अजमेर में बीसलदेव नाम के चार राजा हुए हैं। इनमें से किसी ने उड़ीसा नहीं जीता।

(६) बीसलदेव रासौ में बीसलदेव का अपने भतीजे को अपना उत्तराधिकारी नियत करना लिखा है जो गलत है। बीसलदेव के बाद उनका बेटा अमरगांगेय उनकी गद्दी पर बैठा था।

इसके अतिरिक्त बीसलदेव रासो की भाषा भी तेरहवीं शताब्दी की नहीं प्रत्युत सोलहवीं शताब्दी की है। भाषा सम्बन्धी गड़बड़ी का कारण कुछ विद्वानों ने यह बतलाया है कि बीसलदेव रासौ एक गीतकाव्य है और सैकड़ों वर्षों तक लोगों की जबान पर रहने से इसकी भाषा में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। परन्तु यह उनकी कपोल-कल्पना है। बीसलदेव रासौ गीतकाव्य नहीं है। राजस्थान में यह कभी गाया नहीं गया, न आज गाया जाता है; और न इसमें गीतकाव्य के कोई लक्षण मिलते हैं। गीतकाव्य की भाषा में जो चलतापन, छंदों में जो गति, शब्दों में जो मर्मस्पर्शिता और विषय में जो लोकप्रियता होनी चाहिये वह इसमें नहीं है।

डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने बीसलदेव रासौ का निर्माण-काल सं० १२७२ ठीक माना है[६]। परन्तु उनका कहना है कि इसका चरित्र नायक बीसलदेव उपनाम विग्रहराज तृतीय है, न कि विग्रहराज चतुर्थ। विग्रहराज तृतीय का समय उन्होंने सं० ११५० अनुमानित किया है। अतः ओझाजी के कथनानुसार बीसलदेव रासो का रचनाकाल उसके चरित्र नायक के समय से १२२ वर्ष बाद का है। अपने मत की पुष्टि में ओझाजी ने कोई ठोस ऐतिहासिक प्रमाण नहीं दिया। फिर भी उनकी बात को मान लेने से भी बीसलदेव रासौ की इतिहास सम्बधी उल्लिखित त्रुटियों का निराकरण नहीं होता। केवल भोज का समय थोड़ा-सा बीसलदेव के समय के पास आ जाता है।

---

६ नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ४५, अंक २, पृ० १६३-२७१

सोलहवीं शताब्दी में नरपति नाम का एक कवि गुजरात में हुआ है जिसके लिखे चार ग्रन्थों का पता है: नन्दबत्तीसी (सं० १५४५), विक्रम पंचदंड (सं० १५६०), स्नेह परिक्रम और नि. स्नेह परिक्रम[७]। अनुमान होता है कि इन ग्रथों का कर्ता नरपति और बीसलदेव रासो का रचयिता दोनों एक हैं। क्योंकि इनकी भाषा-शैली और शब्दावली बहुत मिलती है-

१ (क) ब्रह्मा बेटी वीनवऊं, सारद करूं पसाइ।
हंस-वाहन हरषि थिकी जिह्वा वसिजै माइ ॥६॥
वीणा पुस्तक धारणी, तू तारणी त्रिभुवन।
कविजन वाणी उच्चरइ, पु तु हुइ प्रसन्न ॥७॥
कास्मीर पुर वासिनी विद्या तणु निधान।
सेवक कर जोडी रहइ, आपइ विद्यादान ॥८॥

—पंचदंड

(ख) कसमीरां पाटणह मँझारि सारदा तुठी ब्रह्म कुमारि।
नाल्ह रसायण नर भणइ, हियडइ हरषि गायण कइ भाइ ॥
खेलाँ मेल्हया मॉडली, वइस सभा मॉहि मोहेउ छइ राइ ॥ ६ ॥
सरसति सामणी तू जग जीण, हंस चढी लटकावै वीण।
उरि कमलाँ भमराँ भमइ, कासमीराँ मुख मडणी माइ।
तो तूठा वर पामिजइ, पाप छयाम्ी जोयगा जाइ ॥ ७ ॥

—बीसलदेव रासौ

२(क) पच शबद वाजइ वाजत्र, राजलोक माँहि आणिउँ पचदड तत्र।

—पचदड

(ख) धूरि दसरावै चाल्यौ राव, वाजित्र वाजइ नीसाँणे घाव।

—बीसलदेव रासौ

३ (क) मादळ भूगळ वाजइ बार, नारी वृन्द मिलिऊ अपार।

पचदड

(ख) चौरी वाढीयो भोज की, वाजइ मादल भूगल भेर।

—बीसलदेव रासौ

४(क) मूसा वाहन वीनउ, जेहनि मादक आहार।
एकदंत दालिद्र हरइ, समरथाँ नृ दातार ॥

—पचदड

७ मोहनलाल दलीचंद देशाई; जैनगूर्जर कविओ, भाग तीसरा खंड -, पृ० २१५१

(ख) कर जौडे नरपति कहइ.।मूसा वाहन तिलक सदूर।
एक दतउ मुख झलमलइ, जाणिक रोहणीउ तप्पई सूर ॥
—बी-रा-

५(क) नगर माँहि गुडी झलहलइ, मट्ठु लाक जोवानी मिलइ
—पं- द-

(ख) घर घर' गूडी ऊछळी, हुवउ वधावउ नगरी धार।
—बी० रा०

६(क) खीरोदक टसरू साडला, नित पहिरवा अगि दीसइ भला।
—प० द०

(ख) दीया खरोदक पहिरणइ. माणिक मात। चौक पुरार।
—बी० रा०

७(क) राजा पुँहुतु नयर मझारि, कन्या मली गढह दुआरी।
—प० द०

(ख) पाड्या प्रधान चल्या तिणी ठाई, गढ अजमेर पहूँता जाय।
—बी० रा०

इस अनुमान से बीसलदेव रासो का रचना-काल भी स० १५४५-६० के आसपास निकल आता है जिसकी पुष्टि उसकी भाषा से भी होती है जो हरगिज सोलहवीं शताब्दी से पूर्व की नहीं है।

बीसलदेव रासौ में बीसलदेव के विवाह, उनकी उडीसा-यात्रा, उनकी राणी के विरह आदि का वर्णन है। इसमे चार खंड हैं। सब मिलाकर २१६ छदों मे ग्रन्थ समाप्त हुआ है। इसकी भाषा गुजराती-राजस्थानी का मिश्रण है। मालूम होता है कि मूल ग्रन्थ गुजराती में था, जिस पर बाद में किसी ने राजस्थानी का रग चढाया है। ग्रन्थ में छदोभग बहुत है। अथ से लेकर इति तक एक पद्य भी इसमे ऐसा नहीं है जो छदशास्त्र की दृष्टि से ठीक हो। हिदी के विद्वानो ने इसे वीर रस की रचना बतलाकर इसकी गणना हिन्दी साहित्य के वीर-गाथा-काल के अतर्गत की है। परन्तु इसमे एक पक्ति कहीं वीर रस की नही है। सारे ग्रन्थ मे राजमती के विरह का वर्णन कुछ ऐसा है जिसमे काव्यत्व की हलकी सी झलक दिखाई देती है। शेष सारा ग्रथ साहित्यिक दृष्टि से बहुत निम्न कोटि का है।

नरपति की कविता का नमूना देखिए जो बीसलदेव रासौ से लिया गया है—

श्रावण बरसइ छइ छाँडीय धार, प्रीय विण खेलइ कवण आधार।
सखीय ते खेलइ काजली, चीडीय कमेडी मांडिय आस।
पपीहो पीऊ! पीऊ! करइ, सखी असल सलावइ मौ श्रावण मास॥
भादवउ बरसइ छइ मगैहर गभीर, जल, थल, महीयल सहू भरया नीर।
जाणे सरवर ऊलटइ, एक अधारी बीचखी बाय॥
सूनी सेज विदेस पीव, दोइ दुख 'नाल्ह' क्यु सहहणा जाइ।
आसोजा घन मडीय आस, माँड्या मदिर घरि कविलास॥
माड्या चौरा चउखडी, माड्या साभरि का रणिवास।
एक बलावे वाहुड्या, नाह उतरी गयो गगा के पार॥

चद बरदाई की जीवनी इतिहास की एक उलझी हुई पहेली है। अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासौ मे जो बाते इनके विषय म लिखी मिलती हैं, वे सब

चंद

सदिग्ध हैं। इनकी बडी ख्याति को देखकर राजस्थान मे आज कई ऐसे व्यक्ति उठ खडे हुए हैं जो अपने को चद का वशज बतलाते हैं। इनमें से कुछ ने नकली वशावलियाँ भी बना ली हैं जिन पर विश्वास लाना भारी भूल है।

परपरा से प्रसिद्ध है कि चंद जाति के राव थे। रासौ मे इनका जन्म लाहौर में होना लिखा है—

बलिभद्र सु नागौर, चद उपज्जि लाहौरह।

आदि सम्या,[८] छद १०३

कुछ लोगों ने चद के पिता का नाम वेण और गुरु का गुरुप्रसाद बतलाया है। परन्तु यह उनकी मनगढ़ंत है। रासौ में कही भी चद ने अपने पिता का नाम नहीं लिखा है। न कहीं अन्यत्र इस बात का उल्लेख है। वेण नाम का कोई कवि राव जाति मे कभी हुआ होगा पर वह चद का पिता ही

८ अध्याय अथवा सर्ग के लिए पृथ्वीराज रासौ की प्राचीन लिखित कुछ प्रतियों म 'प्रस्ताव' और कुछ में 'सम्यौ' शब्द का प्रयोग देखने में आता है। 'सम्यौ' शब्द एक वचन है। इसका बहु वचन 'सम्याँ' होता है। राजस्थान में यह फारसी शब्द 'जमाना' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे, 'काल रो सम्यौ,' 'खोटा सम्याँ आया' इत्यादि। परन्तु हिन्दी के कुछ विद्वान 'सम्यौ' (एक वचन) के स्थान पर 'समय' और 'सम्याँ' (बहु वचन) के स्थान पर 'समयों का प्रयोग करते हैं जो गलती है। वास्तव में 'सम्यौ' का 'समय' से कोई सबध नहीं है। ये दो भिन्न शब्द हैं। इनके अर्थ में उतना ही अन्तर है जितना क्रमश इनके पर्यायवाची अंग्रेजी शब्द Period और Time में है

था, ऐसा मानने का कोई आधार नहीं है। और इनके गुरु का नाम गुरुप्रसाद बतलाने की भूल रासो की निम्नलिखित पंक्ति को पूरी तरह न समझ सकने के कारण हुई है—

तिहि सबद ब्रह्म रचना करौं, गुरुप्रसाद सरसै प्रसन।

आदि सम्यौं, छं० १३

'गुरु प्रसाद' शब्द यहाँ व्यक्ति वाचक संज्ञा नहीं है। इसका अर्थ यहाँ 'गुरु की कृपा से' है।

कहा जाता है कि चंद के कमला उपनाम मेवा और गौरी उपनाम राजौरा दो स्त्रियाँ और राजबाई नाम की एक कन्या थी। परन्तु यह कथन भी प्रमाण-शून्य है। रासौ में इसकी पुष्टि नहीं होती। रासौ में चंद ने केवल अपने लड़कों के नाम लिखे हैं और उनकी संख्या दस बतलाई है।

रासौ में लिखा है कि पृथ्वीराज और चंद दोनों एक ही दिन पैदा हुए थे और एक ही दिन मरे थे—

जीह जोति कवि चंद, रूप संजोगि भोगि भ्रम।
इक्क दीह उपन्न, इक्क दीहै समाय क्रम॥

आदि सम्यौं, छंद ६२

ज्यौ भयौ जन्म कवि चंद कौ, भयौ जनम सामंत सब।
इक थान मरन जनमह सु इक, चलहि कित्ति ससि लगि रब॥

आदि सम्यौं, छंद ७६०

इतिहासकारों ने पृथ्वीराज का जन्मकाल सं० १२२० के लगभग और मृत्युकाल सं० १२४९ निश्चित किया है। अतः पृथ्वीराज रासौ के अनुसार यही समय चंद का भी ठहरता है।

भारतीय विद्याभवन, बंबई, के आचार्य जिन विजय मुनि द्वारा संपादित 'पुरातन प्रबंध संग्रह' (सिंघी जैन ग्रंथमाला पुष्प २) में पृथ्वीराज और जयचंद विषयक प्रबंधों में चंद-रचित चार छप्पय उद्धृत हैं। जिस प्राचीन प्रति में ये छप्पय मिले हैं वह सं० १५२८ की लिखी हुई है। इससे मालूम होता है कि चंद नाम का कोई कवि सं० १५२८ से पहले हुआ अवश्य है। परन्तु वह चंद कब हुआ, कहाँ हुआ, उसने क्या लिखा, कितना लिखा इत्यादि बातों के जानने का कोई साधन प्राप्त नहीं है। केवल एक बात दृढतापूर्वक कही जा सकती है। वह यह कि प्राचीनकालीन वह चंद और अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासौ का कर्ता दोनों एक नहीं हैं। क्योंकि दोनों की भाषा

मे बहुत अन्तर है। 'पुरातन प्रबंध संग्रह' में उद्धृत छप्पयों की भाषा वस्तुतः बहुत पुरानी है, परन्तु आजकल जो ग्रंथ पृथ्वीराज रासौ के नाम से चल रहा है उसकी भाषा उतनी प्राचीन नहीं है। कुछ सुनी-सुनाई बातों के आधार पर १८ वीं शताब्दी में किसी दूसरे व्यक्ति ने चंद के नाम से उसे बनाया है। ऐसी दशा में पृथ्वीराज रासौ के आधार पर चंद का जो इतिवृत्त ऊपर दिया गया है वह ठीक हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता है। यदि पृथ्वीराज रासौ के इस अज्ञातनामा कवि को प्राचीन-कालीन असली चंद की जीवन सम्बन्धी बातों का पता रहा हो और उन्हें अपने इस रासौ में स्थान दिया हो तो संभव है कि इनमें से कुछ बातें ठीक हों। परन्तु इस विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। अब रही इस दूसरे व्यक्ति अर्थात् अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासौ के रचयिता चंद के जीवनवृत्त की बात। और सच पूछिए तो इसी से हमें मतलब भी है। परन्तु इसका जीवन-रहस्य अतीत के अतल अंधकार में छिपा हुआ है और शायद आकल्पान्त रहेगा। पृथ्वीराज रासौ की भाषा, वर्णन-शैली, विषय-सामग्री के आधार पर इस समय तो अधिक से अधिक यही अनुमान लगाया जा सकता है कि यह व्यक्ति राजस्थान-निवासी होना चाहिए। राजस्थान के बाहर का वह नहीं हो सकता।

पृथ्वीराज रासौ कब रचा गया, यह एक समस्या है। इसका प्रथम प्रामाणिक उल्लेख राजप्रशस्ति[१] महाकाव्य में मिलता है। इसके तीसरे सर्ग में रावळ समरसिंह के वर्णन में कोटिंग भट्ट लिखता है कि समरसिंह ने पृथ्वीराज की बहिन पृथाबाई से विवाह किया था और शहाबुद्दीन के साथ की लड़ाई में वह मारा गया जिसका वृत्तान्त भाषा के रासौ ग्रन्थ में लिखा

---

[१] मेवाड़ की वर्तमान राजधानी उदयपुर से ४० मील उत्तर-पूर्व में महाराणा राजसिंह प्रथम (सं० १७०९-३७) का बनवाया हुआ राजसमँद नाम का एक बहुत बड़ा तालाब है। यह तालाब चार मील लंबा और पौने दो मील चौड़ा है। इस पर १०५४७५८४ रुपया खर्च हुआ था। इसके नौचौकी नामक बांध पर ताकों में पच्चीस बड़ी-बड़ी शिलाओं पर खुदा हुआ यह 'राजप्रशस्ति' महाकाव्य भारत भर में सब से बड़ा है। यह काव्य संस्कृत में है। इसमें २५ सर्ग हैं और १०१७ श्लोक। इसमें मेवाड़ का इतिहास वर्णित है। यह काव्य कोरा कल्पना-प्रसूत नहीं है। इतिहास और काव्य दोनों का इसमें सुन्दर समन्वय हुआ है। इसका रचयिता तैलंग जातीय कठोडी कुलोत्पन्न रणछोड़ नाम का कोई पंडित था।

है।[१८] इससे पूर्व के लिखे पृथ्वीराज विजय महाकाव्य (सं० १२४६), प्रबन्ध-चिन्तामणि (सं० १३६१), हमीर महाकाव्य (सं० १४६०), सुर्जन चरित्र (सं० १६३५) इत्यादि संस्कृत-ग्रंथों में, जिनमें पृथ्वीराज अथवा चौहाण-वंशी अन्य राजाओं का वर्णन आया है, रासौ का नाम ही नहीं मिलता। राज-प्रशस्ति की तरह रासौ के लेख का हवाला देना तो बहुत दूर की बात है। न अठारहवीं शताब्दी से पूर्व के किसी भाषा ग्रंथ में इसका नामोल्लेख है। इससे मालूम पडता है कि अठारहवीं शताब्दी में यह बनाया गया है और संभवतः इसकी और राजप्रशस्ति की रचना लगभग साथ साथ ही हुई है।

'राजप्रशस्ति' के लिए इतिहास-सामग्री एकत्र करवाने में महाराणा राजसिंह ने बहुत व्यय किया था और बहुत दूर-दूर तक खोज करवाई थी। फल स्वरूप प्राचीन ग्रन्थों आदि के रूप में इतिहास-विषयक प्रचुर सामग्री प्रकाश में आई और 'राज रत्नाकर' 'राजप्रकाश' आदि संस्कृत-हिन्दी के इतिहास-सम्बन्धी कई ग्रंथ उसी समय नये भी लिखे गये। इसी समय चंद का कोई वंशज अथवा उसकी जाति का कोई दूसरा व्यक्ति रासौ लिखकर सामने लाया प्रतीत होता है। यदि यह व्यक्ति रासौ को अपने नाम से प्रचारित करता तो, लोग उसे प्राचीन इतिहास के लिए अनुपयोगी समझते और उसमें वर्णित बातें उसे सप्रमाण सिद्ध भी करनी पडतीं। अतः चंद-रचित बतलाकर उसने इस सारे झगडे का अंत कर दिया। चन्द का नाम लोक प्रचलित था ही। लोगों को उसकी बात पर विश्वास भी हो गया।

'राज प्रशस्ति' का लिखना संवत १७१८ में प्रारंभ हुआ था और समाप्ति उसकी संवत् १७३२ में हुई थी। अतएव इसी समय के समानान्तर

---

[१८] तत समरसिंहाख्य पृथ्वीराजस्य भूपतेः।
पृथाख्याया भगिन्यास्तु पतिरित्यतिहार्दतः ॥२४॥
गोरी साहिबदीनेन गज्जनीशेन संगरम्।
कुर्वतोऽस्यवर्गस्थ महासामन्तशोभिनः ॥२५॥
दिल्लीश्वरस्य चौहान-नाथस्यास्य सहायकृत्।
स द्वादश सहस्त्रैः स्ववीराणां सहितो रणे॥२६॥
हत्वा गोरिपतिं दैवात् स्वर्यातः सूर्यबिम्बभित्।
भाषा रासा पुस्तकेऽस्य युद्धस्योक्तोस्ति विस्तरः ॥२७॥
—तृतीय सर्ग

का समय 'पृथ्वीराज रासो' की रचना का भी समय है। परन्तु यदि कोई यह कल्पना करे कि 'राजप्रशस्ति' का लिखना आरंभ करने से पूर्व उसके लिए सामग्री जुटाने का काम शुरू हो गया होगा, और सम्भव है कि उसी समय रासौ का भी श्रीगणेश हो गया हो तो इस समय को खींच-खाँचकर संवत् १७०० तक भी ले जाया जा सकता है। परन्तु इससे आगे ले जाना इतिहास और अनुमान दोनों का गला घोटना है।

उपरोक्त कथन की पुष्टि रासौ की प्राचीन लिखित प्रतियों से भी होती है। संपूर्ण रासो की जितनी भी हस्तलिखित प्रतियाँ अभी तक प्राप्त हुई हैं वे उक्त समय के बाद की हैं। इससे पहले की जो भी प्रतियाँ बतलाई जाती हैं वे सब जाली हैं। सब से प्राचीन प्रति सं० १७६० की है। यह मेवाड के महाराणा अमरसिंह द्वितीय के शासनकाल (सं० १७५५-६७) में लिपिबद्ध हुई थी। इसका अन्तिम पुष्पिका-लेख इस प्रकार है—

"संवत् १७६० वर्ष शाके १६२५ प्रवर्त्तमाने उत्तरायन गते श्री सूर्ये शिशिर ऋतौ मन्मागल्यप्रद माघ मासे कृष्ण पक्षे ६ तिथौ सोमवासरे ॥ श्री उदयपुर मध्ये हिन्दू पति पातिसाहि महाराजाधिराज महाराणा श्री अमरसिंहजी विजय राज्ये। मेदपाट ज्ञातीय भट्ट गोवर्धन सुतेन रूपजी ना लिखित चंदवरदाई कृत पुस्तक ॥"

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, द्वारा प्रकाशित रासौ का मूलाधार यही प्रति है और इसी की प्रतिलिपि को उक्त संस्करण के संपादकों ने सं० १६४१ की लिखी हुई बतलाया है जिसकी वजह से विद्वानों में बड़ा भ्रम फैला है तथा डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा प्रभृति इतिहासकार रासौ का रचना-काल सं० १६०० के आसपास निश्चित करने को बाधित हुए हैं। अतः इसके विषय में दो-एक बातें और जान लेना आवश्यक है।

उक्त पुष्पिका के बाद इसके अंत में नीचे लिखे दो छप्पय और दिए हुए हैं—

(१)

मिली पंकज गन उदधि, करद कागद कातरनी।
कोटि कवी काजलह, कमल कटिकते करनी ॥

---

११ देखिए, माधुरी, फरवरी, १९४७ के अंक में प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासौ का निर्माण काल' शीर्षक हमारा लेख, पृ० ७-१०।

इहि तिथि सख्या गुनित, कहै कक्का कवियानै।
इह श्रम लेखनहार, भेद भेदै सोइ जानै॥
इन कष्ट ग्रन्थ पूरन करय, जन वट या दुख ना लहय।
पालियैं जतन पुस्तक पवित्र, लिखि लेखिक विनती करय॥

(२)

गुन मनियन रस पोइ, चन्द कवियन दिद्धिय।
छन्द गुनी तैं तुट्टि, मन्द कवि भिन्न-भिन्न किद्धिय॥
देस देस विष्षरिय, मेल गुन पार न पावय।
उद्दिम करि मेलवत, आस विन आलय आवय॥
चित्रकोट रान अमरेस न्रप, हित श्री मुख आयस दयौ।
गुन बीन बीन करुना उदधि, लखि रासौ उद्दिम कियौ॥

पहले छप्पय के प्रथम दो चरणो का अर्थ स्पष्ट नहीं है।[12] फिर भी इतना तो समझ पडता है कि इस मे इस प्रति का लेखन-काल दिया गया है, जो वही होना चाहिए जिसका पुष्पिका मे उल्लेख है। परन्तु इस बात की ओर ध्यान न देकर इसका गलत अर्थ इस प्रकार किया गया है, "यदि पकज से पकज नाल (१) गन को गुन (६) का अशुद्ध रूप, उदधि से समुद्र (४) और करद से कटार या चाकू (१) जिसका फल एक होता है, मान ले तो सवत् १६४१ बनता है। शेष शब्दों मे मास, तिथि आदि होगी, पर यह स्पष्ट नहीं होता। यदि इस हिसाब मे रासो का सकलन सवत् १६४१ मान लिया जाय, तो कुछ अनुचित नहीं होगा। इसमे कई बातो का सामजस्य हो जायगा।[13]"

दूसरे छप्पय के 'चित्रकोट रान अमरेस न्रप' शब्दो से अभिप्राय चित्तौड के राणा अमरसिंह प्रथम (स० १६५३-७६) लिया गया है[14] और इन दोनो

---

[12] प्राचीन ग्रथो मे 'उदधि' और 'करद' (खड्ग) को क्रमश. ७ और १ की सख्या का सूचक माना गया है। अत "अकाना वामतो गति." नियम के अनुसार 'मिली पकज गन उदधि करद" में "१७" को सख्या तो ठीक निकल आती है पर आगे अर्थ साफ नहीं है।

[13] देखिए स० १९९० की ओरिएण्टल कॉन्फ्रेंस के हिन्दी-विभाग के सभापति की हैसियत से दिया गया डा० श्यामसुन्दरदास का भाषण।

[14] देखिए, नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित पृथ्वीराज रासो की उपसहारिणी टिप्पणी, पृ० १७८।

मिथ्या धारणाओं के आधार पर रासौ की सब से प्राचीन प्रति का लिपि-काल स० १६४१ और रासौ का निर्माणकाल स० १६४१ से पूर्व स० १६०० के आसपास बतलाया गया है। वास्तव में न ता रासौ की सब से प्राचीन प्रति स० १६४१ की लिखी हुई है और न रासो का निर्माण-काल स० १६०० के आसपास है। सवत् १७०० और स० १७३२ के बीच किसी समय यह रचा गया है।

पृथ्वीराज रासौ में हिंदूपति महाराज पृथ्वीराज चौहाण का जीवन चरित्र वर्णित है। परन्तु चरित्र-नायक के समय का लिखा हुआ न होने से इसमें इतिहास विषयक अनेक त्रुटियाँ आ गई हैं। वस्तुतः दो-चार व्यक्तियों के नामों एव घटनाओं का सही उल्लेख होने के अलावा इसमें तथ्य की बात और कुछ भी नहीं है। इसकी ऐतिहासिकता को सिद्ध करने के लिए मोहन-लाल विष्णुलाल पड्या आदि विद्वानों ने अनन्द सवत् आदि की जो उक्तियाँ पेश की हैं वे सब निराधार, भावुकतापूर्ण और भ्रामक हैं।

परन्तु साहित्य की दृष्टि से रासौ एक अपूर्व ग्रथ है। यह एक महाकाव्य है। इसमें एक लाख छद हैं और ६६ प्रस्ताव। भाषा इसकी पिंगल अर्थात् राजस्थानी मिश्रित व्रजभाषा है जिस पर प्राकृत, अपभ्रश, अर्बी, फारसी आदि का भी रग यत्र तत्र लगा हुआ है। इसमें साटक, दोहा, पद्धरि, गाहा, तोमर, भुजगी, आदि अनेक प्रकार के छद प्रयुक्त हुए हैं पर कवित्त (छप्पय) की सख्या सब से अधिक है। कविता रासौ की बहुत सबल, वीरोल्लासिनी एव अर्थ-गौरव पूर्ण है। लिखा है—

> काव्य समुद्र कवि चद कृत, मुकत समप्पन ग्यान।
> राजनीति बोहिथ सुफल, पार उतारन यान॥

रासौ में वीर रस प्रधान तथा शेष रस गौण हैं और, जैसा कि एक महा काव्य में होना चाहिए, सध्या, रात्रि, प्रभात, चद्र, मृगया, वन, ऋतु, सभोग, विप्रलभ, विवाह, रण-प्रयाण इत्यादि का इसमें यथास्थान सन्निवेश हुआ है। चद की प्रतिभा का प्रस्फुटन, कला की छाप तथा चरित्रों का खासा चित्रण रासौ में दिखाई देता है। कथा का तारतम्य निभाने तथा पात्रों का चरित्राकन करने में तो चद सिद्धहस्त थे ही वर्ण्यविषय को साकार रूप दे देने की अद्भुत शक्ति भी उनमें विद्यमान थी। अतः जिस विषय को उन्होंने पकडा उसका ऐसा सांगोपांग, सजीव और विशद वर्णन किया है कि वह मूर्तिमान होकर हमारी आँखों के सामने घूमने लगता है। वस्तुतः रासौ में महाकाव्य

की भव्यता और दृश्य काव्य की सजीवता है। इसकी कथा के वर्णन में बड़ा वेग, बड़ी गति है। बड़ी तेजी के साथ कथा-प्रवाह आगे बढता है और पाठक को भी अपने साथ लेता चलता है। इसके सिवा एक दूसरी विशेषता जो रासौ में देखी जाती है, वह है कर्म-समारोह की वयस्तता, पात्रों की क्रिया-शीलता। एक भी पात्र इसमें ऐसा नहीं है जो निश्चेष्ट एव अकर्मण्य हो। सभी को कुछ और कुछ करना है। अपनी-अपनी धुन में मस्त सभी चले जा रहे हैं। कोइ सैन्य-शिविर में, कोई रणागण में और कोई राज दरबार में। और तो और, जेलखाने तक में पात्रों की हलचल मौजूद है।

व्यक्तियों के चरित्र-चित्रण के अतिरिक्त समष्टि रूप में हिन्दू-मुसलमान दो जातियों का चरित्रोद्घाटन भी रासो में खूब हुआ है। मुसलमानों की धर्मान्धता एव बर्बरता, राजपूतों के शौर्य्य, उनकी डॉवाडोल स्थिति और उनके पतनादि का जैसा मार्मिक, प्रकृत और क्षोभपूर्ण वर्णन रासौ में मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। कहने को तो रासौ पृथ्वीराज का जीवन-चरित्र है परन्तु असल में है वह हिन्दू-मुसलिम सघर्ष की अमर कहानी।

पाठकों के विनोदार्थ चद की कविता के कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं :—

इक्कु वाणु पहुवीसु जु पइ कइबासह मुक्कओ।
उर भिंतरि खडहडिउ वीर कक्खतरि चुकउ॥
बीअ करि सधीउ भमइ सूमेसर नदण।
एहु सु गडि दाहिमओ खणइ खुद्दइ सइभरिवणु॥
फुड छंडि न जाइ इहु लुब्भिउ वारइ पलकउ खल गुलह।
न जाणउ चदबलद्दिउ किं न वि छुट्टइ इह फलह॥१॥

अगहु म गहि दाहिमओ रिपुराय खयंकरु।
कूडु मत्रु मम ठवओ एहु जबूय (प?) मिलि जग्गरु॥
सह नामा सिक्खवउ जइ सिक्खिविउ बुज्झइ।
जपइ चद बलिद्दु मज्झ परमक्खर सुज्झइ॥
पहु पहुविराय सइभरि धणी सयभरि सउणइ सभरिसि।
कइबास विआस विसट्ठविणु मच्छिबधि बद्धओ मरिसि॥२॥

नृप ढकन हल होइ हलह ढकन सु राज भर।
पह ढंकन वर देव देव ढकन वर अम्बर॥

तीसरा प्रकरण

पूर्व मध्यकाल (सं० १४६०-१७००)

मध्यकाल मे पूर्व प्रारभ काल मे राजस्थान और गुजरात की भाषा एक थी, यह बात पहले कही जा चुकी है। पर उसके बाद उसकी दो स्पष्ट शाखाएँ फट गई, राजस्थानी और गुजराती।

राजस्थानी की ढूँढाड़ी आदि सभी बोलियों में साहित्य-रचना होने लगी, पर सबसे अधिक गौरव मारवाड़ी ने प्राप्त किया जिसका साहित्य आजकल डिंगल साहित्य के नाम से प्रसिद्ध है। यह समस्त राजस्थान की साहित्यिक भाषा बन गई।

इस काल के कवियों के मुख्य विषय थे-शृंगार, भक्ति और कीर्ति कथन।

'ढोला मारू रा दूहा' और 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' शृंगार रस के दो अपूर्व ग्रंथ इस युग मे रचे गए। ये दोनों ग्रंथ डिंगल मे हैं और भाषा एव भाव की दृष्टि से बेजोड़ हैं। डिंगल मे इनकी टक्कर का कोई ग्रंथ बाद के युगों मे नहीं लिखा गया।

भक्त कवियों में मीरॉबाई और ईसरदास के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रत्येक सत-समाज मे मीरॉ के पद बडे प्रेम के साथ गाए, सुने और सराहे जाते हैं। ईसरदास की रचनाओं का चारण जाति मे यथेष्ट आदर है।

चारण आदि राजाश्रित जातियों के कवियों की रचनाओं में नरेश-भक्ति अथवा वीरपूजा का प्राधान्य रहा। परन्तु कोई उच्च कोटि का बड़ा ग्रंथ नहीं लिखा गया। अधिकाश कवि फुटकर गीत-दोहों के लिखने ही मे व्यस्त रहे। इसमे संदेह नही कि ये रचनाएँ भौतिक उद्देश्यो को सामने रखकर लिखी गई हैं और इनमे एक ही भाव-धारा प्रवाहित हो रही है, परन्तु हैं ये बहुत प्राणवान। इनकी भाषा मे रवानी और गति है। वर्णन मे कला और मौलिकता है। ये डिंगल भाषा की प्रौढावस्था को सूचित करती हैं।

इसी युग मे संत दादू दयाल ने दादूपंथ को जन्म दिया जिनके शिष्यों मे कई उच्चकोटि के साहित्यकार हुए। दादूपंथ के अनुकरण पर कालान्तर मे

कुछ और पथ उठ खड़े हुए जिनके अनुयायियों ने भी अपनी कृतियों द्वारा राजस्थानी साहित्य के भंडार को भरा।

शिवदास जाति के चारण थे। इन्होंने 'अचलदास खीचीं री वचनिका' नामक एक छोटा-सा ग्रंथ बनाया जिसमें माडू के पातशाह (होशंगशाह?) और गागरोनगढ़ के खीचीं राजा अचलदास के युद्ध का वर्णन है। यह युद्ध सं१४८५ के लगभग हुआ था और अचलदास इसमें मारे गए थे। डा० टैसीटरी ने वचनिका को इस युद्ध की समकालीन रचना बतलाया है१। इसमें गद्य और पद्य दोनों हैं। भाषा डिंगल है। रचना सामान्य रूप से अच्छी है। उदाहरण—

शिवदास

दूहा

एकरिण वनि वसतडा, एवड अंतर काइ।
सीह कवड्डी ना लहै, गैवर लक्खि विकाइ॥१॥
गैवर गळै गळथीयौ, जहँ खचै तहँ जाइ।
सीह गळथ्थण जे सहै, तो दह लक्ख विकाइ॥२॥

(सिंह और हाथी एकही वन के निवासी हैं, फिर इतना अंतर क्यों? सिंह का तो एक कौड़ी भी मोल नहीं होता और हाथी लाखों में बिकता है॥१॥ हाथी के गले में बन्धन पड़ा रहता है इसलिए वह जिधर खींचा जाय उधर ही चला जाता है। यदि सिंह ऐसे गले के बन्धन को सह सके तो वह दस लाख में बिके॥२॥)

वात

"ते राजा नरसिंघदास सारीखा। छत्रीस सहस साहण रिणि खेति मेल्हि चाल्या। मदोमत्त हस्ती रिणिखेत मेल्हि चाल्या। समद्रि जाइ खाँडा पखाल्या। अनेक राउ मदगलित करि मेल्या। ते राजा नरसिंघदास का बेटा। चादजी, खेमजी सारीखा। बूंदी का चक्रवति सग्रामसी सारीखा। देस तौ कौण-कौण। सत्यासी। नमीयाड, आसेर, रायंगण, प्रोली, पट्टोली, सेलारपुर, माड, सीहौर, हैसगाबाद, नगर का। इसा एक ते कटक बन्ध। देस-देस का। खड-खड का। नगर-नगर का घर घर का खाँन मीर, उमराउ, चतुरंग दळ चढ़ि चाल्या। पातसाहि पापाण पै पलाण घाल्या। इसौ हींद राजा कौण

1. A Descriptive Catalogue of Bardic and Historical Mss Pt. I, Bikaner State, Fasc I., p. 41

छ। जिहा का पातसाह कै मनि गीम वसी। कुणै का माथा मौ खिमी। कुणैह दव रूठौ। कुणै की माइ वियोणी जो मामहौ रहै।"

राजस्थान के सुप्रसिद्ध लोककाव्य 'ढोला मारू रा दूहा'' के रचयिता कल्लोल कवि के जन्मकाल, वंश, माता-पिता इत्यादि के विषय में कुछ मालूम नहीं है। केवल उनके इस ग्रन्थ के निर्माण-काल का पता है जो सं० १५३० है और जिसका उल्लेख उन्होंने इस के अन्तिम दोहे में इस प्रकार किया है—

कल्लोल

पनरहसे तीसै वरस, कथा कही गुण जाण।
वदि वैसाखे वार गुरु, तीज जाण सुभ वाण॥

'ढोला मारू रा दूहा' एक प्रेम गाथात्मक काव्य है। इसकी कहानी का साराश यहाँ दिया जाता है—

किसी समय पूगल देश में पिंगल नाम का कोई राजा राज्य करता था। उसी समय नरवर पर नल का राज्य था। पिंगल के एक कन्या हुई जिसका नाम मारवणी था। नल के पुत्र का नाम ढोला था। एक बार पूगल देश में अकाल पड़ा जिससे राजा पिंगल कुछ दिनों के लिये पुष्कर में जा रहा। इन्हीं दिनों राजा नल भी तीर्थयात्रा करता हुआ वहाँ आ निकला। दोनों में मित्रता हो गई। पिंगल ने अपनी लड़की मारवणी का विवाह नल के लड़के ढोला के साथ कर दिया। उस समय ढोला की उम्र तीन वर्ष की और मारवणी की डेढ़ वर्ष की थी। शरद ऋतु के आने पर दोनों राजा अपने अपने देश चले गये। मारवणी की अवस्था छोटी थी इसलिये वह उस वक्त ढोला के साथ नरवर नहीं भेजी गई।

कई वर्ष बीत गये। ढोला जवान हुआ। पूगल देश दूर था इसलिये उसके पिता ने उसका दूसरा विवाह मालवे के राजा की लड़की मालवणी से कर दिया और उसके पूर्व विवाह की बात उससे छिपा रखी।

इधर मारवणी जब बड़ी हुई तब उसके पिता ने ढोला को बुलाने के लिये कई दूत भेजे। परन्तु सौतिया डाह की वजह से मालवणी ने पूगल और नरवर के रास्ता पर ऐसा प्रबंध कर रखा था कि संदेश-वाहक ढोला तक पहुंच ही नहीं पाते थे। बीच ही में मार दिये जाते थे।

एक रात मारवणी ने ढोला को सपने में देखा। इससे उसकी विरह-वेदना

बढ़ गई। इसी समय नरवर की ओर से घोड़ा का एक व्यापारी पूगल आया। उसने ढोला के दूसरे विवाह की बात पिंगल से कही। यह बात मारवणी के कानों तक भी पहुँची। वह पागल-सी हो गई। और कुछ ढाढियों को अपना प्रेम-सन्देशा देकर ढोला के पास भेजा। मार्ग में मालवणी के तैनात किये हुए आदमियों को भुलावा देकर किसी तरह ढोला के महलों तक जा पहुँचे। वहाँ रात भर उन्होंने बड़ी सुरीली और दर्द भरी आवाज में गा-गाकर मारवणी का प्रेम-सदेशा ढोला को सुनाया। दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही ढोला ने ढाढियों को बुला भेजा और सब हाल मालूम किया। सुनकर उसकी उत्कंठा बढ़ गई और मारवणी से मिलने के लिये वह आतुर हो उठा।

एक दिन ढोला घोड़े पर सवार होकर मारवणी से मिलने के लिये जाने लगा। मालवणी को इसका पता लग गया। उसने दौड़कर घोड़े की रकाब पकड़ ली—

ढोलौ हल्लाणौ करै, धण हल्लवा न देह।
झबझब झूँवै पागड़ै, डबडब नयण भरेह॥

उस दिन वह वापस लौट आया। परन्तु कुछ दिन बाद एक रात को जब मालवणी सोई हुई थी वह चुपके से एक ऊँट लेकर वहाँ से चल पड़ा।। ऊँट पर बैठकर उसने एक बार नरवर के दुर्ग की ओर देखा और कह गया—

"आस्याँ तो मिळस्याँ वळै, नरवर कोट जुहार।"

कुछ दिन बाद ढोला पूगल पहुँचा। वहाँ उसका बड़ा स्वागत-सम्मान हुआ। पाँच-सात दिन वह वहाँ रहा। फिर मारवणी को लेकर वहाँ से रवाना हुआ। मार्ग में एक पड़ाव पर मारवणी को एक साँप ने काट खाया जिससे उसकी मृत्यु हो गई। ढोला विलाप करने लगा और चिता बनाकर अपनी प्रिया के साथ जलने को उद्यत हो गया। इतने में योगी-योगिन के वेष में शिव-पार्वती वहाँ आ गये। उन्होंने मारवणी को पुनर्जीवित कर दिया।

यहाँ से आगे बढ़ने पर एक घटना और हुई। ऊमर नाम के एक व्यक्ति ने मारवणी को छीनने के लिये अपने दल-बल सहित उनका पीछा किया। अपना घोड़ा ढोला के ऊँट के पास ले जाकर उसने कहा—"हे ठाकुर! अलग क्यों चल रहे हो, आओ, कसूँबा (पानी में घुली हुई अफीम) पिएँ। फिर साथ-साथ ही चलेंगे।" ढोला उसके कपट-जाल को न समझ सका और ऊँट से उतर पड़ा।

मारवणी ऊँट की मुहरी (नकेल) पकड़ कर अलग खडी हो गई। ढोला और ऊमर पास ही बैठकर कसूँवा पीने लगे। ऊमर के साथ मारवणी के पीहर की एक ढोलिन थी। उसने गा-गाकर ऊमर के षड्यन्त्र की सारी बात मारवणी को समझा दी। इस पर उसने अपने ऊँट के एक छड़ी मारी। ऊँट हड़बडाया और उछलने लगा। ढोला उसे सभालने के लिये मारवणी के पास आया। इसी समय मारवणी ने चुपके से सारी बात उसके कान मे डाल दी। तब ढोला और मारवणी दोनों ऊँट पर बैठ गये और वहाँ से निकल भागे। ऊमर ने उनका पीछा किया। परन्तु हताश होकर उसे वापस लौटना पडा।

अन्त मे ढोला-मारवणी घर पहुँच गये और वडे आनन्द से अपना जीवन व्यतीत करने लगे—

> आणँद अदि उछाह अति, नरवर माँहै ढोल।
> ससनेही सयणाँ तणाँ, कळि माँ रहिया बोल॥

यह है 'ढोला मारू रा दूहा' की कहानी। बहुत सीधी-सादी और सुलझी हुई। कवि ने इसे ऐसे अनूठे ढग से कहा है, और काव्य-कल्पना का रग इस मे इस तरह भरा है कि सारी की सारी कहानी जगमगा उठी है। पजाब मे जिस तरह हीर-राँझन की कहानी घर-घर मे प्रसिद्ध है उसी तरह यह कहानी राजस्थान-वासियों के गले का हार बन गई है। सैकड़ो वर्षों से लोग इसे कहते और सुनते आ रहे हैं। परन्तु अभी तक भी उनकी तृप्ति नहीं हुई है। सुननेवाला कभी नहीं कहता कि यह कहानी मुझे मत सुनाओ मेरी सुनी हुई है। न कभी कहनेवाला थकता है।

कुछ लोगों ने इस कहानी मे से ऐतिहासिक तथ्य निकालने की कोशिश भी की है। उनका कहना है कि ढोला मारवणी ऐतिहासिक व्यक्ति हैं और उसके विवाह की बात एक ऐतिहासिक घटना है। ढोला को उन्होंने कछवाहा वश के राजा नल का पुत्र वतलाया है और उसका समय स० १००० के आस पास माना है। परन्तु ढोला नाम का कोई राजा हुआ हो या न हुआ हो, मारवणी उसकी राणी रही हो या न रही हो, कहानी फिर भी अमर है। इस कहानी का आकर्षण इसकी ऐतिहासिक कथा वस्तु पर निर्भर नहीं है। इसकी भाव सरसता और मार्मिकता पर अवलबित है।

'ढोला मारू रा दूहा' का महत्व एक और प्रकार से भी है। यह डिंगल भाषा का पहला काव्य-ग्रन्थ है। इससे पूर्व का लिखा हुआ डिंगल भाषा का

कोई काव्यग्रन्थ नहीं मिलता। यह राजस्थान का जातीय काव्य है। इसमें राजस्थान का वातावरण है, राजस्थानीय जीवन की झाँकी है। राजस्थान के वृद्ध स्त्री-पुरुष इसमें अपने बीते हुए प्रेममय यौवन काल की स्मृतियाँ और युवक-युवतियाँ अपने भावी जीवन की मधुर भाव-भावनाएँ देखते हैं। शृङ्गार रस की मौलिक उक्तियां, रमणीय उद्भावनाओं से ग्रन्थ भरा पड़ा है। उदाहरण :—

> बाबहियौ नै विरहणी, दुहुवा एक सहाव।
> जब ही बरसै घण घणौ, तब ही कहै प्रि-याव॥

(पपीहा और विरहिणी दोनों का एक स्वभाव है। जब मेघ बरसता है तब दोनों "पी-आव, पी-आव" पुकारते हैं।)

> बिज्जुळियाँ नीळज्जियाँ, जळहर तूँ ही लज्जि।
> सूनी सेज विदेस प्रिय, मधुरै मधुरै गज्जि॥

(बिजलियाँ तो निर्लज्ज हैं। हे जलधर, तू ही लज्जित हो। मेरी शय्या सूनी है। मेरा प्यारा विदेश में है। इसलिए मधुर-मधुर शब्द से गरज।)

> राति सखि इण ताल मइँ, काइज कुरळी पंखि।
> उवै सरि हूँ घर आपणै, बिहूँ न मेळी आंखि॥

(हे सखी, रात को इस सरोवर में किसी पक्षी ने कलरव किया। वह अपने सरोवर में और मैं अपने घर में—हम दोनों ही की आँख नहीं लगी।)

> पथी हाथ सदेसड़ौ, धण विळळती देह।
> पग सूं काढै लीहटी, उर आँसुआँ भरेह॥

(मारवणी विलाप करती हुई पथिक के हाथ संदेशा देती है, पैर से (पृथ्वी पर) रेखा खींचती है और अपना हृदय आँसुओं से भर लेती है।)

> हियडै भीतर पैस करि, ऊगौ सज्जण रूँख।
> नित सूकै नित पल्हवै, नित नित नवला दूख॥

(मेरे हृदय में प्रविष्ट होकर साजन-रूपी वृक्ष उगा है। वह नित्य सूखता है और नित्य पल्लवित होता है जिससे नित्य नये-नये दुख देखने पड़ते हैं।)

> अकथ कहाणी प्रेम की, किणा सूँ कही न जाइ।
> गूँगा का सुपना भया, सुमर सुमर पिछताइ॥

(प्रेम की अकथनीय कहानी किसी से नहीं कही जाती। वह गूँगे के स्वप्न के समान हो गई है जिसे वह यादकर कर के पछताता है।

यहु तन जारौं मसि करूँ, धूँआ जाहि सरग्गि।
मुझ प्रिय बद्दल होइ करि, बरसि बुझावै अग्गि॥

(यह तन जलाकर मैं कोयला कर दूँ और उसका धुँआ स्वर्ग तक पहुँच जाय। मेरा प्रियतम बादल बनकर बरसै और बरसकर आग को बुझा दे।)

भरै पलट्टै भी भरै, भी भरि भी पलटेहि।
ढाढी हाथ संदेसड़ा, धण विळळती देहि॥

(मारवणी संदेशा कहती है, बदलती है फिर कहती है, कहकर फिर बदल देती है। इस प्रकार वह प्रियतमा विलाप करती हुई ढाढी के हाथ संदेशे देती है।)

इहाँ सु पंजर मन उहाँ, जय जाणैला लोइ।
नयणाँ आडा वींझ वन, मनह न आडो कोइ॥

(मेरा देह-पिंजर तो यहाँ है और मन वहा है। वास्तव में यदि लोग समझे तो यद्यपि आँखों के अवरोधी घने जंगल हैं पर मन का अवरोधी कोई नहीं।)

डूँगर केरा वाहळा, ओछाँ केरा नेह।
वहता वहै उतावळा, झटक दिखावै छेह॥

(पहाडी नाले और ओछे पुरुषों का प्रेम वहते समय तो बड़ी तेजी से बहते हैं पर तुरन्त ही अन्त दिखा देते हैं।)

ए वाड़ी ए वावडी, ए सर केरी पाळ।
वै साजण वै दीहडा, रही सँभाळ सँभाळ॥

(यह वाटिका, यह वावडी, यह तालाब की पाल, वे प्राण, वे दिन इनको बार-बार याद करती हूँ।)

चदा तो किण खंडियौ, मो खंडी किरतार।
पूनिम पूरौ ऊगसी, आवतै अवतार॥

(हे चन्द्र, मुझे विधाता ने खंडित किया पर तुझे किसने खंडित किया है। तू तो पूर्णिमा को पूर्ण होकर उगेगा। पर मैं आगामी जन्म में ही पूर्ण होऊँगी।)

ये निम्बार्क सम्प्रदाय के मत जोधपुर राज्य के जैतारण नगर के निवासी और जाति के छेन्याती ब्राह्मण थे। इनके असली नाम का पता नहीं है। 'तत्ववेत्ता' इनका उपनाम था। इनका आविर्भाव-काल

तत्ववेत्ता

सं० १५५० के लगभग है। ये अच्छे कवि और चमत्कारी महात्मा थे। अपने पीछे सैकड़ों शिष्य छोड़कर गोलोकवासी हुए जिनमें से तीन चार की गद्दियाँ आज भी अजमेर, जयपुर, जेतारण आदि स्थानों में चल रही हैं।

इनके 'कवित्त' नामक एक ग्रंथ का पता है जो पिंगल भाषा में है। इसमें ६८ कवित्त (छप्पय) हैं जिनमें राम, कृष्ण, नारद, जनक आदि महापुरुषों की महिमा कही गई है। रचना मनोहारिणी है। उदाहरण—

> आदि चन्द्र हरिचंद्र, अनत चदा अविकारा।
> अम्रित चद उदार, अघट अविचल इकतारा॥
> महा चद्र मुख चद्र, महा महिमा विस्तारा।
> गोकल चद गोपाल, पाप परचड प्रहारा॥
> रामचन्द्र रघुनाथ, रवण राजण के राजा।
> कृष्णचन्द्र कल्याण, सर्व सुरनरॅ सिरताजा॥
> ततवेता तिहु लोक में, वृन्दावन चन्द विस्तरि रह्या।
> सर्वचन्द कूॅ सुमिरता, परम चन्द परचै भया॥

कृष्णदास पयहारी जयपुर के सुप्रसिद्ध गलता नामक स्थान के महन्त और जाति के दाहिमा ब्राह्मण थे। इनके गुरु का नाम अनंतानद था। केवल दूध ही पीते थे इसलिए पयहारी कहलाए। इनका

कृष्णदास

आविर्भाव-काल सं० १५५६-८४ है। कहा जाता है कि आमेर के महाराज पृथ्वीराज के गुरु कापालिक सम्प्रदाय के योगी चतुरनाथ को इन्होंने शास्त्रार्थ मे हराया था जिसके फलस्वरूप इन्हे गलता की गद्दी मिली थी[२]।

ये रामानुज सम्प्रदाय के वैष्णव भक्त थे। इन्होंने तीन ग्रन्थ बनाए जिनके नाम ये हैं—जुगल मैन चरित्र, ब्रह्मगीता और प्रेमतत्व निरूपता। इनकी भाषा ब्रजभाषा है। कविता भक्तिभावपूर्ण और कर्णमधुर है। उदाहरण—

२ कृष्णदास के एक शिष्य कील्ह जी भी अच्छे कवि थे।

आवत लाल गोवर्द्धन धारी
आलस नैन सरस रस रंगित प्रिया प्रेम नूतन अनुहारी
विलुलित माल मरगजी उर पर सुरति समर की लगी पराग
चवत स्याम अधर रस गावत सुरति चाव सुख भैरव राग
पलटि परे पट नील सखी के रस में झीलत मदन तड़ाग
वृन्दावन वीथिन अवलोकत कृष्णदास लोचन बडभाग।

ये कृष्णदास पयहारी के २५ शिष्यों में मुख्य थे। इनके शिष्य नाभादास कृत भक्तमाल के आधार पर कुछ लोगों ने इनका रचना-

अग्रदास काल सं० १६३२ के लगभग निश्चित किया है। इनके रचे ग्रंथों के नाम ये हैं :—

(१) श्रीरामभजन मंजरी (२) पदावली (३) हितोपदेशभाषा (४) उपासना बावनी (५) ध्यान मंजरी (६) कुंडलिया (७) अष्टयाम (८) अग्रसार और (९) रहस्य त्रय।

अग्रदास भगवान श्री रामचन्द्र के अनन्य उपासक थे। इन्होंने रामभक्ति सम्बन्धिनी कविता अधिक लिखी है। इनकी भाषा व्रजभाषा है। कविता सद्भावोत्पादक एवं विचार-सौन्दर्य से पूर्ण है। सरल वर्णन-शैली के सहारे इन्होंने अत्युच्च साधना की बातें कही हैं जो मानव-हृदय में आध्यात्मिक स्फूर्ति का संचार करती हैं। उदाहरण—

रघुवर लागत है मोहि प्यारो ॥टेक॥
अवधपुरी सरयू तट विहरैं, दशरथ प्राण पियारो ॥१॥
क्रीट मुकुट, मकराकृत कुण्डल, पीतांबर पटवारो ॥
नयन विशाल माल मोतियन की, सखि तुम नेक निहारो ॥२॥
रूप स्वरूप अनूप बनो है, चित से टरत न टारो ॥
माधुरि मूरति निरखो सजनी, कोटि भानु उजियारो ॥३॥
जानकि नायक सब सुख दायक, गुणगण रूप अपारो ॥
अग्र अली प्रभु की छबि निरखे, जीवन प्राण हमारो ॥४॥

नदी किनारे रूखा जब कब होइ विनास।
जब कब होइ विनास देह कागद की छागर॥
आयु घटै दिन रैन सदा आमय को आगर।
जरा जोरवर श्वान प्राण को काल शिकारी॥
मूषक कहाँ निशङ्क मृत्यु तकि रही मँजारी।

अग्र भजन आतुर रंग जोला पधर श्वाम ॥
नदी किनारे ह्वया नय कय हाट विनास ॥

ये अग्रदास के शिष्य थे। इनका असली नाम नारायणदास था। इनकी जाति के संबंध में दो मत हैं। कोई इन्हें डोम और कोई क्षत्रिय बतलाते हैं। कहा जाता है कि जब ये बहुत छोटे थे तब अन्नाभाव के कारण इनके माता-पिता इन्हें एक सुनसान जंगल में छोड़ आए, जहाँ से उठाकर अग्रदास इन्हें अपने निवास-स्थान पर ले गए और पाल पोसकर बड़ा किया। अपने गुरु के कहने से इन्होंने 'भक्तमाल' बनाया जिसका रचना काल सं० १६४२ और सं० १६८० के बीच में अनुमानित किया जाता है। इसके अतिरिक्त इन्होंने दो 'अष्टयाम' और रामचरित्र सम्बन्धी फुटकर पद भी बनाए थे। परन्तु इनकी ख्याति भक्तमाल के कारण विशेष है। भक्तमाल में तीन सौ छप्पय हैं और लगभग दो सौ भगवद्भक्तों के चरित्रों का बखान किया गया है। ग्रंथ साहित्य तथा इतिहास दोनों दृष्टियों से महत्व का है। इनका एक छप्पय यहाँ दिया जाता है --

नाभादास

प्रचुर भयो तिहुँ लोक, गीतगोविन्द उजागर।
कोक काव्य नवरस, सरस शृङ्गार को सागर॥
अष्टपदी अभ्यास, करै तिहिं बोध बढावै।
श्री राधारवन प्रसन्न, सुनत तहाँ निहचै आवै॥
सत सरोरुह खंड को, पद्मावती सुख जनक रवि।
जयदेव कवि नृप चक्कवै, खंड मंडलेश्वर आन कवि॥

ये बीठू शाखा के चारण थे। इनका लिखा 'राव जैतसी रो छंद'[3] नाम का एक ग्रंथ प्रसिद्ध है। यह सं० १५६१ और सं० १५६८ के बीच किसी समय रचा गया था। इसमें बाबर के द्वितीय पुत्र कामरान और बीकानेर-नरेश राव जैतसी के युद्ध का वर्णन है। कामरान काबुल और पंजाब का हाकिम था और इस युद्ध में परास्त हुआ था। जैतसी और कामरान के इस युद्ध के बारे में मुसलमान इतिहासकार मौन हैं। परंतु सूजाजी ने इसका सविस्तर वर्णन किया है। इसलिये पुस्तक का ऐतिहासिक मूल्य यथेष्ट है।

सूजाजी

---

3 इसी नाम और विषय का एक ग्रंथ किसी दूसरे कवि का लिखा हुआ भी है। परंतु कवि के नाम का पता नहीं ... ग्रंथ बीकानेर के अनूप संस्कृत पुस्तकालय में सुरक्षित है।

इसमें ४०१ पद्य हैं- पाधड़ी छंद ३८५, गाहा ११ दोहे ४, और त
१। इसकी भाषा विशुद्ध डिंगल है । वर्णन-शैली सजीव और ओजस्विनी है। उदाहरण—

> धडहडै ढोल धूजै धरत्ति, पडियाळगि वरसै खेडपत्ति।
> बीकाहर राजा ईंद वग्गि, खाफरॉ सिरे खिविया खडग्गि ॥
> पतिसाह फौज फूटन्ति पाळि, ब्रहमंड जैत गाजै विचाळि।
> अम्वहर जैत वरसै अवार धुड़किया सोर मुहि खग्ग धार ॥[४]

मीरांबाई मेड़ते के राठौड़ राव दूदाजी के चतुर्थ पुत्र रत्नसिंह की बेटी थी। इनका जन्म सं० १५५५ के लगभग कुड़की नामक गाँव में हुआ था।

मीराबाई

मीरां जब छोटी थी तब इनकी माता का देहान्त हो गया था। इसलिये इनके दादा राव दूदाजी ने इन्हें अपने पास मेड़ते बुला लिया जहाँ इनका बाल्यकाल बीता। कोई उन्नीस वर्ष की अवस्था में इनका विवाह मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह प्रथम (सं० १५६५-८४) के पाटवी कुंवर भोजराज के साथ हुआ। परन्तु विवाह के दो-तीन वर्ष बाद ही भोजराज का देहान्त हो गया। इस बात का पता रामदान लालस कृत 'भीम प्रकास' की इन पंक्तियों से लगता है—

> भोजराज जेठो अभंग, कँवरपणे म्रत कीध।
> मेडतणी मीरॉ महळ, प्रेमी भगत प्रसीध ॥

भोजराज की मृत्यु के कुछ वर्ष बाद मीरॉ के पिता रत्नसिंह भी खानवा के युद्ध में मारे गये। माता-पिता और पति किसी के न रह जाने से मीरॉ का मन संसार से उचट गया और वह पूजा-पाठ, भजन-कीर्तन एवं संत-समागम करके अपना दुखमय जीवन काटने लगी।

कहा जाता है कि मीरॉ का भजन-भाव और सत्संग आदि इनके देवर राणा विक्रमाजीत (सं० १५८८-९३) को पसन्द नहीं आया और विषादि के प्रयोग द्वारा उन्होंने इन्हें मार डालने की अनेक चेष्टाएँ कीं जो असफल रहीं। परन्तु इन बातों पर विश्वास नहीं होता। मीरॉ की महिमा को बढ़ाकर बतलाने के लिये भक्त लोगों ने इन्हें गढ़ लिया प्रतीत होता है।

---

४ पडियालगि = तलवार। खेड पत्ति = खेड नामक प्रान्त का पति। बीकाहर = बीका जी का वंशज, जैतसी। खाफरा = शत्रुओं के। खिविया = चमकें। विचालि = में। अम्वहर = आकाश। मुहि = चली।

इसी प्रकार मीरॉ का रैदास की शिष्या होने, उनका गोस्वामी तुलसीदास को पत्र लिखने, अकबर द्वारा उनको हीरे का हार भेट किया जाने इत्यादि की बातें भी कपोल कल्पित और अनैतिहासिक हैं। इनमें काल-दोष स्पष्ट है।

मीरॉबाई का देहान्त स० १६०३ के आसपास द्वारका में हुआ माना जाता है। भक्तों मे यह भी प्रसिद्ध है कि अन्त समय मे मीरॉबाई ने यह पद गाया था—

> साजन सुध ज्यूँ जाने त्यूँ लीजै हो।
> तुम बिन मेरे और न कोई कृपा रावरी कीजे हो।
> दिवस न भूख रैन नहि निद्रा यूँ तन पल पल छीजै हो।
> मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर मिल बिछुरन नहिं कीजै हो॥

मीराँबाई के रचे पॉच ग्रथ और कुछ फुटकर पद बतलाये जाते हैं। ग्रथो के नाम ये हैं: गीत गोविन्द की टीका, नरसीजी रो माहेरो, सत्यभामाजी नू रूसणूँ, राग सोरठ, और राग गोविंद। ये सभी ग्रथ हमारे देखने मे आये हैं। इनमें एक भी मीरॉबाई का बनाया हुआ प्रतीत नहीं होता। कारण इनमें न तो कहीं इस बात का निर्देश है कि ये मीरॉबाई के लिखे हुए हैं और न इनकी भाषा-कविता मीराँबाई की भाषा-कविता से मिलती है। मीराँ के प्रत्येक शब्द पर उनके व्यक्तित्व की छाप लगी हुई है। अतः दो पंक्तियॉ भी यदि कहीं से निकालकर अलग रख दी जायॅ तो वे साफ कह देती हैं कि वे मीरॉ की हैं। 'गीत गोविंद की टीका' सस्कृत में है। यह महाराणा कुभाजी की बनाई हुई है। 'नरसीजी रो माहेरो' ब्रजभाषा की एक बहुत नीरस और सामान्य कोटि की रचना है। 'सत्यभामाजी नू रूसणु' गुजराती में है। 'राग सोरठ' और 'राग गोविंद' कोई ग्रथ ही नहीं हैं। मीरॉ के कुछ पदों के शीर्षक मात्र हैं। मीरॉ ने केवल स्फुट पद लिखे हैं। परन्तु मीरॉ के नाम से जो पद आज कल बाजार मे बिक रहे हैं वे सब उनके नहीं हैं। मीरॉ के भक्तों तथा अर्थ लोभी मुद्रक-प्रकाशकों ने जान बूझकर अथवा ना समझी से कुछ पद नये बनाकर और कुछ कबीर, सूर, दादू, नानक आदि सन्तों के इनमें मिला दिये हैं। वस्तुतः मीरॉ के पदों की सख्या २००-२५० से अधिक नहीं है।

मीरॉबाई की भाषा बोलचाल की राजस्थानी है जिस पर ब्रजभाषा गुजराती और खडी बोली का भी रग लगा हुआ है। इनके शब्द-व्यवहार

में बड़ी कोमलता और स्वाभाविकता है। बाह्याडंबर और शाब्दिक चतुराई के फेर में न पड़कर इन्होंने सीधी बात को सीधे ढंग से व्यक्त किया है।

मीरॉं प्रेम-भक्ति की दीवानी थीं। आध्यात्मिक व्याकुलता और भक्त हृदय का गंभीर विश्वास इनकी कविता में अपूर्व रूप से झंकृत है। साहित्यिक दृष्टि से यदि देखा जाय तो इनकी कविता कोई बहुत ऊँची नहीं है। परन्तु सरल, स्वाभाविक एवं भक्तिभाव पूर्ण होने से एक भक्त हृदय को मुग्ध करने में वह फिर भी बेजोड़ है। कृष्णभक्ति में अंधे कवि सूरदास की तुलना किसी दूसरे से नहीं हो सकती। सूर सचमुच हिन्दी-साहित्याकाश के सूर्य्य हैं। उनके सूरसागर में प्रेम रस की एक बाढ़-सी आ गई है और गोपियों तथा यशोदा के मुँह से जो पद उन्होंने कहलवाये हैं उनमें उन्होंने नारी-हृदय का ऐसा मधुर, मनोवैज्ञानिक और कलापूर्ण विश्लेषण किया है कि देखकर चकित ही रह जाना पड़ता है। संख्या भी सूर के पदों की कम नहीं। परन्तु यह सब होते हुए भी मीरॉं के पदों में जो रस है, मीठा-सा दर्द है वह उनमें भी नहीं आ पाया है। कविता क्या की है, मीरॉं ने अपना हृदय ही बाहर निकालकर रख दिया है। कुछ पंक्तियाँ देखिये। इनमें कितनी तड़फन, कितनी तन्मयता, कितनी मस्ती और बेचैनी है --

> "जाओ हरि निरमोहड़ा रे, जाणी थाँरी प्रीत।"
> "तेरा कोई नहँ रोकणहार, मगन होय मीरॉं चली।"
> "म्हारो जनम-मरण रो साथी, थाँनै नहँ बिसरूँ दिन राती।"
> "राणाजी म्हाँनै या बदनामी लागे मीठी।"
> "म्हारे सिर पर साळगराम, राणाजी म्हारो कॉंई करसी।"
> "क्यारे करूँ मैं बन में गई, घर होती तो स्याम कूँ मनाय लेती।"

मीरॉं की उपासना दंपति-भाव की थी। अतः इनकी कविता में भक्ति और शृंगार दोनों का सम्मिलन स्वाभाविक है। परन्तु मीरॉं का शृंगार लौकिक नहीं, अलौकिक है। उसमें न तो विद्यापति की सी अश्लीलता है, न सूर की सी उछृङ्खलता, और न बिहारी की सी मादकता। मीरॉं का शृंगार पवित्र है और पवित्रता के साथ-साथ उसमें अनंत, शाश्वत तथा निर्मल प्रेम की अनोखी झाँकी है।

कंगाल की कुटिया से लेकर राजमहलों तक मीरॉं की कविता समान रूप से आदृत है। इसलिये नहीं कि मीरॉं स्त्री थीं और उनके साथ रियायत किया जाना वाञ्छनीय है। इसलिये भी नहीं कि उनका जन्म यशःपूत एक

राजघराने में हुआ था। बल्कि इसलिये कि मीराँ की कविता ही सच्ची कविता है, कवि हृदय की यथार्थ अनुभूति है। इनके शब्दों में कुछ ऐसा सौन्दर्य्य है कि उसे शब्दों द्वारा व्यक्त करना कठिन है। किसी रूसी कवि की कविता पर कही हुई एक समालोचक की यह उक्ति मीराँ की कविता पर भी ठीक-ठीक घटती है—

'A charm in words, a charm no words can give"

मीराँबाई के दो पद यहाँ दिये जाते हैं—

राग होरी सिन्दूरा

फागुण के दिन चार रे, होळी खेल मना रे ॥टेक॥
बिण करताळ पखावज बाजै, अणहद री भणकार रे।
बिण सुर राग छतीसूँ गावै, रोम-रोम अग सार रे॥
सील सतोष री केसर घोळी, प्रेम प्रीत पिचकार रे।
उडत गुलाल लाल भयौ अबर, बरसत रग अपार रे॥
घट के पट सब खोल दिये हैं, लोक-लाज सब डाल रे।
होळी खेल पीव घर आये, सोइ प्यारी-पी प्यार रे॥
मीराँ कैं प्रभु गिरधर नागर, चरण-कँवळ बलिहार रे।

राग देस

दरस बिन दूखण लागै नैण ॥टेक॥
जब से तुम बिछुरै प्रभु मोरे, कबहुं न पायौ चैन।
सबद सुणत मेरी छतियाँ काँपै, मीठे मीठे बैन।
बिरह कथा कासूँ कहूँ सजनी, वह गई करवत ऐन।
कल न परत पल हरि मग जोवत, भई छमासी रैण।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, दुख मेटण सुख देण।

छीहल इनके व्यक्तिगत जीवन के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है। इनका एक छोटा-सा ग्रथ 'पच सहेली रा दूहा' मिलता है जो निस्सन्देह अनूठा है। यह सवत् १५७५ में लिखा गया था—

पनरे सै पीचोतरै, पूनम फागुण मास।
पच सहेली वरणवी, कवि छीहल परगास॥

इसमें ६५ दोहे हैं। इसकी भाषा बोलचाल की राजस्थानी है। मालीं, तमोली, छीपी, कलालिन और सुनार जाति की पाँच स्त्रियाँ एक दिन किसी

पनघट पर छीहल से मिलती हैं और उसे अपनी विरह-व्यथाएँ सुनाती है। कुछ दिन बाद यही स्त्रियाँ फिर उसी स्थान पर छीहल से मिल जाती हैं। परन्तु इस बार वे बहुत प्रसन्न दिखाई पड़ती हैं। क्योंकि उनके पति परदेश से वापस लौट आए हैं। इसी का वर्णन इस ग्रन्थ में किया गया है। ग्रंथ छोटा पर सरस है। उदाहरण—

पहिली बोली मालिणी, मोकूँ दुक्ख अनन्त।
बाला जोबन छाडि करि, गए देसाउरि कंत॥
निसि दिन बहै प्रनाल ज्यूँ, नयणे नीर अपार।
विरहा माली दुक्ख का, सुभर भरे कियार॥
कमल वदन विलखाइया, सूका सुख वनराइ।
वाज पियारे एक खिण, वरस बराबर जाइ॥
तन तरवर फल लागिया, दोइ नारंग रस पूर।
सूकण लागी बेलडी, सींचणहारा दूर॥
मन बाड़ी गुण फूलडा, पिय नित लेता वास।
अब उण थानक रयण दिन, पिय विण रहूँ उदास॥
चंपा केरी पखुडी, गूँथूँ नवसर हार।
जो गलि पहिरूँ पीय विण, लागै अंग अंगार॥
मालिण अपणा जीव का, विउरा कह्या विचार।
अब कछु दुक्ख सरीर का, अखै तंबोलिण नार॥

ये जाति के चारण और जोधपुर राज्य के भाद्रेस गाँव के निवासी गीधाजी के बेटे थे। इनका जन्म सं० १५६३ के आसपास हुआ था। ये तीन भाई थे. हरसूर, सूजो, और आशानंद। चारणों के सुप्रसिद्ध भक्त कवि ईसरदास इनके भतीजे थे। कहा जाता है कि आशानंद आजीवन ब्रह्मचारी थे। परन्तु यह बात कुछ ठीक नहीं प्रतीत होती। क्योंकि मारवाड़ में चारणों के अब भी कई घर ऐसे हैं जो अपने को आशावत कहते हैं, और आशा बारहठ का वंशज बतलाते हैं।

आशानंद

आशानंद जोधपुर नरेश राव मालदेव के कृपापात्र थे। सं०१५८६ में जब राव मालदेव ने बीकानेर पर चढाई की ये उनके साथ थे।

इनके मृत्यु काल का ठीक-ठीक पता नहीं है। कुछ लोगों का अनुमान है कि ये सं०१६६० के आस पास स्वर्गवासी हुए थे।

आशानद के रचे छह ग्रथ कहे जाते हैं. लक्ष्मणायण, निरजनप्राण, गागाजी री पेर्टी, बाघा रा दूहा, उमादे भाटियाणी रा कवित्त और फुटकर गीत । ये सब डिंगल भाषा मे हैं । इनकी भाषा बहुत मधुर और कविता तल स्पर्शी है । अपने मित्र बाघा कोटड़िया की मृत्यु पर लिखे करुणारस-प्लावित इनके दोहे इतने मार्मिक हैं कि सुनकर बहुत से लोग रो पडते हैं ।

इनकी कविता के नमूने देखिए —

सझ सोळ सिणगार, सत्तव्रत अग सनाहै ।
अरक बार मुख ऊग, नीर गगाजळ नाहै ॥
चीर पहर अस चढै, मुकट वेणी सिर खुल्लै ।
देती परदिखणाँह, हस गत राणी हल्लै ॥
सुर भुवण पैस लीधौ मग्ग, साम तणौ मन रजियौ ।
रूसणो मालदे राव सूँ, भटियाणी इम भजियौ ॥

(सोलह शृगार सजाकर शरीर मे सत्यव्रत को धारण किए हुए जिसके मुख से मानो बारह सूर्य उगे है ऐसी भटियाणी (उमादे) ने गगाजल से स्नान किया । वस्त्र पहन, घोड़े पर सवार हो, शिरोभूषण, चोटी और बालो को खोल प्रदक्षिणा देती हुई हस की गति से चलकर रानी स्वर्ग मे पहुँची स्वामी मालदेव का मन प्रसन्न हुआ । इस प्रकार उमादे ने राव मालदेव से अपना रूठना दूर किया ।)

पैस मज्झ पावक, हुई जमहर नख सख जळ ।
क्रम चौरासी तणा, करै तडल भूमडळ ॥
झल माळा बिच होम, देह बाळी दावानळ ।
धुकै होम धडहडण, बात मुख सहँस बळोबळ ॥
सामहा जोड ऊमा सती, देव भाण दिस हाथ दुव ।
माल राव चौ साँभळ मरण, हाय अँगारा राख हुव ॥

(अग्नि मे प्रवेश करके नख से शिखा तक जलकर राख हो गई । चौरासी योनियो के कर्मो को भूमडल पर ही टुकडे कर ज्वाल-माला मे अपने शरीर को होम भस्मीभूत कर दिया । आग से धड़-धड़ाकर धुँआ उठा । हजारो मुखों से निरतर यह बात निकली कि सती उमादे सूर्य देव के सामने दोनो हाथ जोड राव मालदेव का मरना सुन अगारे होकर राख हो गई ।)

ये रोहड़िया शाखा के चारण थे। इनका जन्म जोधपुर राज्य के भाद्रेस नामक गाँव में सं० १५९५ में हुआ था। कुछ लोग इनका जन्म-संवत् १५१५ बतलाते हैं और अपने कथन की पुष्टि में यह दोहा उद्धृत करते हैं —

ईसरदास

> पनरासौ पनरोतरे, जनम्यॉ ईसरदास।
> चारण वरण चकार में, उण दिन हुवौ उजास॥

परन्तु उनका यह कथन निर्मूल है। ईसरदास की असली जन्मपत्री मिल चुकी है और उसमें भी इनका जन्म संवत् १५९५ ही दिया हुआ है। साथ ही उक्त दोहा भी अब अपने असली रूप में मिल गया है। इसका सही पाठ यों है —

> पनरासौ पिचाणवै, जनम्यॉ ईसरदास।
> चारण वरण चकार में, उण दिन हुवौ उजास॥

इनके पिता का नाम सूजाजी और माता का अमरबाई था। पीताम्बर भट्ट इनके गुरु थे जिन्होंने इन्हें संस्कृत भाषा एवं भागवत आदि पुराणों का ज्ञान कराया था। अपने 'हरिरस' में ईसरदास ने सब से पहले इन्हीं की वंदना की है —

> लागूँ हूँ पहली लुळै, पीताम्बर गुरु पाय।
> भेद महारस भागवत, प्रामूँ जास पसाय॥

ईसरदास जब कोई बीस वर्ष के थे तब भाद्रेस छोड़कर जामनगर चले गए जहाँ उस समय रावळ जाम राज करते थे। उन्होंने इन्हें अपना 'पोलपात'* बना लिया और एक लाखपसाव† देकर सचाणो, रगपुर आदि आठ-दस गाँव जागीर में दिये जो अभी तक इनके वंशजों के अधिकार में हैं।

* पोल (सं० प्रतोलि) पर नेग लेने वालों में योग्य।

† राजस्थान में चारण-भाटों को जो दान दिया जाता है उसका नाम उन्होंने पसाव (सं० प्रसाद) रखा है। बड़े दानको वे अत्युक्ति में लाखपसाव, क्रोड़पसाव आदि कहते है। इस तरह के दान देने की प्रथा आजकल बंद-सी हो गई है। पहले जब लाखपसाव आदि दिये जाते थे तब एक लाख रुपया नकद नहीं दिया जाता था। हजार दो हजार के करीब रोकड़ रुपया देकर शेष रकम की पूर्ति हाथी, घोड़े, सिरोपाव आदि देकर की जाती थी। छोटा दान लाखपसाव, उससे बड़ा क्रोड़पसाव और सब से बड़ा अरबपसाव कहलाता था।

कहा जाता है कि लगभग ४० वर्ष तक ईसरदास जामनगर में रहे। बाद में अपने जन्म-स्थान भाद्रेस को चले गए और लूँणी नदी के किनारे एक कुटिया बनाकर रहने लगे। वहीं सं० १६७५ के आसपास ८० वर्ष की अवस्था में इनका देहावसान हुआ।

ईसरदास एक भक्त और चमत्कारी पुरुष थे। इनके भक्ति-चमत्कार की अनेक दन्तकथाएँ राजस्थान में प्रचलित हैं[५]। परन्तु उनका ऐतिहासिक मूल्य विशेष नहीं है। कहते हैं कि इनको कई अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त थीं जिनकी वजह से लोग इनको 'ईसरा सो परमेसरा' कहकर पूजते थे।

५ इन कहानियों में एक कहानी इतनी लोक-प्रिय और मार्मिक है कि उसे यहाँ देने का लोभ हम से संवरण नहीं होता। कहते हैं कि एक बार ईसरदास जामनगर से अमरेली आते हुए रास्ते में वेणू नदी के किनारे पर एक छोटे से गाँव में सांगा नामक एक राजपूत के यहाँ ठहरे। सांगा ने इनकी बड़ी आवभगत की और जब ये वहाँ से आगे चलने लगे तो इनसे कहा कि मैं बहुत गरीब हूँ और आपको भेंट में देने लायक कोई वस्तु मेरे पास नहीं है। सिर्फ एक कम्बल है जिसे मैं आपकी भेंट करना चाहता हूँ। ईसरदास ने कहा कि उस कम्बल को वापस लौटते वक्त हम तुमसे ले जाएँगे। यह कहकर वे वहाँ से रवाना हो गए।

इसी बीच में ऐसा हुआ कि एक दिन सायकाल को जब साँगा अपने पशुओं को जंगल में चराकर घर लौटते वक्त वेणू नदी को पार कर रहा था तब बाढ़ आ गया और वह और उसके पशु उसमें बह गए। सांगा ने बाहर निकलने के लिए बहुत हाथ-पाँव पटके परन्तु उसकी सब मेहनत वृथा गई। अंत में जब उसने देख लिया कि उसकी मृत्यु निश्चित है तब उसने नदी के किनारे पर खड़े अपने ग्रामवासियों से चिल्ला कर कहा कि "मैं मर रहा हूँ, पर मेरे मन में एक इच्छा रह गई है। वह यह कि अपने वादे के मुताबिक ईसरदास को मैं कम्बल न दे सका। परन्तु तुम लोग घर पहुँचकर मेरी माँ से कह देना कि ईसरदास के लिए जो कम्बल रखा हुआ है उसे वह उनके वापस लौटने पर उन्हें दे दे"। यह कहते-कहते साँगा की साँस टूट गई और वह पानी में डूब गया।

इस घटना के कुछ दिन बाद ईसरदास सांगा के घर आ पहुँचे। साँगा की माँ ने उनके लिए भोजन तैयार किया। परन्तु भोजन के आसन पर बैठने से पूर्व ईसरदास ने पूछा कि सांगा कहाँ है, मैं उसके साथ भोजन करूँगा। यह सुनकर साँगा की माँ का कलेजा भर आया और टपाटप आँसू गिराने लगी। अंत में सांगा की मृत्यु की सारी बात उसने ईसरदास से कह दी। सुनकर वे उठ खड़े हुए और बोले—'मुझे वह स्थान बताओ जहाँ साँगा डूबा है।' माँ ने साथ जाकर वह स्थान उन्हें बता दिया। वहाँ खड़े होकर ईसरदास ने जोर से पुकारा—"साँगा! मैं तुम्हारी प्रतिज्ञा के अनुसार कम्बल लेने आया हूँ। आकर अपना वादा पूरा करो।" सामने से आवाज आई—"आ रहा हूँ।" और थोड़ी देर में

इन्होंने डिंगल भाषा के बारह ग्रन्थ बनाए जिनके नाम ये है :--

(१) हरिरस (२) छोटा हरिरस (३) बाल लीला (४) गुण भागवत हंस (५) गरुड पुराण (६) गुण आगम (७) निन्दा स्तुति (८) देवियाण (९) वैराट (१०) रास कैलास (११) सभा पर्व (१२) हालॉ झालॉ रा कुडळिया।

इनमें 'हरिरस' और 'हालॉ झालॉ रा कुडळियॉ' ईसरदास की बहुत लोकप्रिय रचनाएँ हैं। हरिरस ईश-भक्ति का ग्रन्थ है। इसमें तल्लीनता, अगाध प्रेम, दृढ विश्वास कूट-कूटकर भरा पड़ा है। ईसरदास के समकालीन कवियों ने भी इसकी बड़ी प्रशसा की है। इनमें केशवदास गाडण की यह उक्ति राजस्थान में बहुत प्रसिद्ध है—

> जग प्राजळतो जाण, अघ दावानळ ऊपरॉ।
> रचियौ रोहड राण, समँद हरीरस सूरवत ॥

'हालॉ झालॉ रा कुडळिया' वीर रस की अत्युत्कृष्ट रचना है। इसी का दूसरा नाम सूर सतसई है। परन्तु यह नाम भ्रामक है। क्योंकि सतसई नाम से इसमें सात सौ पद्यों का होना सूचित होता है, जो इसमें नहीं हैं। इसमें सिर्फ ४२ पद्य, कुडलिया, हैं। कुछ लोगों का अनुमान है कि यह ग्रन्थ ईसरदास रचित नहीं है, उनके काका आशानन्द का लिखा हुआ है। परन्तु उनका यह अनुमान निराधार है। इसकी १८-२० हस्तलिखित प्रतियॉ हमारे देखने में आई हैं और सभी में ईसरदास का नाम दिया हुआ है।

इन दोनों ग्रन्थों के अतिरिक्त ईसरदास के जो दूसरे ग्रथ हैं वे प्रायः सभी बहुत छोटे-छोटे हैं और साहित्यिक दृष्टि से विशेष महत्त्व के भी नहीं

सागर अपने पशुओं सहित आता हुआ दिखाई दिया। आकर उसने ईसरदास के पॉव पकड़ लिए। फिर दोनों घर गये और सानन्द भोजन किया। इस विषय के ५-७ दोहे भी लोगों की जबान पर है। चार दोहे यहॉ दिये जाते है —

> नदी वहतो जाय, साइज सॉगरिए दियौ।
> कहज्यौ मारा माय, कवि नै दवै कामली ॥
> वाहण वहतौ जाय, साद दियतौ साथियॉ।
> कहज्यौ जायर माय, कवि नै दीजै कामली ॥
> वहत नदं पाणीह, सॉगरिए दीधौ सबद।
> कामल सहनाणीह, दीजै ईसरदास नै ॥
> ईस तणौ आवाज, सागा जल-थल सामलै।
> कामल देवण काज, वेगौ वल सिध कर वयण ॥

है। इनमें भागवत, उपनिषद् आदि संस्कृत-ग्रन्थों मे निरूपित सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया गया है।

ईसरदास की कविता के नमूने देखिए.—

तिलाँ तेल पोहप फुलेल, उज्झेलत सायर।
अगनि काठ जोवन्न बट्ट, भगवट्ट सु कायर॥
ईख रस्स अहि फेण, अरथ आगम-उरठाहे।
पानाँ चग मजीठ रग, उछरग बिमाहे॥
खग नीर धीर अतर खग, मद कुजर वपु जिम मयण।
मन बसे तेम त मा्हरे, मो मन बसियो महमहण॥

(जिस तरह तिलो में तैल, पुष्प मे इत्र, समुद्र मे तरग, काष्ट मे अग्नि, शरीर मे यौवन, कायर पुरुषो में भगमा, गन्ने मे रस, सर्प मे झाग, वेद में अर्थ, ताबूल मे उत्तमता, मजीठ मे रग, विवाह मे आनन्द, तलवार मे पानी, अन्त.करण म सच्चाई, हाथी मे मद एव शरीर मे कामदेव व्याप्त रहता है उसी भाँति हे महार्णव! मेरे मन मे आप और आप मे मेरा मन बस रहा है॥)

(दोहे)

सादूळौ आपै ससौ, बीजौ कवण गिणत।
हाक बिडाणी किम सहै, घण गाजियै मरत॥

(सिंह अपने मुकाबले मे और किसको गिनता है? वह किसी दूसरे की हाक को कैसे सह सकता है? वह तो बद्ल के गरजते ही मरता है।)

सीहण हेको सीह जण, छापर मडै आळ।
दूध विटालण कापुरुष, बौहळा जणै सियाळ॥

(सिंहिनी केवल एक सिंह को जन्म देती है,जो खुले मैदान में घेरा डालता है। लेकिन सियारी दूध को लज्जित करनेवाले अनेक कायरों को जन्म देती है।)

हिरणा लाँबी सींगडी, भाजण तणौ सभाव।
सूराँ छोटी दातळी, दै घण थट्टा घाव॥

(हरिना के लम्बे सींग होते हैं, पर स्वभाव भागने का होता है। सूअरा के छोटी-सी दातली होती है पर वे (शत्रु) समूह पर गहरा घाव करते हैं।)

केहर मूछ भुजग मण, सरणाई सोहड़ाह ।
सती पयोधर कृपण धन, पडसी हाथ मुवाह ॥

(सिंह की मूछ, सर्प की मणि, बहादुर का आश्रय, सती के स्तन और मूजी का धन मरने ही पर हाथ आते हैं ।)

सैल घमोड़ा किम सह्या, किम सहिया गजदत ।
कठण पयोधर लागता, कसममतौ तू कत ॥

(हे कत ! तूने भालो के प्रहार कैसे सहन किये और कैसे हाथियो के दातो की मार सही । तू तो कठोर स्तनो के स्पर्श से ही विचलित हो जाता था ।)

लै ठाकर वित आपणौ, देतौ रजपूताँह ।
धड धरती पग पागडै, अत्रावळि गीधाह ॥

(हे ठाकुर ! तू राजपूत को जो वित्त देता था उसका बदला ले । उसका धड धरती पर तथा पाव पागडे मे हैं और उसकी अतड़ी को गीध खा रहे हैं ।)

केशवदास जोधपुर राज्यान्तर्गत सोजत परगने के चिडिया नामक गॉव के निवासी थे । इनका जन्म स० १६१० मे और देहान्त स० १६६७ मे हुआ था । ये गाड़ण शाखा के चारण थे । इनके

केशवदास

पिता का नाम सदमाल था । केशवदास गृहस्थ थे पर साधुओं की तरह गेरुआ वस्त्र पहिनते थे । इनकी प्रशसा मे लिखा हुआ राठौड पृथ्वीराज का यह दोहा प्रसिद्ध है—

केसौ गोरखनाथ कवि, चेलो कियौ चकार ।
सिध रूपी रहता सबद, गाडण गुण भडार ॥

केशवदास डिंगल भाषा के कवि थे । इनके लिखे तीन ग्रथ प्रसिद्ध हैं : (१) गुण रूपक, (२) राव अमरसिह जी रा दूहा और (३) विवेक-वार्ता । कहा जाता है कि इन्होंने 'गज-गुण-चरित्र' नाम का एक ग्रथ और भी बनाया था, जिसका पता नहीं लगता । इन ग्रथो में "गुण रूपक" सबसे बडा है । इसमें जोधपुर के महाराजा गजसिह के राज्य-वैभव, उनकी तीर्थयात्रा, उनके युद्धों आदि का वर्णन है । दोहा, कवित्त, गाहा, अड़ल, मथाणा इत्यादि सब मिलाकर लगभग एक हज़ार छदों में यह समाप्त हुआ है । इसका रचनाकाल स० १६८१ है—

सोळह सइ सवत हुए, जोगणपुर चाळै ।
समै एकासियै मास, काती बडाळै ॥

'राव अमरसिहजी रा दूहा' मे नागौर के राव अमरसिंह की वीरता का वर्णन है और 'विवेक-वार्ता' वेदान्त का ग्रथ है। इनकी रचना के दो नमूने यहाँ दिये जाते हैं—

भीम भयकर नाद भेर नीसाण गरज्जै ।
गुहिर सद्द गडगडै गयण बारह घण गज्जै ॥
खिवै कूँत अदभूत भड़ा वाका भुअ डडै ।
मुठाँणी वादळि वळक वीज लता ब्रिहमडै ॥
तळ जोड़ पडै कुँजर बहै अनड नदी नड दडियडै ।
असपति राउ असमान रा दळ वादळ वदि वदि चडै ॥
लोइण चचळ चपळ अचळ धू जिम मन धारण ।
कड़ि मयक मुख इन्द दिग्घ वैणी अहिदारण ॥
मद गयद गति मद-काय जाणै भ्रम कदळि ।
वप चपक दळ वरन सीस गुजार करै अळि ॥[६]

ये जाति के चारण थे। जन्म-स्थान आदि का ठीक-ठीक पता नही है। आविर्भाव-काल स० १६२० के लगभग है। इन्होने ग्रन्थ कोई नहीं लिखा पर फुटकर कवित्त (छप्पय) बहुत अच्छे रचे हैं। जिनकी बडी प्रसिद्धि हैं। कहा भी है—

अल्लूजी

कविते अलू दूहे करमाणद, पात ईसर विद्या चौ पूर।
छदे मेहो फूलणे मालो, सूर पदे गीत हरसूर ॥

इनकी भाषा डिगल है। कविता सरल, भक्ति-भावपूर्ण एव ज्ञानवर्द्धक है। उदाहरण—

सोही वाणा सुवाण, भजै हरि नाम निरन्तर ।
सोही माँण सुमाँण, भरै भलपण हुँत जाठर ॥

---

६ खिवै=चमकता है। कूँत=भाला। मुठाण=तलवार। मुठाणी ब्रिहमडै तलवार की चमक बादलो के बीच की विद्युल्लता के समान शोभायमान है। बहै=चलते है। अनड=पहाड। असपति=बादशाह, इन्द्र। दडियडै=गूंजते है, गड़गड़ाते है। धू=ध्रुव। कडि=कमर। वप=शरीर।

मोही लाज मुलाज, त्रिया पर मेळय तज्जै।
मोही सूर सामत, भिडे आराण नहें भज्जै॥

दिल धर्म साही पाळै दया, न्याव साही पाछि न करै।
हरि नाम जीह जपतौ रहै, अलू सपूत कुळ ऊधरै[७]॥

इनका विशेष वृत्त ज्ञात नहीं है। रचना-शैली से कोई जैन कवि प्रतीत होते हैं। आविर्भाव काल सं० १६२५ के लगभग है।

जल्ह इनके रचे 'बुद्धिरासो' नामक एक ग्रन्थ का पता है। इसमें चंपावती नगरी के राजकुमार और जलधितरंगिनी नामक एक रूपवती स्त्री की प्रेम-कहानी वर्णित है। कहानी कल्पित है। इसकी छन्द-संख्या १४० है। भाषा अपभ्रंश मिश्रित राजस्थानी है। रचना सरस और मनोहारिणी है। उदाहरण—

घरि घरि कुसुम वास अरिव्यंदा, अलि लुट्टहि अहि निशि तजि न्यंदा।
जलधितरंगनि कीन वनंदा, किय षोडस जनु पूरण चंदा॥
चंद-मुखी मुख चन्द कीय, चखि कज्जल अंवर हार लीय।
वण घटणि छिद्र नितंव भंग, मयमत्त सुवा मनमच्छ करै॥
अति अथि नवाल अमोल सुख, अहिलाकु सु अछूछर कौण सुख।

पृथ्वीराज राठौड़ पृथ्वीराज बीकानेर-नरेश राव कल्याणमल के बेटे और राव जैतसी के पोते थे। इनका जन्म सं० १६०६ में हुआ था। इतिहास-प्रसिद्ध महाराजा रायसिंह इनके बड़े भाई थे। कर्नल टॉड ने इनके विषय में लिखा है कि 'पृथ्वीराज अपने युग के वीर सामन्तों में एक श्रेष्ठ वीर थे और पाश्चिमीय ट्रूबेडार राजकुमारों की भांति अपनी ओजस्विनी कविता के द्वारा किसी भी कार्य का पक्ष उन्नत कर सकते थे तथा स्वयं तलवार लेकर लड़ भी सकते थे। इतना ही नहीं, राजपूताने के कवि समुदाय ने एक स्वर से गुणिता का सेहरा भी इन्हीं वीर राठौड़ के सिर पर बाँधा था।

---

७ सोही=वहा। सुवाण=अच्छी वाणी। माण=मान। हुंत=से। जाठर=पेट। मेलय=समागम। आराण=युद्ध। पाछि=पक्षपात।

उच्च कोटि के कवि एवं योद्धा होने के साथ साथ पृथ्वीराज भगवद्भक्त भी पूरे थे। भक्तवर नाभादास ने भी अपने 'भक्तमाल' में इनका गुण-गान किया है—

> सवैया गीत श्लोक वेलि दोहा गुण नव रस।
> पिंगल काव्य प्रमाण, विविध विध गायो हरजस॥
> परिदुख विदुख सलाध्य, वचन रसना जु उच्चारै।
> अर्थ विचित्रन मोल, सबै सागर उद्धारै॥
> रुकमिनी लता बरनन अनुप, वागीश-वदन कल्याण सुव।
> नरदेव उभै भाषा निपुन, पृथीराज कविराज हुव॥

पृथ्वीराज मुगल सम्राट अकबर के बड़े कृपापात्र थे और प्राय. शाही दरबार में रहा करते थे। मुँहणोत नैणसी की ख्यात से पता लगता है कि बादशाह ने इन्हें गागरौन का किला दिया था जो बहुत समय तक इनकी जागीर में रहा।

पृथ्वीराज ने दो विवाह किये थे। इनकी पहली स्त्री का नाम लालादे था। यह जैसलमेर के रावळ हरराज की पुत्री थी। इसका देहान्त हो जाने पर इन्होंने इसी की बहिन चाँपादे से अपना दूसरा विवाह किया। इन दो स्त्रियों से पृथ्वीराज के कितनी संतानें हुई इसका ठीक-ठीक पता इतिहास ग्रंथों से नहीं लगता। परन्तु इनके संतान हुई थी, यह निस्संदिग्ध है। इनके वंशज पृथ्वीराजोत बीका कहलाते हैं जो बीकानेर राज्यान्तर्गत दद्रेवा के पट्टेदार हैं और छोटी ताजीम का सम्मान रखते हैं। पृथ्वीराज का देहान्त सं० १६५७ में हुआ था।

डिंगल भाषा के कवियों में पृथ्वीराज का स्थान बहुत ऊँचा है। इनके रचे ग्रन्थों के नाम ये हैं :—वेलि क्रिसन रुकमणी री, दसम भागवत रा दूहा, गंगा लहरी, वसदेरावउत और दसरथरावउत।

(१) वेलि क्रिसन रुकमणी री। यह पृथ्वीराज की सर्वोत्कृष्ट रचना है। इसके दो संस्करण प्रकाशित भी हो चुके हैं, एक बंगाल की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी की ओर से और दूसरा हिन्दुस्तानी एकेडमी प्रयाग की ओर से। पहले संस्करण का सम्पादन डा० टैसीटरी ने सं० १६७३ में और दूसरे का सूर्यकरण पारीक तथा ठाकुर रामसिंह ने सं० १६८८ में किया था।

इन दोनो मुद्रित संस्करणों के अन्तिम दोहलों में वेलि का रचनाकाल सं० १६३७ दिया हुआ है —

वरसि अचळ[7] गुण[3] अंग[6] ससी[1] संवति, तवियौ जस करि स्री भरतार।
करि श्रवणे दिन राति कंठि करि, पामै स्री फळ भगति अपार ॥

डा० टैसीटरी ने अपना संस्करण आठ प्राचीन प्रतियों के आधार पर तयार किया था। इनमें सब से प्राचीन प्रति सं० १६७३ की लिखी हुई थी। शेष सात प्रतियों का लिपिकाल सं० १६७६ और सं० १७८१ के बीच में था। हिन्दुस्तानी एकेडेमी वाले संस्करण का आधार डा० टैसीटरी का संस्करण तथा चार प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ थीं। ज्ञात होता है, उक्त दोनों संस्करणों के संपादकों को जितनी भी हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई उन सब में उनको वेलि का रचनाकाल सं० १६३७ ही लिखा मिला और इसलिए इस विषय में शंका करने का कोई अवसर उनके सामने उपस्थित नहीं हुआ। हिन्दुस्तानी एकेडेमी वाले संस्करण के संपादकों ने तो साफ लिखा है कि 'अन्तिम दोहले ३०५ में कवि ने प्रथानुसार ग्रंथ-समाप्ति का समय स्पष्टतः सं० १६३७ बता दिया है। इस संवत के विषय में किसी प्रकार के अपवाद अथवा विवाद को स्थान नहीं है'।

लेकिन इधर उदयपुर के राजकीय पुस्तकालय, सरस्वती-भंडार, में वेलि की तीन ऐसी हस्तलिखित प्रतियाँ हमारे देखने में आई हैं जिनमें उसका रचनाकाल सं० १६४४ वैशाख सुदि ३ सोमवार दिया हुआ है। ये तीनों प्रतियां भिन्न भिन्न समय तथा भिन्न-भिन्न स्थानों में लिपिबद्ध हुई हैं और एक दूसरी की प्रतिलिपि नहीं है। इनमें एक प्रति सं० १७०१ की, दूसरी सं० १७२८ की और तीसरी सं० १७६५ की लिखी हुई है। पाठान्तर इनमें बहुत है पर ग्रंथ का निर्माण-काल तीनो में एक ही दिया हुआ है—

(१) सोलह से संवत चमाळे वरसै, सोम तीज वैसाख सुदि।
रुक्मिणी कृष्ण रहस्य रमण रस, कथी वेलि प्रथ्वीराज कमधि

—सं० १७०१ की प्रति

(२) सोलह से संवत चमाळै वरषै, सोम तीज वैसाख समधि।
रुपमणि क्रित रहसि रमता, कही वेली पृथ्वीराज कविध ॥

—सं० १७२८ की प्रति।

(३) सौले से सवत चोमाळीसै वरसे, मास तीज बैसाख सुदि।
रुकमणी धरा रहस्य ईसरगत कहि वेलि प्रिथीदास कमध॥

—स० १७६५ की प्रति।

इण्डियन एफेमेरिस को देखने से ज्ञात हुआ कि स० १६४४ की वैशाख सुदी ३ के दिन सोमवार नहीं, अपितु रविवार था। लेकिन एक दिन का अन्तर तो उक्त पचाग मे प्रायः मिलता है। ऐसी दशा मे इस सवत् को सहसा जाली कहकर भी नहीं टाला जा सकता। अनुमान होता है, उल्लिखित सस्करणो के अतिम पद्यो मे जो सवत् (१६३७) दिया हुआ है वह 'वेलि' को प्रारम्भ करने का समय है। इसका समाप्ति-काल स० १६४४ ही है जैसा कि उदयपुर के सरस्वती भडार की उपरोक्त तीनो प्रतियो मे सूचित होता है।

वेलि डिंगल साहित्य के प्रसिद्ध छद, वेलियो गीत, मे लिखा हुआ तीन सौ पाँच पद्यो का एक खड काव्य है। इसमे श्रीकृष्ण-रुक्मिणी के विवाह की कथा का वर्णन है। कथा का आधार, जैसा कि कवि ने स्वय लिखा है, श्रीमद्भागवत का दशम स्कध है—

वल्ली तसु बीज भागवत वायौ, महि थाणौ प्रिथुदास मुख।
मूळ ताल जड अरथ मण्डहे, सुथिर करणि चढि छाँह सुख[८]॥

परन्तु यह कथानक केवल बीज रूप मे ग्रहण किया गया है। काव्य-सौष्ठव, वर्णन-शैली आदि सभी कवि के अपने है। ग्रथ शृगार रस प्रधान है। पर वीर, वीभत्स आदि दो-एक अन्य रसो की भी इसमे प्रसगानुसार अच्छी व्यजना हुई है। भाषा इसकी विशुद्ध डिंगल है। शब्द चयन मे कोमलता और औचित्य का इतना ध्यान रखा गया है कि शब्द की ध्वनि से ही भावना का चित्र साकार-सा हो जाता है—

कळकळिया कुत किरण कळि ऊकळि, वरजित विसिख विवरजित वाउ।
धडि धडि धवकि धार धारूजळ, सिहरि सिहरि समरवै सिळाउ[९]॥

---

८ यह जो वेलि है इसका बीज भागवत है जो पृथ्वीराज के मुखरूपी आल-वाल मे बोया गया है। मूल पाठ और नाल जटे है और अर्थ रूपी दृढ मडप पर सुखद छाया करने के लिए यह वेलि फैली है।

९ भाले रूपी सूर्यकिरण युद्ध में मग्न होकर चमचमाने लगे। बाण बद हो गए है। शरीर-शरीर पर तलवारों की धारें चमक रही है, (मानो) शिखर-शिखर परए बिजलियाँ चमक रही हैं।

जिस प्रकार एक चतुर सुनार किसी नग की ठीक-ठीक परीक्षा कर लेने के पश्चात् फिर उसे आभूषण में बिठाता है उसी तरह पृथ्वीराज ने भी प्रत्येक शब्द को खूब सोच विचारकर, पूरी तरह से शोध माँजकर, वेलि में स्थान दिया है। अत. कोई शब्द कहीं बेमौके नहीं है। प्रत्येक शब्द चित्रोपम, भावोपयुक्त एवं उपादेय है और अपने स्थान पर ठीक बैठा है।

पृथ्वीराज ने शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का प्रचुर प्रयोग किया है। स्वरूप बोध और भावोत्तेजन की दृष्टि से इनकी योजना हुई है। परन्तु अलंकारों की प्रचुरता में काव्य में कहीं कृत्रिमता नहीं आने पाई है, सर्वत्र स्वाभाविकता का स्तुत्य आभास मिलता है। शब्दालंकारों में अनुप्रास तथा वैणसगाई और अर्थालंकारों में उपमा, रूपक एवं उत्प्रेक्षा वेलि में अधिक मिलते हैं। उपमा और रूपक की तो इसे खान ही समझना चाहिए। पृथ्वीराज की उपमाओं में एक विशेष बात देखने में आती है। वह है, उपमा की पूर्णता। हमारे प्राचीन कवि प्राय. आँख की उपमा कमल से, और मुख की चन्द्रमा से देते आये हैं। इस तरह की उपमाओं से उपमेय-उपमान के बीच का थोड़ा-सा सादृश्य अवश्य प्रकट हो जाता है पर वर्णन में सजीवता नहीं आती, न कथित विषय का पूरा दृश्य सामने आ पाता है। पर पृथ्वीराज की उपमाओं में यह बात नहीं है। वे अपनी उपमाओं में न केवल उपमेय-उपमान का साधर्म्य कथन करते हैं प्रत्युत दोनों के आस पास के पूरे वातावरण को ही शब्दों में ला उतारते हैं जिससे भाव सजीव होकर जगमगाने लगता है। यथा—

सग सखी सील कुळ वेस समाणी, पेखि कळी पदमिणी परि।
राजति राजकुअँरि रायअंगण, उडियण बीरज अम्बहरि[10] ॥

यहाँ पर कवि ने रुक्मिणी की उपमा चन्द्रमा से देकर ही अपने कार्य की इतिश्री नहीं कर दी है, बल्कि रुक्मिणी की सखियों की समता तारों से दिखाकर दोनों के आस पास के समूचे वातावरण का शब्द-चित्र सामने ला रखा है। उपमा-सौन्दर्य के अलावा कविता की एक और विशेषता द्रष्टव्य है—सजेस्टिवनैस। पूर्वार्ध में कवि ने 'पदमिणी' शब्द का प्रयोग तो

---

[10] साथ में शील, कुल और उम्र में समान सखियाँ कमलिनी की कलियों की भाँति दिखाई देती है। उनके साथ राजमहल के आँगन में राजकुमारी ऐसी शोभायमान हो रही है मानो निर्मल आकाश में चन्द्रमा तारागण सहित शोभित है।

किया है पर साथ में सरवर का कहीं उल्लेख नहीं है। परन्तु आगे जाकर उत्तरार्द्ध में चन्द्रमा के साथ स्वच्छ आकाश का वर्णन कर दिया है जिससे स्वच्छ जल-पूरित सरोवर का चित्र स्वत आँखों के सामने आ जाता है।

और भी—

रमा अवतार नाम ताइ रुपमणि, मानसरोवर मेरुगिरि।
बाळकति-किरि हंस चा बाळक कनकवेलि बिहुँ पान किरि[११] ॥

पाश्चात्य कवि होमर इस प्रकार की उपमाओं के लिये बहुत प्रसिद्ध हैं। यही विशेषता पृथ्वीराज की भी अन्यान्य डिंगल कवियों में बहुत ऊँचा उठा देती है।

वेलि का कला पक्ष जितना पूर्ण है उतना ही पूर्ण उसका भाव पक्ष भी है। दोनों में से किसकी अधिकता है और किसकी न्यूनता यह नहीं कहा जा सकता दोनों का उसमें विलक्षण समन्वय हुआ है। डा० टेसीटरी वेलि की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं कि यह काव्यकला की दक्षता का एक विलक्षण नमूना है जिसमें आगरे के ताजमहल की तरह, भाव की एकाग्र-सहजता के साथ अनेकानेक काव्य गुण-विस्तार का सुखद सम्मिश्रण हुआ है और जिसमें रस एवं भाव का सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्य तथा काव्य के बाह्य आकार की निष्कलंक शुद्धता को जाज्वल्यमान रूप में प्रदर्शित किया किया गया है'।

श्री कृष्ण का रुक्मिणी के साथ विवाह हो गया है। रात को वे अपने केलि गृह में रुक्मिणी के आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। बड़े बेचैन हैं। शय्या और द्वार के बीच में चक्कर लगा रहे हैं। थोड़ी-सी भी आवाज सुनकर चौंक पड़ते हैं—

ऊभी सहु सखिए प्रमसिता अति, कितारथ प्री मिळण कित।
अटत सेज द्वार बिच आहुटि, स्रुति देहरि धरि समाश्रित[१२] ॥

---

११ लक्ष्मी का अवतार थी। उसका नाम रुक्मिणी था। सुमेरपर्वत पर दो पत्तोंवाली स्वर्ण-लता के समान बाल क्रीड़ा करती हुई वह ऐसी लगती थी मानो मानसरोवर में हंस का बच्चा।

१२ (इधर) प्रिय मिलन के निमित्त सब सखियों से अति प्रशंसिता रुक्मिणी खड़ी की गई। (उधर) श्रीकृष्ण शय्या और द्वार के बीच घूम रहे हैं। और आहट पर कान देकर केलिगृह में चले जाते ह।

प्रेमातुर कृष्ण का कितना सुन्दर भाव-चित्र अंकित किया गया है, यह कवि के निजी अनुभव और मनोभावों का सजीव चित्रांकन है। हमें भी अपने यौवन-प्रभात की याद दिलाता है।

अपनी सखियों के साथ रुक्मिणी श्रीकृष्ण के केलि-गृह में पहुँचती हैं। श्रीकृष्ण उन्हें बड़े आदर के साथ शय्या पर बिठाते हैं। फिर उनके मुख को बार-बार इस प्रकार देखते हैं जिस प्रकार रंक धन को देखता है। श्रीकृष्ण की रतीच्छा देखकर सखियाँ भौंहों से हँसती हुई एक-एक करके कमरे से बाहर चली जाती हैं—

> वर नारि नेत्र निज वदन विलासा, जाणियौ अंतहकरण जई।
> हँसि हँसि भ्रहे ट्रंक ट्रंक हुइ, ग्रिह बाहरि सहचरी गई॥

इसी भाव को बिहारीलाल ने यों व्यक्त किया है—

> पति रति की बतियाँ कही, सखी लखी मुसकाय।
> कै कै सबै टला टली, अली चली मुसकाय[13]॥

लेकिन दोनों की भावाभिव्यक्ति में अन्तर है। बहुत अन्तर है। बिहारी के नायक को अपनी नायिका से रति क्रीडा के लिये कहना पड़ रहा है। इसलिये उसमें कुछ रूखापन, कुछ नग्नता, कुछ कामोन्माद की बू आ गई है। परन्तु पृथ्वीराज के वर्णन में यह बात नहीं है। उसमें शिष्टता, संस्कारिता और लज्जा-शीलता का पूरा पूरा पालन हुआ है। साथ ही उसमें काव्योचित कोमलता और भाव की गंभीरता भी अधिक है।

वेलि का प्रकृति-वर्णन डिंगल साहित्य को पृथ्वीराज की अपनी एक अपूर्व देन है। यह प्रकृति-वर्णन षट्ऋतु वर्णन के रूप में है। लेकिन परम्परानुगत और पिष्टपेषित नहीं है, अपनी नवीनता और मौलिकता को लिये हुए है। रात्रि, प्रभात, ग्रीष्म, वर्षा, वसंत आदि के मनोरम दृश्य एक के बाद एक इस प्रकार अंकित किये गये हैं कि देखकर मन रस-मग्न हो जाता है। ऐसा प्रतीत होने लगता है मानो पाठक कोई ग्रंथ नहीं पढ़ रहा है, बल्कि एक ऐसा चलचित्र देख रहा है जिसमें रंग और प्रकाश दोनों का अनुकूल सामञ्जस्य है। इस प्रकृति वर्णन की दो बहुत बड़ी विशेषताएँ हैं-पर्यवेक्षण की सूक्ष्मता और वातावरण की तीव्रता। कवि ने राजस्थान की ऋतु परि-

---

१३ वर और वधू के नेत्रों तथा उनकी चेष्टाओं से जब उनके आंतरिक भावों को जान लिया तब भौंहों से हँसती हुई एक-एक होकर सखियाँ महल के बाहर चली गई।

वर्तन सम्बन्धी विभिन्न विशेषताओं को बड़ी बारीक निगाह से देखा है और देखकर उन्हे हू-बहू शब्दों मे उतारने की सफल चेष्टा की है। ग्रीष्म ऋतु के वर्णन मे राजस्थान की गर्मी की प्रचडता तथा लू का और वर्षा ऋतु के वर्णन मे आकाश मे जल्दी जल्दी इधर उधर दौडते हुए बादलो एव वर्षा की झडी का वर्णन इस दृष्टि से विशेष कर के दर्शनीय है। पढते-पढते राजस्थान की धरती का चित्र सामने आ जाता है। कवि के शब्दो ने तूलिका की भाँति चित्र खींचे हैं—

> काळी करि कॉठळि ऊजळ कारण, धारे श्रावण धरहरिया।
> गळि चालिया दिसांदिसि जळग्रभ, थभि न विरहणि नयण थिया ॥१९५॥
> वरसतै दडड नड अनड वाजिया, सवण गाजियौ गुहिर सदि।
> जळनिधि ही सामाइ नहीं जळ, जळबाळा न समाइ जळदि[१४] ॥१९६॥

ऐसा सुन्दर, स्वाभाविक और सुरम्य प्रकृति-चित्रण तो सस्कृत के महा कवियो से ही बना है। इसमे कवि की भाव-तल्लीनता चित्रकार का चित्र कौशल और वैज्ञानिक की सूक्ष्म दृष्टि सन्निहित है।

इसमे सन्देह नहीं कि वेलि शृगार रस का ग्रन्थ है। परतु केवल शृगार रस की पिपासा-शान्ति के लिये ही कवि ने इसकी रचना की हो सो बात भी नही है। इसका आध्यात्मिक पक्ष भी है जिसका स्पष्ट उल्लेख ग्रथ के अन्तिम भाग मे हुआ है। अन्त मे जाकर कवि ने सारे ग्रन्थ को ईश-भक्ति का रूप दे दिया है और इसे सासारिक सुख-वैभव, यश-ऐश्वर्य आदि का साधन तथा जीवन-मुक्ति की निसैनी एव स्वर्गलोक की सीढी बतलाया है—

> प्रिथु वेलि कि पच विध प्रसिध प्रणाळी, आगम नीगम कजि अखिळ।
> मुगति तणी नीसरणी मडी, सरगलोक सोपान इळ[१५] ॥

१४ काले काले वतुलाकार मेघो और उनके प्रान्त भागस्थ श्वेत बादलो की कोरवाली घटाओ सहित श्रावण मूसलाधार वृष्टि मे पृथ्वी को जल प्लावित करने लगा। दिशा-दिशा में बादल पिघल चले। वे थमते नहीं। विरहिणी की के नेत्र हो रहे है।॥१९५॥ बडे जोर से बरसने से पर्वतों के नाले शब्दायमान होने लगे। सघन मेघ गभीर शब्द से गर्जने लगा समुद्र मे भी जल नहीं समाता और बिजली बादलों में नहीं समाती है॥१९३॥

१५ पृथ्वीराज-रचित यह वेलि क्या है, पृथ्वी पर पाच प्रकार की प्रसिद्ध प्रणाली है। (यथा) शास्त्र वेद सर्व प्रकार का कार्य-सिद्धि मुक्ति की बनी-बनाई निसैनी और स्वर्गलोक की सीढ़ी है।

पृथ्वीराज डिंगल और ब्रजभाषा दोनों में निष्णात थे। वे यदि चाहते तो वेलि की रचना ब्रजभाषा में भी कर सकते थे। परन्तु ऐसा करना शायद उन्होंने उचित नहीं समझा। कारण स्पष्ट है। ब्रजभाषा में माधुर्य है, मार्दव है। लेकिन उसमें ओज की कमी है। और एक ऊँचे काव्य की भाषा में कोरे माधुर्य से काम नहीं चलता। माधुर्य के साथ-साथ उसमें ओज भी होना चाहिये जो डिंगल की एक खास विशेषता है। वेलि को ब्रजभाषा में लिखने का मतलब यह होता कि पृथ्वीराज को ओज गुण से वञ्चित रहना पडता और इसके विना वेलि में वह बल, वह उल्लास और वह तेज कदापि नहीं आ पाता जिसके दर्शन उसमें आज हमें पग-पग पर होते हैं। इस विषय में डा० टैसीटरी का कहना है, और उनका यह कहना सच है कि 'यदि पृथ्वीराज ने वेलि को ओज-विहीन पिंगल में लिखा होता तो वे एक अत्यंत भिन्न रचना कर पाते जो संगीत-माधुर्य में वर्तमान ग्रन्थ की अपेक्षा कदापि उत्तम न होती और स्वाभाविक सरलता में तो घटिया रहती ही'।

पृथ्वीराज के जीवन-काल में और उसके बाद भी अनेक वर्षों तक वेलि का राजस्थान में बडा सम्मान रहा। उनके समसामयिक कवियों में से किसी ने इसको वेद-पुराण और किसी ने अमृत की वेल कहकर सराहा।

(१) रुकमणि गुण लखण रूप गुण रचवण, वेलि तास कुण करै बखाण।
पाँचमो वेद भाखियो पीथल, पुणियौ उगणीसमौ पुराण॥
केवल भगत अथाह कलावत, तैं जु किसन-स्त्री गुण तवियौ।
चिहुँ पाचमो वेद चाळवियौ, नव दूणम गति नीगमियौ॥
मैं कहियौ हर भगत प्रिथीमल, अगम अगोचर अति अचड।
व्यास तणा भाखिया समोवड़, ब्रह्म तणा भाखिया वड़॥

(२) वेद बीज जळ वयण, सुकवि जड मंडेस धर।
पात दूहा गुण पुहप, वास भोगवै लखमीवर॥
पसरी दीप प्रदीप, अधिक गहरी आडंबर।
मन सुध जे जाणेत, अरब फळ पायो अम्मर॥
विसतार कीध जुग-जुग विमळ, धणी क्रिसन कहणार धन।
अमृत वेलि पीथल अचळ, तैं राखी कलियाण तन॥

कुछ ईर्ष्यालु लोगों को इससे डाह भी हुई[१६]। लेकिन उनकी यह सारी डाह

१६—मुंशी देवीप्रसाद, राजरसनामृत, पृ० ४३

वेलि के काव्य-सौष्ठव से टकराकर चूर-चूर हो गई। वेलि की लोकप्रियता का अनुमान इसी बात से हो सकता है कि राजस्थान के प्राचीन पुस्तकालयो और जैन भडारो मे शायद ही कोई ऐसा मिलेगा जहाँ इसकी दो चार प्रतियाँ सुरक्षित न हो। इसके सिवा डिंगल मे यही एक ऐसा ग्रन्थ है जिस पर प्राचीन टीकाएँ भी उपलब्ध होती हैं। इन टीकाओं मे तीन टीकाएँ राजस्थानी भाषा मे और एक सस्कृत मे है।

(२) दसम भागवत रा दूहा। यह पृथ्वीराज का दूसरा ग्रन्थ है। इसमे १८४ दोहे हैं। इसका विषय कृष्ण-भक्ति है। इसकी भाषा भी बहुत प्रौढ और परिमार्जित है। शान्त रस की बडी अनूठी रचना है।

(३) दशरथरावउत। इसमें भगवान श्री रामचद्र की स्तुति के ५० के लगभग दोहे हैं। रचना सरस है।

(४) वसदेरावउत। इसमे १६५ दोहे हैं। विषय है, भगवान श्रीकृष्ण का गुणानुवाद। ग्रथ श्रीकृष्ण भक्ति सबधिनी मौलिक उक्तियो से भरा पड़ा है।

(५) गगा लहरी। इसमे ८० के लगभग दोहे हैं जिनमे गगाजी की महिमा गायी गई है। बड़ी लोकप्रिय रचना है। इस विषय के अनेक ग्रन्थ हिन्दी और डिंगल मे पाये जाते हैं। परन्तु पृथ्वीराज की यह रचना अपने रग-ढग की एक ही है।

उपरोक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त पृथ्वीराज-रचित वीर रसात्मक फुटकर गीत, दोहे और कवित्त भी राजस्थान मे बहुत प्रचलित हैं। इनकी ये स्फुट रचनाएँ अपने युग की अनुभूति को प्रत्यक्ष करती हैं और इनमे अकबर के आतक के नीचे कराहती हुई हिंदू जनता की दर्द भरी पुकार साफ़ सुनाई पड़ती है। इनमें असाधारण बल, प्रचड प्रवाह एव अद्भुत तेज है और एक खास प्रकार का व्यग्य भी है जो चोट करने के साथ-साथ सावधान भी करता है।

पृथ्वीराज की कविता के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

(प्रभात वर्णन)

गत प्रभा थियौ ससि रयणि गळती, वर मन्दा सइ वदन वरि
दीपक परजळतौ इ न दीपै, नासफरिम सू रतनि नरि ॥१८२॥

(रात्रि के व्यतीत होने पर चन्द्रमा कान्ति-हीन हो गया, जैसे पति के अस्वस्थ होने से पतिव्रता का सुन्दर मुख। दीपक जलता हुआ भी प्रकाश नही करता, जैसे आज्ञा-भग हो जाने से (हकूमत) न रहने से नरश्रेष्ठ(राजा)

मेली तदि साथ सुरमण कोकमनि, रमण कोकमनि साध्र रही ।
फूले छडी वास प्रफूले, ग्रहणे सीतळता इ ग्रही ॥१८३॥
(उस समय चक्रवाक के मन की रमण करने की वाञ्छा पूर्ण हुई, परन्तु कोक शास्त्रानुसार रमण करनेवाले (नायक-नायिकाओं) के मन की इच्छा निवृत्त हुई । प्रफुल्लित फूलो ने अपनी सुगन्ध छोडी और आभूषणो ने शीतलता ग्रहण की ।)

धुनि उठी अनाहत सख भेरि धुनि,अरुणोदय थियौ जोग अभ्यास ।
माया पटल निसासै मजे, प्राणायामे ज्योति प्रकास ॥१८४॥
(शख और भेरी का शब्द रूपी अनाहत नाद उठा । सूर्योदय रूपी योगाभ्यास हुआ । रात्रिरूपी माया का परदा हट गया । प्राणायाम मे परम ज्योति का प्रकाश हुआ ।)

सयोगिणि चीर रई कैरव श्री, घर हट ताळं भमर गोघोख ।
दिणयर ऊगि एतला दीधा, मोखियाँ बध बधियाँ मोख ॥१८५॥
(सूर्य ने उदय होकर सयोगिनी स्त्रियो के वस्त्र, मथन-दड, कुमुदिनी की शोभा—इतनी मुक्त खुली हुई वस्तुओ को बधन दे दिया और घर, हाट, ताले, भ्रमर और गोशालाएँ—इतनी बद वस्तुओ को मुक्त किया ।)

वणिज वधू गा वाछ्र अमट विट, चोर चकव विप्र तीरथ वेळ ।
सूर प्रगटि एतला समपिया, मिळियाँ विरह विरहियाँ मेळ ॥१८६॥
(सूर्य ने प्रकट होकर वणिको को अपनी स्त्रियो से, गौओ को बछड़ो से, और कुलटाओ को लम्पट पुरुषों से—इतने मिले हुओ को वियोग दिया । और चोरो को उनकी स्त्रियो से, चकवों को चकवियो से, और विप्रों को तीर्थ की लहरों से—इतने बिछुडे हुओ को मिलन सयोग सुख दिया ।।)

दोहे

काया लागौ काट, सिकळीगर छूटै नहीं ।[१७]
निरमळ हुवै निराट, भेट्याँ सूँ भागीरथी ॥१॥
मौडो आयौ मात, तैं वेगो ही तारियौ ।
पडियौ रहस्यूँ पॉय, भाठौ हुय भागीरथी ॥२॥

---

१७. काट=जग । मौडो=देरी मे । वेगो=जल्दी । भाठौ=पत्थर । हेक=एक । कणूकौ=टुकडा । पुलियाह=चले । पाधरा=अनुकूल मूकै=छोडना है । पोयण=कमल ।

जव तिल जिनरौ हेक, हेक कणूको हाड रो ।
मुवॉ पछै ही माय, मेळे गत भागीरथी ॥३॥
पुळियै मग पुळियाह, हुवै दरस अदरस हुवा ।
जळ पैठा जळियाह, मदा क्रम भागीरथी ॥४॥

—गगा लहरी

धर वाकी दिन पाधरा, मरद न मूकै माण ।
घणॉ नरिदॉ घेरियौ, रहै गिरदॉ राण ॥५॥
माई एहडा पूत जण, जेहटा राण प्रताप ।
अकवर सूतौ ओझकै, जाण सिराणै सॉप ॥६॥
अकवर समॅद अथाह, सूरापण भरियौ सजळ ।
मेवाडो तिण माह, पोयण फूल प्रतापसी ॥७॥

—फुटकर

साँयाजी

साँयाजी भूला खॉप (शाखा) के चारण और ईडर राज्य के लीलछा गॉव के निवासी स्वामिदास के द्वितीय पुत्र थे । इनका जन्म स० १६३२ मे और देहान्त स० १७०३ मे हुआ था । ईडर-नरेश राव कल्याणमल इनके आश्रयदाता थे जिन्होंने इनको एक लाखपसाव और कुवावा नामक एक गॉव प्रदान किया था ।

साँयाजी भगवान श्री कृष्ण के अनन्य भक्त थे । इनकी कविता कृष्ण-भक्ति से ओतप्रोत है । भाषा इनकी डिंगल है जिस पर गुजराती का भी थोडा-सा रग लगा हुआ है जो स्वाभाविक है । क्योंकि ये काठियावाडी थे । इनके दो ग्रथ उपलब्ध हैं, रुक्मिणी-हरण और नागदमण ।

रुक्मिणी-हरण मे श्रीकृष्ण-रुक्मिणी के विवाह का वर्णन है । इसकी छन्द सख्या ४३६ है । इसके सम्बन्ध मे एक किंवदती राजस्थान में प्रचलित है । कहा जाता है कि राठौड पृथ्वीराज कृत 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' और 'रुक्मिणी-हरण' दोनों मुगल सम्राट अकबर के पास अवलोकनार्थ भेजे गये थे । बादशाह ने पहले 'वेलि' को सुनकर फिर 'हरण' को सुना । अन्त में 'हरण' की रचना को श्रेष्ठतर निर्णीत करके श्लेष और व्यंग्य में पृथ्वीराज से कहा—"पृथ्वीराज, तुम्हारी 'वेल' को 'हरण' चरगया । इस प्रकार बादशाह ने 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' को घटिया और 'रुक्मिणी हरण' को बढिया बताया । परन्तु यह बात मानने योग्य नहीं है । 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' के

साथ 'रुक्मिणी-हरण' का मुक़ाबला ही नहीं हो सकता । दोनों में आकाश-पाताल का अंतर है। 'वेलि' काव्यकला की दृष्टि से जहां बहुत उच्चकोटि का ग्रन्थ है वहां 'रुक्मिणी हरण' में काव्यत्व का कहीं पता भी नहीं है। यह एक बहुत साधारण श्रेणी का वर्णनात्मक ग्रन्थ है ।

रुक्मिणी-हरण की अपेक्षा सॉयाजी का 'नागदमण' पर्याप्त सजीव और पुष्टता लिये हुए है। यह एक छोटा-सा खंड काव्य है जिसमें कालिय-मर्दन की कथा कही गई है। इसमें १२६ छंद हैं—१२४ भुजंग प्रयात, चार दोहे और एक छप्पय। इसमें कृष्ण की किशोरावस्था, यशोदा के वात्सल्य, गोपियों के प्रेम और कृष्ण-कालिय युद्ध का चित्रोपम वर्णन है। डिंगल की प्रासादिकता और ओज का यह ग्रन्थ एक अच्छा नमूना है। सॉयाजी की रचना के दो उदाहरण नीचे उद्धृत किये जाते हैं:—

जदूनाथ काळी ममी बाथ जोड़ै, घणी भाम चाली चडी वात घोड़ै ।
उभा गाय गावाळ झूरंत आरै, हहाकार हक्कार संसार सारै ॥
सुणी वात आधात माता सनेही, जसोदा ढळी कद्दळी खंभ जेही ।
सबाहे सखी लार हाली सयाणी, गहाबी विचाळै थकी नंदराणी ॥
तबे नंद री नारि आहीर टोळ, खडे आपडे हेक हेका खलोळे ।
जुवे जोषिता जुथ्थ भेळी जसूदा, वपैया हुई कानव्हौ मेघ बुन्दा ॥
बिहू लोचने नीर धारा बहंती, कनैयो कनैयो जसोदा कहंती ।
कलिंदी तणा आइ लोटंत काटै, गयो जाणि चिंतामणी रंक गांठे ॥
—नाग दमण

छंद जफताळ

प्रगट्या क्रिसन वसुदेव जादव पता
श्री हुई रुखमण राव भीमक सुता ॥१॥
विमळ पिता मात कुळ छात जणावियौ
लार भरतार अवतार रुखमण लियौ ॥२॥
भळभळा राजहंस राजकुँवरी भली
एह छै रुखमणी रूप जुग ऊपली ॥३॥
मात पित पूत परवार बैठा मतौ
मोझियौ वाद विवाह कारण सुतौ ॥४॥
भाखियौ भीम मुख जोय चवदै भवन
कुंवर वर मूझ एक सूझै क्रिसन ॥५॥

रुखमियो जाणि घत जाळणी रालियौ
भला भीकम तम्है बर भालियौ ॥६॥

—रुक्मिणी हरण

ये आढा गोत्र के चारण थे। इनका जन्म सं० १५६२ में जोधपुर राज्यान्तर्गत धूँदला नामक गाव में हुआ था। इनके पिता का नाम मेहाजी और दादा का अमराजी था। ये बहुत छोटी अवस्था में पितृ-विहीन हो गये थे। इसलिए बगडी गाँव के ठाकुर प्रतापसिंह ने इनका पालन-पोषण किया और वयस्क होने पर अपने यहाँ नौकर भी रख लिया। ठाकुर प्रतापसिंह की प्रशसा में लिखा हुआ दुरसाजी का एक दोहा मिला है जिसमें उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाशित की गई है—

दुरसाजी

माथै मानीतांह, जनम नणौ क्यावर जितौ।
मोहड सुध पातांह, पाळगाहार प्रतापसी[१८] ॥

कहा जाता है कि दुरसाजी का मुगल दरबार में बड़ा सम्मान था और बादशाह अकबर ने इनको लाखपसाव भी प्रदान किया था। इनके मुगल दरबार में प्रवेश करने तथा सम्राट अकबर द्वारा सम्मानित होने आदि की कुछ दन्तकथाएँ राजस्थान में प्रचलित हैं जो टोहराते दोहराते अब इतिहास के रूप म बदल गई ह। पाठको की जानकारी के लिए इन दन्तकथाओं का सारांश हम यहा देते ह—

(१) एक बार सोजत के मार्ग मे होकर सम्राट अकबर आगरे से अहमदाबाद की तरफ जा रहा था। रास्ते में सोजत उसके ठहरने का एक प्रधान स्थान था जहा से लेकर ठेठ गूँदोच के डेरे तक उसके राह-प्रबन्ध की जिम्मेदारी बगडी के ठाकुर प्रतापसिंह के ऊपर थी। अत: प्रतापसिंह ने यह काम दुरसाजी के सिपुर्द किया। उन्होंने सारे काम को बडी चतुराई से सँभाला जिससे बादशाह बहुत खुश हुआ और लाखपसाव तथा सेवा का प्रशसा-पत्र देकर उसने इनकी प्रतिष्ठा बढाई। यहीं पर इनकी बादशाह से सलामी भी हुई।

१८- वीरों और सुकवियों का पालन करनेवाले हे प्रतापसिंह! माता के जन्म-दान देने के समान मेरे सर पर तेरा एहसान है।

(२) जोधपुर के लक्खाजी बारहठ अकबर के दरबारी कवि थे। वे दुरसाजी को एक दिन अपने साथ शाही दरबार मे ले गये और उनकी बादशाह से सलामी करवाई। इस सुकृपा के बदले मे दुरसाजी ने लक्खाजी की प्रशसा मे यह दोहा बनाया—

दिल्ली दरगह अंब-तरु, ऊँचौ फळद अपार।
चारण लक्खौ चारणाँ, डाळ नमावणहार[१९] ॥

(३) एक बार दुरसाजी पुष्कर-स्नान के लिये अजमेर की ओर गये। उस समय सम्राट अकबर का अभिभावक बेरामखाँ किसी कारणवश अजमेर आया हुआ था। दुरसाजी ने उससे भेट करने की बडी कोशिश की लेकिन उसके नौकर-चाकरों ने भेट न होने दी। इस पर उससे भेट करने का इन्होंने एक नया उपाय ढूढ निकाला। एक दिन सन्ध्या को जब बेरामखाँ कहीं घूमने का अपने डेरे से बाहर जा रहा था तब ये उसके रास्ते से थोडी दूर पर जाकर खडे हो गये और निम्नोक्त दोहे को जोर-जोर से पढ़ने लगे—

आफताब अंबेर पर, अगनी पर ज्यूँ नीर।
दुरसा कवि का दुक्ख पर, है बहराम वजीर ॥

इस पर बेरामखाँ का ध्यान इनकी ओर आकर्षित हुआ। उँगली के इशारे स उसने इन्हे अपने पास बुलाया। पास जाकर दुरसाजी ने उपरोक्त दोहे के अतिरिक्त ये तीन दोहे और भी सुनाये :—

तूँ बन्दा अल्लाह का, मे बन्दा तेराह।
तेरा है मालिक खुदा, तूँ मालिक मेराह ॥
पीर पराई मेटणा, एह पीर का काम।
मेरी पीडा मेट दे, बड़ा पीर बहराम ॥
विभीषण कूँ वारिधि तट, भेटे वो एक राम।
अब मिलग्या अजमेर मे, दुरसा कूँ बेराम ॥

सुनकर बेरामखाँ बहुत प्रसन्न हुआ और दुरसाजी को अपने डेरे पर आने का निमन्त्रण दिया।। दूसरे दिन दुरसाजी उसके डेरे पर गये। वहा बेरामखा ने इनकी बड़ी आवभगत की और एक लाख रुपया पुरस्कार में दिया। दो चार दिन तक दुरसाजी वहीं रहे। एक दिन बात ही बात मे

१९. दिल्ली-दरबार अपार फल देनेवाला ऊँचा आम्र-वृक्ष है। हे चारणो! चारण लक्खा उस वृक्ष की डालो को नीचे झुकानेवाला है।

धूँसण घणरव (कै) करण विधूसण,
वस रघू कै तूँ जदूवंस ॥३॥
आख दलीस कूण तूँ इण मे
अनत कै नर प्रगट यहाँ।
वीर अतळबळ ढाहणवाळो
कै काळी नाथणहार कहाँ ॥४॥

इस गीत से बादशाह बहुत प्रभावित हुआ और उसने दुरसाजी को एक क्रोडपसाव दिया।

(४) जिस समय अकबर के दरबार मे महाराणा प्रताप की मृत्यु (स० १६५३) का समाचार पहुँचा, उस समय दुरसाजी भी वहीं उपस्थित थे। प्रताप जैसे वीर के निधन से अकबर को बडा दु.ख हुआ और एक लम्बी साँस खीच डबडबाई आँखो से वह पृथ्वी की ओर देखने लगा। दुरसाजी बादशाह की मनोव्यथा को ताड गए और उसकी मुखाकृति से उसके दिल के भाव को समझकर उन्होंने उसी वक्त यह छप्पय कहा—

अस लेगौ अण दाग, पाघ लेगौ अण नामी।
गो आडा गवडाय, जिको बहतौ धुर वामी॥
नवराजे नहँ गयौ, न गौ आतसाँ नवल्ली।
न गौ झरोखाँ हेठ, जेथ दुनियाण दहल्ली॥
गहलोत राण जीती गयौ, दसण मूँद रसणा डसी।
नीसास मूक भरिया नयण, ता मृत साह प्रतापसी[२१]॥

इसे सुनकर दरबारियो ने अनुमान किया कि बादशाह अवश्य दुरसाजी पर क्रुद्ध होगा परन्तु उसने तो उलटा उन्हे इनाम दिया और कहा कि इसी ने मेरे भाव को ठीक-ठीक समझा है।

---

२१ हे गुहिलोत राणा प्रतापसिंह! तेरी मृत्यु पर बादशाह ने दाँतो के बीच जीभ दबाई और निश्वास के साथ आँसू टपकाए, क्योंकि तूने अपने घोड़े को दाग नहीं लगने दिया, अपनी पगड़ी किसी दूसरे के सामने नहीं झुकाई। तू अपने यश के गीत गवा गया तू अपने राज्य के धुरे को बाये कंधे से चलाता रहा, नौरोज में नहीं गया, न शाही डेरों में गया। कभी शाही झरोखे के नीचे खड़ा न रहा। तेरा रोब दुनियाँ पर गालिब था। अत तू सब तरह से जीता।

थोड़े-बहुत अन्तर के साथ उपर्युक्त कहानियाँ राजस्थान में कई वर्षों से प्रचलित हैं, पर इनमें से किसी की पुष्टि अकबर के समय की लिखी मुसलमानी तवारीखा तथा राजस्थान की प्राचीन ख्यातों आदि से नहीं होती। अकबरनामे और आईने-अकबरी में जहाँ अकबर के प्रायः सभी बड़े-बड़े दरबारियों, कवि-कोविदों और कलाकारों का सन्निवेश हो गया है वहाँ दुरसाजी का नामोल्लेख भी नहीं है। यदि दुरसाजी को लाखपसाव या क्रोड़पसाव मिला होता तो उसका जिक्र अकबरनामे अथवा आईने-अकबरी में अवश्य होता। क्योंकि लाखपसाव, क्रोड़पसाव आदि का मिलना उन दिनों बड़े आदर की बात समझी जाती थी और जिस किसी को इतने बड़े पुरस्कार मिलते थे उनका निर्देश उक्त ग्रंथों में कर दिया जाता था। इसके सिवा एक बात और भी है। दुरसाजी ने अपनी "विरुद छहत्तरी" में अकबर के लिए 'अकबरियो' 'अधम' 'लालची' आदि शब्दों का प्रयोग किया है जो अकबर के प्रति उनकी असीम घृणा को सूचित करते हैं। अकबर द्वारा सम्मानित कवि ही अकबर की घोर निंदा करे यह बात भी कुछ कम समझ में आती है। इसे तो कृतघ्नता की पराकाष्ठा ही समझना चाहिए। फिर अकबर जैसे प्रतापी सम्राट की निन्दा करके भी क्या दुरसाजी उसके दरबार में बने रह सकते थे, यह बात भी विचारणीय है। वस्तुतः ये दन्तकथाएँ दुरसाजी जैसे यशस्वी कवि और अकबर जैसे महान सम्राट दोनों के गौरव के अनुकूल नहीं हैं। इसके सिवा विषय की दृष्टि से भी इनमें परस्पर बहुत विरोध है। जो दुरसाजी एक स्थान पर अकबर को श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्ण का अवतार बतलाते हैं वही दूसरे स्थान पर उसे 'अधम' कह कर सम्बोधित करते हैं, यह कैसे संभव हो सकता है? सारांश यह कि दुरसाजी का अकबर के दरबारी कवि होने तथा अकबर द्वारा उनको लाखपसाव, क्रोड़पसाव आदि मिलने की जो बातें कही जाती हैं उनमें कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं है। दुरसाजी के यश तथा अपनी जाति के महत्व को बढ़ाकर बतलाने के लिए चारण लोगों ने इनको गढ़ लिया है। कहना न होगा कि जिन लोगों ने ये कहानियाँ गढ़ी हैं उनको अकबरी दरबार के ठाट-बाट और शिष्टाचार आदि विषयक बातों का कुछ भी ज्ञान न था। किसी साधारण श्रेणी के क्षत्रिय नरेश के राज-दरबार को देखकर ही उन्होंने इन कहानियों की कल्पना कर ली है।

दुरसाजी निरे कवि ही न थे, योद्धा भी थे। कहते हैं कि सं० १६४० में जिस समय सम्राट अकबर ने सीसोदिया जगमाल की सहायता के लिये जोध-

पुर के रायसिंह चन्द्रसेनोत और डाँतीवाड़ा के स्वामी कोलीसिंह की अध्यक्षता में एक सेना सिरोही के राव सुरताण के विरुद्ध भेजी उस समय दुरसाजी भी रायसिंह के साथ थे। आबू के पास दताणी नामक स्थान पर भयंकर रक्तपात और भीषण कटाकटी हुई जिसमें रायसिंह, कोलीसिंह, जगमाल इत्यादि मारे गये और दुरसाजी के भी बहुत से घाव लगे। युद्ध के समाप्त होने पर राव सुरताण और उसके सरदार जब रण-भूमि का निरीक्षण कर रहे थे तब उन्होंने खून में लथपथ दुरसाजी को वहाँ पड़ा देखा और एक साधारण सिपाही समझकर इन्हें भी दूध पिलाना (मारना) चाहा। परन्तु तलवार को म्यान से निकालकर ज्यों ही एक आदमी इनकी तरफ बढ़ा त्योंही ये बोल उठे—"मुझे मत मारो मैं राजपूत नहीं हूँ, चारण हूँ"। इस पर इनसे कहा गया कि यदि तुम चारण हो तो इस देवड़ा समरा की प्रशंसा में जो अभी-अभी काल-कवलित हुआ है, कोई कविता कहो। इस पर दुरसाजी ने यह दोहा सुनाया—

> धर रावाँ जस डूगरों, ब्रद पोतों सत्र हाण।
> समरै मरण सुधारियौ चहुँ थोकाँ चहुवाण [२२] ॥

सुनकर राव सुरताण बहुत खुश हुआ। पालकी में बिठाकर वह इन्हें अपने साथ घर लिवा ले गया और इनके घावों के पट्टियाँ बँधवाई। कालान्तर में राव सुरताण ने इन्हें अपना पोलपात बना लिया और क्रोड़पसाव के साथ पेशुआ और साल नामक दो गाँव देकर इनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई।

दुरसाजी के दो स्त्रियाँ थीं जिनसे इनके चार पुत्र हुए— भारमलजी, जगमलजी, सादूलजी, और किसनाजी। ये प्रायः अपने सबसे छोटे बेटे किसनाजी के साथ पाँचेटिया में रहते थे। वहीं सं० १७१२ में इनका देहान्त हुआ।

दुरसाजी राजस्थान के बहुत लोकप्रिय और यशस्वी कवि हैं। कविता के नाम से जितना धन, जितना यश और जितना मान इनको मिला उतना राजस्थान के किसी कवि को आज तक प्राप्त नहीं हुआ। यदि किसी कवि की ख्याति को उसकी काव्योत्तमता का मापदंड माना जाय तो इस दृष्टि से दुरसाजी का स्थान निस्सन्देह बहुत ऊँचा है। इनके लिखे तीन ग्रंथ बतलाए जाते हैं

---

[२२] चौहाण समरा ने चारों तरफ से अपनी मृत्यु को सार्थक किया। अर्थात् उसने राव सुरताण की भूमि की रक्षा की, पहाड़ों की प्रशंसा करवाई अपने वंशजों के लिए सम्मान छोड़ गया और शत्रुओं को हानि पहुंचाई।

'विरुद छहत्तरी, 'किरतार बावनी' और 'श्री कुमार अज्जाजी नी भूचर मोरी नी गजगत'। इनमें 'विरुद छहत्तरी' तो वास्तव में इन्हीं की लिखी हुई हैं। परतु शेष दो ग्रन्थों को इनके रचे मानने का कोई दृढ आधार नहीं है। इन ग्रथों के अतिरिक्त इनके लिखे फुटकर गीत-कवित्त भी राजस्थान में बहुत प्रचलित हैं। दुरसाजी की भाषा विशुद्ध डिंगल का उत्कृष्ट नमूना है। कविता बहुत सरल एव वीरदर्प पूर्ण है और हिन्दूधर्म की महिमा से उद्भासित हैं। यदि इनकी कविता की तुलना डिंगल के किसी दूसरे कवि की कविता से हो सकती है तो वह है बीकानेर के राठाड पृथ्वीराज की कविता। वही बल, वैसी ही गति, उतनी ही प्रचडता इनकी कविता में भी पाई जाती हैं। उदाहरण देखिए—

अकबर गरब न आण, हींदू सह चाकर हुआ।
दाठा काई दिवॉण, करता लटका कटहडै ॥१॥
अकबर घोर अधार, ऊँघाणा हिन्दू अवर।
जागे जग-दातार, पोहरै राण प्रतापसी ॥२॥
अकबर समँद अथाह, तिहँ डूबा हिन्दू तुरक।
मेवाडो तिण मॉह, पोयण फूल प्रतापसी ॥३॥
अकबरियै इक वार, दागळ की सारी दुनी।
अणदागळ असवार, रहियौ राण प्रतापसी ॥४॥
लोपै हींदू लाज, सगपण रोपै तुरकसूँ।
आरज-कुळ री आज, पूँजी राण प्रतापसी ॥५॥
सुख-हित स्याळ-समाज, हींदू अकबर वस हुवा।
रोसीलो म्रगराज, पजै न राण प्रतापसी ॥६॥
अकबर पथर अनेक, के भूपत भेळा किया।
हाथ न लागा हेक, पारस राण प्रतापसी ॥७॥
ढिग अकबर दळ ढाण, अग-अग झगडे आथडै।
मग-मग पाडै माण, पग-पग राण प्रतापसी ॥८॥
अकबर हियै उचाट, रात-दिवस लागी रहै।
रजवट - वट - समराट, पाटप राण प्रतापसी[२३] ॥९॥

२३ दिवॉण=महाराणा। कटहडे=शाही कटहरे मे। ऊँघाणा=ऊँघने लग गये। अवर=अन्य। पौहरै=पहरे पर। पोयण=कमल। दागल=दागयुक्त। दुनी=दुनियाँ। सगपण रोपै=वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर। स्याल=सियार। रोसीलौ=क्रोधी। पजैन=परास्त नही होता। भेला=इकट्ठा। हेक=एक। ढिग=पास।

ये खरतर गच्छीय जैन कवि जैनाचार्य अभयधर्म के शिष्य थे। ये राजस्थान-निवासी थे, पर जन्म-स्थान का ठीक-ठीक पता नहीं है। इनका जन्म सं० १५८० के आस-पास हुआ था। अच्छे

कुशललाभ पंडित और सुकवि थे। इनके निम्नलिखित ग्रंथों का पता है—

(१) ढोला मारू री चौपई (२) माधवानल-कामकदला चौपई (३) तेज सार रास (४) अगड दत्त चौपई (५) पार्श्वनाथ स्तवन (६) गौड़ी छंद (७) नवकार छंद (८) भवानी छंद (९) पूज्य वाहण गीत (१०) जिन पालित-जिन रक्षित संधि गाथा और (११) पिंगल शिरोमणि।

इनमें 'ढोला मारू री-चौपई' और 'माधवानल-कामकदला' इनकी बहुत लोकप्रिय रचनाएँ हैं। पहले ग्रंथ में राजस्थान के सुप्रख्यात ग्रंथ 'ढोला मारू रा दूहा' को चौपई बंध किया गया है। यह जैसलमेर के रावळ मालदेव के युवराज हरराज के लिए लिखा गया था। इसका रचना-काल सं० १६१७ है। दूसरे ग्रंथ में माधवानल और कामकदला की प्रेम-कथा का वर्णन है।

कुशललाभ की भाषा गुजराती मिश्रित राजस्थानी है। रचना-शैली सरल और चित्ताकर्षक है। वर्णन वैचित्र्य द्वारा पाठक का ध्यान इधर-उधर न भटकने देने की जो क्षमता एक कहानीकार में होनी चाहिए वह इन में पूरी-पूरी पाई जाती है। इनकी रचना का नमूना लीजिए—

> अति अवगुण मारू मुंह तणा। माळवणी कहिया अति घणा॥
> ढोलो वात सुणी गहगहै। हँसि नै मारवणी प्रति कहै॥
> कहि मारवणी ताहरै देस। केहवा माणस केहवा वेस॥
> वळती मारवणी इम कहै। प्रिय आपै सगळी परि लहै॥
> मारवणी सूं मन री प्रीति। ढोलौ दाखै देसाँ रीति॥
> सघळ देस भला छ सही। पणि काय मारू उपम नहीं॥

ये निम्बार्क संप्रदाय के संत हरिव्यास देवजी के चेले थे। इनका जन्म जयपुर राज्यान्तर्गत एक पंचगौड ब्राह्मण-कुल में हुआ था। इनका रचना

अग=पर्वत। आथटै=लड़ता है। पाडै माण=मान मर्दन करता है। उचाट॥ खटका। रजवट=रजपूती। वट=मार्ग। समराट=सम्राट। पाटवी=सबसे बड़ा।

६ परशुराम काल स० १६७७ के आस पास है। निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्यों में इनकी गणना होती है। इनका लिखा 'परशुराम-सागर' प्रसिद्ध है। इसमें इनके २२ ग्रंथ और ७५० के लगभग फुटकर पद संगृहीत हैं। ग्रंथों के नाम ये हैं—

(१) साखी का जोडा (२) छंद का जोडा (३) सवैया दस अवतार का (४) रघुनाथ चरित (५) श्रीकृष्णचरित (६) सिंगार सुदामा-चरित (७) द्रौपदी का जोडा (८) छप्पय गज ग्राह का (९) प्रह्लाद-चरित (१०) अमर बोध लीला (११) नाम निधि लीला (१२) शौच-निषेधलीला (१३) नाथ-लीला (१४) निज रूप लीला (१५) श्री हरि लीला (१६) श्री निर्वाण लीला (१७) समझणी लीला (१८) तिथि लीला (१९) नद लीला (२०) नक्षत्र लीला (२१) श्री बावनी लीला (२२) विप्रमती (रचना काल स० १६७७)।

परशुराम जी की भाषा पिंगल है। इनकी रचना निर्गुणवादी और सगुणवादी दोनो विचार परपराओ से प्रभावित है। इन्होने कबीर की तरह निर्गुण ब्रह्म पर भी कविता की है और कृष्ण-भक्तो की तरह सगुण ब्रह्म पर भी। इनकी कविता अर्थ-गौरवपूर्ण और सामान्य रूप से सरस है। उदाहरण—

गुरु द्रोही जो आतमा, सो मम द्रोही जान।
परसा जो गुरु भक्त है, सो मम भक्त पिछान ॥१॥
सीप न निपजै सिंधु बिन, मुक्ताहल बिन सीप।
साधु न निपजै साधु बिन, परसुराम कहुँ दीप ॥२॥
गुन आयो तब जानिये, अवगुन नाम विलाय।
अरथ भला सो परसराँ, जो अनरथ बहि जाय ॥३॥
जानै कौन अगाध की, जाके आदि न अत।
हरि दरिया में परसुराँ, हम से जीव अनत ॥४॥
अपना कीया दूर कर, हरि का कीया देख।
मिटै न काहू के किये, परसराम हरि लेख ॥५॥
परसराम हरि नाम में, सब काहू की सीर।
कहि जाणें सोई कहै, अत्यज विप्र अहीर ॥६॥

ये दधवाडिया गोत्र के चारण चूंडा जी के बेटे थे। इनका जन्म स० १६१० और स० १६१५ के बीच में किसी समय हुआ था। इनके जन्म-

माधौदास स्थान का ठीक-ठीक पता नहीं है। परन्तु कहा जाता है कि ये जोधपुर राज्य के वलूँदा गाँव में पैदा हुए थे। एक बार जब ये अपने घर से कहीं बाहर गये हुए थे तब कुछ मुसलमान इनकी गौएँ चुरा ले गये। घर लौटने पर जब इनको इस बात का पता लगा तब इन्होंने अपने पुत्र के साथ उनका पीछा किया। लडाई हुई। ये मारे गये। यह घटना स० १६६० के आसपास की है।

ये जोधपुर के महाराजा सूरसिंह के आश्रित थ। बीकानेर के राठौड पृथ्वीराज से भी इनका अच्छा हेल-मेल था। एक बार पृथ्वीराज ने अपना ग्रथ 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' इनको सुनाया। सुनकर ये बहुत ख़ुश हुए और उसकी बहुत बडाई की। इसके बदले मे पृथ्वीराज ने भी इनकी प्रशसा मे यह दोहा लिखा—

> चूँडे चत्रभुज सेवियौ, ततफळ लागौ तास।
> चारण जीवौ चार जुग, मरै न माधौदास ॥

माधोदास बहुत उच्चकोटि के कवि और हरिभक्त थे। इन्होने "रामरासो" और "भाषा दसमस्कध" नामक दो ग्रथ बनाये। दसमस्कध का पता नहीं लगता। पर रामरासो की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं। सोलह सौ से अधिक छदो का यह एक बहुत बडा और उत्कृष्ट ग्रथ है। इसमे रामकथा का वर्णन है। इसकी भाषा डिंगल है। ग्रथ कवि की काव्य-प्रतिभा का परिचायक है। एक पद देखिए—

राग मारू

> भरथ या सब रघुनाथ बडाई,
> बधि कपि बालि सुग्रीव निवाजे केकधा ठकुराई ॥टेक॥
> मम बल हीण अलप साखाम्रिग निकुट सलित न कुदाई।
> राम-प्रताप स्यध सौ जोजन उलँघत पलक न लाई ॥१॥
> बौह जळ ही पाथर तळ बूडन तिल प्रमाण कण राई।
> लिखि श्री राम-नाम गिर डारत दधि सिर जात तिराई ॥२॥
> इद्रजीत बहि कुभ दसाणण सुरगह बदि छिड़ाई।
> सकल सग्राम म्रितक कपि स्यन्या अम्रित आणि जिवाई ॥३॥
> जा के चरण गहत सरणागति लक बभीषणि पाई।
> माधोदास वदति जस महिमा हणुमान रघुराई[२४] ॥४॥

[२४] केकधा = किष्किन्धा। सलित = नदी। स्यध = सिंधु। बौह = बहुत। दधि = उदधि बहि = भास्कर। दसाणण = रावण। स्यन्या = सेना।

दामकृत लक्ष्मणसेन-पद्मावती (स० १५१६), प्रतापसिंह कृत चंदकुवर री वात (स० १५४०), सिद्धसेन कृत विक्रम पचदड चौपई (स० १५५६), हीरकलश कृत सिंहासन बत्तीसी (स० १६३६), हेमरत्न कृत पद्मिनी चौपई (स० १६४५), भद्रसेन कृत चंदन मलियागिर री वात (स० १६७५), सुमति हंस कृत विनोदरस (स० १६६१) इत्यादि रचनाएँ भी इसी काल की हैं। और इनका प्रचार भी थोड़ा-बहुत पाया जाता है। परन्तु साहित्य की दृष्टि से इनका महत्त्व विशेष नहीं है।

फुटकर गीत, दोहा, कवित्त आदि के रचयिता इस काल में इतने हो गये हैं कि उनके नाम गिनाना ही कठिन है। कुछ बहुत प्रसिद्ध नाम ये हैं महाराणा कुंभा (स० १४६०-१५२५) पसाइत (स० १४६०), बारूजी (स० १५२०), चानण (स० १५४०), चौहथ (स० १५४०) साँवळ (स० १५६०), महाराणा उदयसिंह (स० १५६४-१६२८), महाराणा प्रतापसिंह (स० १६२८-५३), सादूळ (स० १६००) महाराजा रायसिंह (स० १६२८-६८) देवौ (स० १६३२), महाराजा मानसिंह (स० १६५६-७१) महाराणा अमरसिंह (स० १६५३ ७६), पीरजी (स० १६४०), रगरेलो (स० १६४०), सूरचंद (स० १६४०), लालादे (स० १६४०), शकर (स० १६४५), चाँपादे (स० १६५०), गेपौ (स० १६५६), लक्खाजी (स० १६६०), हरनाथ (स० १६६०), हरपाल (स० १६६०), नरूजी (स० १६६०), किशनदास (स० १६६०), हरसूर (स० १६६२), डूगरसिंह (स० १६६२), नेता (स० १६६२), हरपौ (स० १६६५), मोतीसर चतरो (स० १६७०), लीलाधर (स० १६७६), चतुर्भुज सहाय (स० १६७७), और देदौ (स० १६८०)।

चौथा प्रकरण

उत्तर मध्यकाल (सं०१७००-१९००)

लगभग स०१७०० में राजस्थानी साहित्य का उत्तर मध्यकाल प्रारंभ होता है जो सं० १९०० तक चलता है। इस काल में डिंगल के साथ-साथ पिंगल की भी अच्छी उन्नति हुई और दोनों भाषाओं में उच्चकोटि के ग्रन्थ रचे गए। इस समय के अधिकांश कवियों का प्रिय विषय था, कृष्ण। राधा-कृष्ण की प्रेम-लीलाओं को लेकर कवियों ने छोटे-मोटे बहुत से शृंगारात्मक ग्रंथ तथा फुटकर पद, कवित्त-सवैया आदि बनाए जो बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुए। अनेक रीति-ग्रन्थों का निर्माण भी इसी युग में हुआ। कुछ कवियों ने वीररस में भी उत्कृष्ट रचनाएँ कीं और कुछ कवि ऐसे भी पैदा हुए जिनकी तुलना अन्य भारतीय भाषाओं के किसी भी बड़े से बड़े कवि के साथ की जा सकती है। इनमें बिहारीलाल, वृन्द और नागरीदास के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में माधौदास दधवाड़िया ने रामरासौ लिखकर रासो लिखने की जो परिपाटी राजस्थान में कायम की थी उसको इस युग में बहुत बल मिला। और खुँमाण रासौ, पृथ्वीराज रासौ, हमीर रासौ, राणा रासौ इत्यादि अनेक रासो ग्रंथ उस शैली पर लिखे गए। पूर्व मध्यकाल में चारण आदि जातियों के कवि अधिकतर फुटकर गीत आदि लिखने में व्यस्त थे, पर इस काल में उन्होंने भी अपना ढंग बदला और फुटकर रचनाओं के अतिरिक्त राजरूपक,[1] सूरजप्रकास इत्यादि के जैसे प्रशंसनीय ग्रन्थों का निर्माण किया जो इतिहास की दृष्टि से महत्व पूर्ण और सुपाठ्य हैं।

सराश, भाषा और साहित्य दोनों ही दृष्टियों से इस काल में राजस्थानी साहित्य की गौरव वृद्धि हुई और इस आधार पर यदि इस युग को राजस्थानी साहित्य का 'सुवर्ण काल' भी कह दिया जाय तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी।

[1] ये जोधपुरके महाराजा गजसिंह के द्वितीय पुत्र थे। इनका जन्म सं० १६८३ की माघ वदि ४ को बुरहानपुर (दक्षिण) में हुआ था। इतिहास

जसवतसिंह

प्रसिद्ध अमरसिंह राठौड, जिन्होंने बादशाह शाहजहाँ की भरी सभा में बख्शी सलाबतखाँ को मारा था, इनके बडे भाई थे। स्वेच्छाचारी एव उद्धत प्रकृति होने के कारण महाराजा गजसिंह ने अमरसिंह को देश निकाला दे दिया था। इसलिए उनके बाद जसवतसिंह जोधपुर की गद्दी पर बैठे। राज्याभिषेक के समय इनकी अवस्था १२ वर्ष की थी। अत बादशाह शाहजहाँ ने शाही मनसबदार आसोप के ठाकुर कूँपावत राजसिंह को इनकी शिक्षा तथा मारवाड की देख-भाल के लिए नियुक्त किया। जसवतसिंह बडे वीर, साहसी और रणकुशल व्यक्ति थे। मुगल सिंहासन को प्राप्त करने के लिए जब शाहजहाँ के पुत्रो में झगडा हुआ, इन्होने सम्राट के ज्येष्ठ पुत्र दारा का पक्ष लिया था। क्योकि राज्य का वास्तविक अधिकारी वही था। इसलिए औरङ्गजेब इनसे बहुत कुढता था। इनका बिगाड तो वह कुछ न सका, पर अपने राज्य से दूर रखने के लिए उसने इन्हे काबुल का गवर्नर बनाकर उधर भेज दिया। वहाँ स०१७३५ की पोष वदि १० को इन्होने अपनी देह-लीला समाप्त की। इनकी मृत्यु का समाचार जब औरङ्गजेब के पास पहुँचा तब उसके आनद का पारावार न रहा और हर्ष से उछलकर उसने कहा

"दर्वाजए कुफ्र शिकस्त"[1]

महाराजा जसवन्तसिंह का साहित्यिक जीवन उनके ऐतिहासिक और राजनैतिक जीवन से किसी अश में कम महत्वपूर्ण न था। ये डिगल-पिगल के पूर्ण ज्ञाता एव मर्मज्ञ कवि थे और कवियो तथा विद्वानो का बहुत आदर करते थे। इनके रचे भाषा-ग्रथो के नाम ये हैं —

(१) भाषाभूषण (२) सिद्धान्तबोध (३) सिद्धान्तसार (४) अनुभवप्रकाश (५) अपरोक्षसिद्धान्त (६) आनदविलास (७) चद्र-प्रबोध (नाटक) २ (८) पूर्ली जसवन्त सवाद और (६) इच्छा-विवेक।

जसवन्तसिंह हिन्दी साहित्य में अलकारो के एक विशिष्ट आचार्य समझे जाते हैं। यही एक ऐसे महाशय थे जो यथार्थ में आचार्य रूप से साहित्य क्षेत्र में आए। इनके तत्वज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थ विशेष लोकप्रिय नहीं हैं, परन्तु भाषाभूषण का काव्य-प्रेमियो में बडा आदर है। यह ग्रन्थ जयदेवकृत चन्द्रालोक की छाया तथा शैली पर लिखा गया है। पर कवि ने अपने

१ आज धर्म-विरोध का दरवाजा टूट गया।

२ यह संस्कृत के प्रबोध चन्द्रोदय नामक नाटकका अनुवाद है

मस्तिष्क तथा दूसरे अलकार ग्रन्थों से भी सहायता ली है। यह एक उच्च कोटि का अलकार-ग्रथ है। इसमें २१३ दोहे हैं। भाषाभूषण की सबसे बड़ी विशेषता है, वर्णन की सक्षिप्तता। प्राय. एक ही दोहे में अलकार का लक्षण एव उदाहरण देकर कवि ने अपने अलकार विषयक ज्ञान और काव्य-पटुता का अच्छा परिचय दिया है। केशवदास ने अपने ग्रथ कविप्रिया में उपमा, उत्प्रेक्षा, यमकादि के कई भेद-उपभेद कहकर विषय को बहुत जटिल बना दिया है। इसी लिए उसका प्रचार भी बहुत कम है। परन्तु भेदोपभेदो के पचडे में न पडकर जसवन्तसिंह ने अलकारों के मुख्याङ्गों को स्पष्टत समझाया है और वह भी अत्यन्त सरल एव बोधगम्य भाषा में। ग्रथ के आदि में नायक-नायिका भेद तथा रसो पर भी थोडा-सा प्रकाश डाला गया है। पर केशव कृत रसिक-प्रिया, मतिराम कृत रसराज, पद्माकर कृत जगद्विनोद, बेनी प्रवीन कृत रसतरङ्ग इत्यादि इस विषय के दूसरे ग्रन्थो को देखते हुए वह प्राय नहीं के बराबर है। इनकी कविता देखिए—

हीनि असगति काज अरु, कारन न्यारे ठाम।
और ठौर ही कीजिए, और ठौर को काम॥
और काज आरम्भिए औरे करिए दौर।
कोयल मदमाती भई झूलत अम्बा मौर॥
तेरे अरि की अगना, तिलक लगायो पानि।
मोह मिटायो नाहीं प्रभु, मोह लगायो आनि॥
देह नाँही इन्द्री नाँही मन नाँही बुधि नाँही
अहकार चित्त नाँही देखवौ नहीं तहाँ।
करिवौ कछु न जामें सुनिबै की बात नाँही
धेय नाँही ध्यान नाही ध्याताहू नहीं जहाँ॥
गुरु और सिष्य नाँही नाम रूप विरूप नाँही
उतपत्ति प्रलै नाँही बध मोक्ष है कहाँ।
वचन को विषै नाँही सास्त्र और वेद नाँही
और कहा कहौं उहा ग्यानहू नहीं तहाँ॥

कविवर बिहारीलाल माथुर चौबे थे। इनका जन्म स० १६०० के लगभग ग्वालियर राज्य के बसुवा गोविंदपुर ग्राम में हुआ था। इनकी बाल्यावस्था बुदेलखड में व्यतीत हुई थी और युवावस्था में कुछ दिन अपनी ससुराल मथुरा में भी

बिहारी

रहे थे। ये जयपुर के मिर्जा राजा जयसिंह के दरबारी कवि थे जिनकी ओर से प्रति दोहे पर इन्हें एक अशर्फी मिला करती थी। इनका देहान्त सं० १७२० में हुआ था।

अपने जीवन-काल में बिहारीलाल ने सिर्फ एक ही ग्रन्थ, बिहारी सतसई, बनाया जो हिन्दी साहित्य की स्थायी सम्पत्ति और काव्यकला का उत्कृष्ट नमूना माना जाता है। यह एक अत्यन्त लोकप्रिय रचना है। इसकी लोकप्रियता का अनुमान इसी से हो सकता है कि इस पर ६० के लगभग टीकाएँ तो बन चुकी हैं और फिर भी यह क्रम जारी है। इसमें ७१३ दोहे हैं। इसकी भाषा ब्रजभाषा है जो बहुत ललित प्रौढ़ एवं परिमार्जित है। बिहारी की कविता का मुख्य विषय है शृंगार। परन्तु नीति भक्ति इत्यादि अन्य विषयों पर भी इन्होंने कुछ कहा है और बहुत अच्छे ढंग से कहा है। अपूर्व काव्य कौशल और अद्वितीय माधुर्य बिहारी की कविता के प्रधान गुण हैं। और गहरी तो वह इतनी है कि ज्यों ज्यों हम उसकी गहराई का थाह लेने की कोशिश करते हैं त्यों अधिकाधिक गहरी होती जाती है। विशेषकर नायक-नायिकाओं के मनोभावों का विश्लेषण करने में बिहारी ने कमाल कर दिया है। इस फन में अंग्रेज कवि शेक्सपियर बहुत निपुण समझे गए हैं। अतः उनकी तुलना में बिहारी का काव्य-चमत्कार देखिए—

रोजेलिंड की सखी सीलिया उसके प्रेम-पात्र ऑरलैंडो से मिलकर वापस आती है। उस समय प्रिय-सन्देश के सुनने में आतुर रोजेलिंड पागल-सी हो जाती है और सीलिया से कहती है कि यदि नायक से मिलने के सब समाचार उसने फौरन ही न कहे तो वह उससे इतने प्रश्न करेगी कि जिनसे सारा उत्तरी सागर भर जायगा। पर उसकी उत्सुकता को बढ़ाने के लिए सीलिया फिर भी मौन ही रहती है। इस पर रोजेलिंड प्रश्नों की झड़ी लगा देती है—

"What did he when thou saw'st him? What said he? Wherein went he? What makes he here? Did he ask for me? Where remains he? How parted he with thee? And when shalt thou see him again? Answer me in one word."[3]

3 As you Like It Act III, Sc. II

ऐसी ही दुविधावस्था मे विहारी की नायिका भी है। नायिका, राधा, की सहेली कृष्ण से मिलकर घर आती है। इस पर विहारीलाल लिखते है—

> फिरि फिरि बूझति कहि कहा, कह्यौ साँवरे गात ।
> कहा करत देखे कहाँ, अली चली क्यौं बात ॥

प्रसग दोनो का एक है। विहारी की तरह शेक्सपियर ने भी स्त्री-हृदय के उस स्थल पर हाथ डाला है जो सबसे कमजोर है, पर जिस समय रोजेलिंड के मुँह से शेक्सपियर प्रश्न करवाते है, उनकी कल्पना-शक्ति कुन्द हो जाती है और उनकी कलम से कुछ ऐसे प्रश्न निकलते है जिनमे रस, चमत्कार वाक्विदग्धता आदि कुछ भी नही है। वस्तुत शेक्सपियर के ये प्रश्न परीक्षा पत्र म दिए हुए प्रश्नो के सदृश जटिल और शुष्क प्रतीत होते है। इसके विपरीत विहारी नारी हृदय को टटोलकर बाहर निकल आते है और सारी बात को बहुत सक्षिप्त, बहुत हृदयग्राही ढग मे प्रस्तुत करते है जिसमे व्यग्य है, व्यजना है, और है मार्मिक भाव। नि सन्देह अगरेज कवि के प्रश्न सख्या मे अधिक है। पर सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न को तो वे फिर भी भूल ही गए है जिसका उल्लेख विहारी ने अपने दोहे के अन्तिम चरण मे किया है, 'अली चली क्यो बात'। हे सखी ! मेरी बात चली कैसे ? मेरा प्रसग आया क्या ? सच पूछिए तो यही कवि-हृदय की मार्मिक अनुभूति है, काव्य-कौशल की अन्तिम सीमा है।

सतसई के अतिरिक्त विहारी के रचे तीन कवित्त भी हाल ही मे उपलब्ध हुए है। सतसई मे से कुछ दोहे और ये तीनो कवित्त यहाँ दिए जाते है—

दोहा

> मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ ।
> जा तन की झाँई परै, स्यामु हरित-दुति होइ ॥१॥
> अजौ तरयौना ही रह्यो, श्रुति सेवत इक-रग ।
> नाक-बास बेसरि लह्यौ, बसि मुकुतन कै सग ॥२॥
> बेधक अनियारे नयन, बेधत करि न निषेधु ।
> बरबट बेधत मो हियौ, तो नासा कौ बेधु ॥३॥
> नेहु न नैननु कौं कछू, उपजी बड़ी बलाइ ।
> नीर-भरे नित प्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाइ ॥४॥

नहिं परागु नहिं मधुर मधु, नहिं विकासु इहिं काल।
अली कली ही सौं बँध्यो, आगें कौन हवाल ॥५॥
कहा लड़ैते दृग करे, परे लाल बेहाल।
कहुँ मुरली कहुँ पीत पट, कहूँ मुकुट बनमाल ॥६॥
हौं ही बौरी बिरह-बस कै बौरौ सब गाँव।
कहा जानि ए कहत हैं ससिहिं सीतकर नाँव ॥७॥
सुनत पथिक-मुँह माह निसि चलति लुवैं उहि गाम।
बिनु बूझैं बिनु हीं कहैं जियति बिचारी बाम ॥८॥
स्वारथु सुकृतु न श्रमु वृथा देखि बिहग बिचारि।
बाज पराऐं पानि परि तूं पच्छीनु न मारि ॥९॥
दृग उरझत टूटत कुटुम जुरत चतुर-चित प्रीति।
परति गाँठि दुरजन हियैं दई नई यह रीति ॥१०॥
वे न इहाँ नागर बढ़ी, जिन आदर तो आब।
फूल्यौ अनफूल्यो भयो गँवई गाँव गुलाब ॥११॥
बतरस-लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करैं भौंहनु हँसै दैन कहैं नटि जाइ ॥१२॥
बिरह-जरी लखि जीगननु कह्यौ न उहि कै बार।
अरी आउ भजि भीतरी, बरसत आजु अँगार ॥१३॥
पटु पाँखै भखु काँकरे, सपर परेई संग।
सुखी परेवा पुहुमि मे, एके तुहीं विहग ॥१४॥
चाह भरी अति रस भरी, बिरह भरी सब बात।
कोरि सँदेसे दुहुनु के, चले पौरि लौं जात ॥१५॥
कर लै सूँघि सराहि हूँ, रहैं सबै गहि मौनु।
गंधी अंध गुलाब कौ गँवई गाहकु कौनु ॥१६॥
कर लै चूमि चढ़ाई सिर, उर लगाइ भुज भेंटि।
लहि पाती पिय की लखति बाँचति धरति समेटि ॥१७॥
अनियारे दीरघ दृगनु, किती न तरुनि समान।
वह चितवनि औरै कछू, जिहिं बस होत सुजान ॥१८॥

कवित्त

महाराजा मानसिंह पूरब पठान मारे
श्रोणित की सरिता अजौं न सिमटति है।

सुकवि "बिहारी" अजों उठत हैं कबंध कूद
अजौं लौं रणांत रुणाही ना मिटत है ॥
अजौं लौं पिसाचन की चहेलन तें चौंकि चौंकि
सचौं सबदा की छतियाँ लिपटत हैं ।
आजों लग आढे हैं कपालनी आली आली खाले
अजों लग कालौ मुख लाली ना मिटत हैं ॥१॥

बाटे राग गाढे गहि दाबे दुहु डाटन सी
राड गहे गाड चक्र चूरन चबायो हैं ।
बारयो बडवानलन वारि मारयो वारिधन
रह्यो वारि नाम नल-जन्तुहू न खायो है ॥
कहत "बिहारी" केसी जार दिन चारिक तें
आज कालि तू जु द्विजराज कहवायो है ।
ताहि न तनक दाप क्यों न दूतराहि चाँद
एते पर शंकु ईश शीश लें चढायो हैं ॥२॥

जान्ह सी जगमगात भौन में मयंकमुखी
चाँदनी सी चहुँ ओर रूप उथलति हैं ।
चतुर 'बिहारी' जू तिहारा मोह मोची कहू
हाँसी को हँसी तो फूलमाल सी गुथति हैं ॥
दोऊ कर कटि पै धरे तें ऐसी राजति हे
जैसी मेरी मति कछु उपमा कहति हे ।
त्रिवली की डोरी रोम राजि किधौं रस रही
नाभि की दहा ही मानो मन को मथति हे ॥३॥

जयपुर राज्य के प्रसिद्ध करद संस्थान सीकर के इलाके में परगना फतहपुर है। यहाँ वर्तमान शेखावत राजवंश से पहले क़ायमखानी

जान

नवाबों का शासन था। क़ायमखानी वंश का मूल पुरुष चौहान करमसी था जिसको फीरोजशाह तुगलक के ओहदेदार सैयद नासिर ने सं० १४४० में मुसलमान बनाया और उसका नाम बदलकर कायमखाँ रखा। जान फतहपुर के आठवें कायमखानी नवाब थे। इनका असली नाम न्यामतखाँ था। कविता में जान लिखा करते थे। इनके पिता का नाम अलफखाँ था। अपने पिता के पाँच पुत्रों में ये दूसरे थे। इनका रचना काल सं० १६७१-१७२१ है।

जान अरबी, फारसी, संस्कृत आदि भाषाओं के सुज्ञाता, अच्छे इतिहासज्ञ और आशु कवि थे। इन्होंने कुल ७५ ग्रंथ बनाए जिनके नाम ये हैं—

(१) मदनविनोद (२) ज्ञान दीप (३) रसमंजरी (४) अलफखाँ की पैड़ी (५) कायम रासो (६) पुहुप बरखा (७) कवलावती कथा (८) बरवा ग्रंथ (९) छबि सागर (१०) कलावती कथा (११) छीता की कथा (१२) रूपमंजरी (१३) मोहनी (१४) चंदसेन राजा सीलनिधान की कथा (१५) अरदेसर पातिसाह की कथा (१६) कामरानी या पीतमदास की कथा (१७) पाहन परिच्छा (१८) शृंगार शतक (१९) भाव शतक (२०) विरह शतक (२१) बलूकिया बिरही की कथा (२२) तमीम अनसारी की कथा (२३) कथा कलंदर की (२४) कथा निर्मल की (२५) सतवंती की कथा (२६) शीलवती की कथा (२७) कुलवंती की कथा (२८) खिजरखाँ साहिजादा व देवल देवी (२९) कनकावती की कथा (३०) कौतूहली की कथा (३१) कथा सुभटराय की (३२) बुधिसागर (३३) कामलता कथा (३४) चेतन नामा (३५) सिख ग्रंथ (३६) सुधा सिन्धु ग्रंथ (३७) बुधिदायक (३८) बुधिदीप (३९) बुवंट नामा (४०) दरसनामा (४१) अलक नामा (४२) दरसन नामा (४३) बारह मासा (४४) मन नामा (४५) वर्न नामा (४६) बाँदी नामा (४७) बाज नामा (४८) कबूतर नामा (४९) गूढ़ ग्रंथ (५०) देसावली (५१) रस कोष (५२) उत्तम सब्द (५३) संख्या सागर (५४) वैद्यक सिख शतपद (५५) शृंगार तिलक (५६) प्रेमसागर (५७) वियोग सागर (५८) षट् ऋतु पवंगम छंद (५९) रस तरंगिनी (६०) रतन मंजरी (६१) नल-दमयंती (६२) पसुनामा (६३) मानविनोद (६४) बिरही का मनोरथ (६५) नफरनामा (६६) ५२ नामा (६७) भाव कल्लोल (६८) कदर्प कल्लोल (६९) नाम माला—अनेकार्थी (७०) रतनावती (७१) सुधासागर (७२) श्वास संग्रह (७३) लैला मजनू (७४) कविवल्लभ (७५) वैद्यक मनि।

जान कवि ने प्रेमाख्यान अधिक लिखे हैं। इसलिए इनकी रचना में शृंगार-रस का प्राधान्य है। इनकी भाषा पिंगल है। कविता सरस और भाव-पूर्ण है। उदाहरण—

कंत कह्यौ हौं बिदेस कों जैहों सुने तिय को उपज्यौ दुखु भारौ।
झाकि रही नभ वोरि किसोदरी हा हा दई करि हौं जिन न्यारौ॥
दौरि सखी गई कुंज लता मधि बोलि है कोकिल की उनिहारौ।
गौन निबारन को कियौ कारन जान भगत रहे जिन प्यारौ॥

नैणसी

मुहणोत नैणसी ओसवाल महाजन थे। इनका जन्म सं० १६६७ में हुआ था। इनके पिता का नाम जयमल, पितामह का जैसा (जयशाह) और प्रपितामह का अचला था। इनके तीन भाई और थे, सुन्दरदास, आसकरण और नरसिंहदास। नैणसी बड़े वीर, शासन-पटु और राजभक्त पुरुष थे। इन गुणों के कारण जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह (प्रथम) ने इन्हें अपने राज्य का दीवान बनाया था। सं० १७२३ में महाराजा जसवंतसिंह औरंगाबाद में थे और नैणसी तथा उनका छोटा भाई सुंदरदास जो महाराजा के खानगी दीवान थे, उनके साथ थे। किसी कारण वश महाराजा दोनों भाइयों से रुष्ट हो गए और दोनों को कैद में डाल दिया। परन्तु दो वर्ष बाद एक लाख रुपया दंड लगाकर दोनों को छोड़ दिया। लेकिन उन्होंने एक पैसा भी देना स्वीकार नहीं किया। इस विषय के दो दोहे राजस्थान में अब तक प्रसिद्ध हैं—

> लाख लखारां नीपजे, बड़ पीपळ री साख।
> नटियौ मूंता नैणसी, तांबो देण तलाक ॥१॥
> लेसी पीपळ लाख, लाख लखारां लावसी।
> तांबो देण तलाक, नटिया सुन्दर नैणसी[८] ॥२॥

इस पर महाराजा ने इन्हें वापस कैद कर लिया और रुपयों के लिए सख्तियाँ करने लगे। फिर दोनों भाई औरंगाबाद से जोधपुर भेज दिए गए जहाँ जेलखाने के छोटे-छोटे कर्मचारियों का दुर्व्यवहार इनके लिए असह्य हो उठा। अपमान सहन करने की अपेक्षा मरजाना अच्छा समझ दोनों भाइयों ने अंत में आत्महत्या करना तय किया और सं० १७२७ भादों वदि १३ को अपने पेट में कटार भोंककर दोनों सदैव के लिए सो गए।

नैणसी जैसे आत्माभिमानी और वीर प्रकृति के पुरुष थे वैसे ही विद्यानुरागी और इतिहास-प्रेमी भी थे। स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसाद ने इन्हें राजपूताने का अबुलफज़्ल कहा है, जो बहुत ही उचित है। इनका मुख्य ऐतिहासिक ग्रंथ 'मूता नैणसी री ख्यात' नाम से प्रसिद्ध है। यह रॉयल अठ

८—लाख लखेरों के यहाँ और बड़-पीपल की टहनियों पर मिलती है, (यह कह कर) महता नैणसी तांबे का एक पैसा भी देने से इनकार कर गया ॥१॥ लाख पीपल पर से या लखेरों के यहाँ से लाजिएगा, (यह कहकर) सुन्दरदास और नैणसी तांबे का एक पैसा भी देने में इनकार कर गए ॥२॥

पेजी साइज के एक हजार से अधिक पृष्ठों का बहुत बड़ा ग्रथ है। इसमें राजस्थान के विभिन्न राज्यो के इतिहास के अतिरिक्त गुजरात, काठियावाड कच्छ, बघेलखड, बुदेलखड और मध्य भारत के इतिहास पर भी अच्छा प्रकाश डाला गया है। इनका दूसरा ग्रथ जोधपुर राज्य का गजेटियर है। इसमें जाधपुर राज्य के परगनो का बडे विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। ये दोना ग्रथ इतिहास के अमूल्य रत्न और अपने रग ढग के अप्रतिम हैं।

उच्च कोटि के इतिहासज्ञ होने के साथ-साथ नैणसी डिंगल भाषा के सिद्धहस्त गद्य लेखक भी थे यह बात इनकी उक्त रचनाओं से साफ झलकती है। इनकी भाषा बहुत सरल, परिमार्जित और चलती हुई है। वर्णन-शैली सुगठित एव रोचक है। नमूने के तौर पर इनकी ख्यात में से थोडा-सा अश यहाँ उद्धृत किया जाता है—

'डूगरपुर सहर, ता उगवण नै दिषण बेउ तरफ भाखर छै। खोहल माहे सहर मगरा री खभ बसीयो छै। छोटो-सो कोट छै। उठै रावळ रा घर छ। गॉव माहे देहुरा घणा छै। चोहटा घणा पिण हाटे उसर्डी पीठ को नहीं। डूगरपुर थी उत्तर दिस नु रावळ पूजा रौ करायौ गोवरधननाथ रौ बड़ो देहरो छै। गॉव सूॅ ईसान कूॅण मैं रावळ गैपा रौ करायौ बड़ो तळाब छै। सहर रै पाछै भाखर छै। सिकार रौ आहुखॉनो पिण उण हीज भाखर ऊपर छै। घणी दूर आहूखानै रै वास्तै भींत छै। सहर सूॅ कोस पूण मैं गॉगर्डी नदी छै। तिण रै टाहै रावळ पूजा रौ करायौ बड़ो राजबाग छै"।[५]

नरहरिदास ✓ ये रोहड़िया शाखा के चारण लक्खाजी के पुत्र थे। इनका जन्म स १६४८ और देहान्त स० १७३३ मे हुआ था। ये जोधपुर नरेश महाराजा गजसिंह के आश्रित थे जिन्होने इन्हे टहला नामक गॉव प्रदान किया था। ये दो भाई थे। छोटे भाई का नाम गिरधर दास था। इनके कोई सन्तान नहीं थी। इस सम्बन्ध मे इनकी भावज ने इन्हे एक दिन जब ताना दिया तब क्रुद्ध होकर इन्होंने उससे कहा कि सन्तान तो मेरे नहीं हैं जिससे मेरे मरने के पश्चात मेरे वश का नाम दुनियाँ में रह सके, पर

५—उगवण नै दिषण=पूरब और दक्खिन। बेउ=दोनों। भाखर=पहाड खोहल माहे=बीच मे। मगरा=पर्वत। खभ=ढालू। उसर्डी=वैसी, उतना। पीठ=व्यापार। आहूखाना=शिकारगाह। उण हीज=उसी। भींत=दीवार। पूण=पौन टाहै=तट पर। घणा=बहुत

विधानाने मझे कविता करने की अलौकिक शक्ति प्रदान की है जिसके द्वारा मैं अपने नाम को सदैव के लिए ससार मे अमर कर दूँगा। इसी प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए इन्होंने 'अवतार-चरित्र' की रचना की, जिससे अभी तक इनका नाम चला आता है।

अवतार चरित्र ज्ञान सागर प्रेस बम्बई मे प्रकाशित हो चुका है, जो बहुत अशुद्ध है। इसमें ५२० पृष्ठ हैं। इनमें ३२० पृष्ठों मे रामावतार का और शेष मे कृष्णावतार, कपिलावतार, बुद्धावतार आदि का सक्षिप्त वर्णन है। ग्रथ की भाषा पिंगल है जो बहुत सरल एव व्यवस्थित है। कथा-प्रसग के अनुकूल छदों को चुनने मे भी कवि ने अच्छी पटुता प्रदर्शित की है, पर नरहरिदास के भावों मे मौलिकता का प्राय. अभाव सा है। मालूम होता है, तुलसी के राम चरित मानस तथा केशव की रामचन्द्रिका को सामने रखकर कवि ने इस ग्रन्थ की रचना की है। क्या रचना-पद्धति, क्या घटनाक्रम, क्या भावव्यजना और क्या उक्ति-चमत्कार सभी रामचरित मानस से मिलते-जुलते हैं। जहाँ कहीं रामचरित मानस मे विभिन्नता है, वहाँ केशव की रामचन्द्रिका का अनुकरण किया गया है।

चाप चढावन को गनै, सकै न अवनि छुडाइ।
भई उर्व्वी निर्वी अब, कह्यौ जनक अकुलाइ॥
जो जानत निर्वीर भुव, तो न करित पन एहु।
पावक प्रजलत गेह अब, तब कहँ पट्यत मेहु॥
रही कुँवारी कन्यका, लिखत विरच ललार।
पन कीनौ जो परिहरौ, तो उपहास ससार॥

—अवतार चरित्र

रहा चढाउब तोरब भाई, तिल भरि भूमि न सकै छुडाई॥
अब जनि कोउ माखै भट मानी, वीर विहीन मही मैं जानी॥
तजहु आस निज निज गृह जाहू, लिखा न विधि वैदेहि विवाहू
सुकृत जाय जो प्रण परिहरऊँ, कुँवरि कुँवारि रहै का करऊँ
जे जननेऊँ बिन भट महि भाई, तौ प्रण करि करतेऊँ न हँसाई॥

—रामचरित मानस

कहि पूछत तुम मुद्रिका, होत मौन इहिं हेत।
नाम विपर्जय आपनै, तिहिं उत्तर नहिं देत॥

—अवतार चरित्र

तुम पूछत कहि मुद्रिके मौन होत यहि नाम।
कंकन की पदवी दई तुम बिनु या कहँ राम।

—राम चन्द्रिका

कहते हैं कि अवतार-चरित्र के अतिरिक्त नरहरिदास ने १६-१७ ग्रंथ और भी बनाए थे पर उन सब का पता नहीं लगता। केवल नीचे लिखे छः ग्रन्थों के नामों का पता है—

(१) दशम स्कन्ध भाषा (२) रामचरित्र कथा (३) अहिल्या पूर्व प्रसंग (४) वाणी (५) नरसिंह अवतार कथा (६) अमरसिंहजी रा दूहा। इनकी कविता देखिए.—

जा दिन आन उपाद थके सब, ता दिन भाद महाद करैगो।
शोक अलोक त्रिलोकि त्रिलोक, रक्षा भव पूरसु दूरि टरैगो॥
जैसे चढ गजराज की पीठि, त्यों कूकर बादि हिं भूमि मरैगो।
जो करुणामय स्याम कृपा तो, कहा जग की अकृपा बिगरैगो॥

कटक कपूर भए कौतुक भयानक मे,
हार अहि भए अँधियार भयो आरसौ।
नाहर मे नूपुर पहार म पहर भए
सेज समसान भए, भूसन सुभारसो॥
आक सो तवार सिरवाइ सी सुवास सब,
चीर भए कौंछी से, अंजन अंगार सो।
विपति दुसह ऐसी कपि अवधेस विना
प्रान भए पाहुने से प्रेम भौ प्रहार सौ॥

कल्याणदास कल्याणदास रचित 'गुण गोविंद' नामक एक ग्रंथ का पता हाल ही में लगा है। इसके अन्तिम दोहे में इन्होंने थोडा-सा अपना व्यक्तिगत परिचय भी दिया है जिससे सूचित होता है कि ये मेवाड राज्य के समेळा गाँव के निवासी लाखणोत शाखा के भाट बाघजी के बेटे थे—

वास समैळे बाघ तण, लाखणौत कालयाण।
गायो श्री गोविंद गुण, पाए भगत प्रमाण॥

गुण-गोविंद डिंगल भाषा का ग्रंथ है। सं० १७२५ की लिखी हुई इसकी एक हस्तलिखित प्रति उदयपुर के सरस्वती भंडार में सुरक्षित है। ग्रंथ सं० १७०० में रचा गया था—

सतरा सै संवतॉ वरीष पहिले मे वखाणॉ ।
मास चैत सुदी दसमी पुष्य रविवार प्रमाणॉ ॥

इसमें भगवान श्री रामचन्द्र और श्री कृष्णचन्द्र की विविध लीलाओं का बहुत सरस और भक्ति भावपूर्ण वर्णन है जो १६७ छंदो मे समाप्त हुआ है। भाषा सरल और विषयानुकूल है। ग्रंथ साहित्य की दृष्टि से अत्युत्तम और श्लाघनीय है। रचना का नमूना यह है—

गज आनन गज करन, दंत गज गजहि सुडाळ ।
बदन सु ललित कपोल, चोळ चख लोल सुढाळ ॥
रव रव लव कदव, अम्ब मदमत्त मत्तसरि ।
कर मोदक उद्र लव, करत प्रणाम क्रपा करि ॥
गुणदधी गुणनिधी गणपती, अछर भॅडार उधारि कबु ।
आरभ परम लीला इहव, सो प्रारभ तुव सरण अबु ॥

ये सीलगा खॉप के चारण मेवाड राज्य के झाडोली गॉव के निवासी थे।

साँईदान

इनके पिता का नाम मेहाजळ था। आविर्भाव-काल सं० १७०६ है। मिश्रबंधु-विनोद मे इनका रचना-काल सं० ११६१ बतलाया गया है जो अशुद्ध है[५]। इन्होंने वृष्टि-विज्ञान का एक ग्रन्थ बनाया जिसका नाम 'समतसार' है। ग्रन्थ अपूर्ण है। इसमें २७७ पद्य हैं। मुख्य छंद दोहा, पद्धरि और छप्पय हैं। ग्रन्थारम्भ मे गणेश, सरस्वती और चण्डिका की स्तुति की गई है। फिर मुख्य विषय शुरू होता है। ग्रंथ शिव-पार्वतीसंवाद के रूप मे है। पार्वती प्रश्न करती है। शिवजी उसका उत्तर देते हैं। रचना बहुत साधारण है। उदाहरण—

दूहा

पारबती कीनौ प्रसन, हे देवन के देव।
सुरभष दुरभष परत हैं, सो भव कहिये भेव ॥
महादेव उत्तर दियौ, सुनहु उमा चितलाय।
सुरभष दुरभष को तुमैं, देऊँ भेद बताय ॥

कवित्त

ऊगै धूमर केत गगन तारा बहु तुट्टै ।
मॅडै धनुष विन मेघ बिना बद्दल जल बुट्टै ॥

---

[५] प्रथम भाग, पृ० ९२

वग रूप जळ उमँग गेत्र अवर फिर गाजे।
विन घन पवन अकाम भानु ससि कुडल राजे॥
यह गर्ग रिषि के वचन सुनि पडित व्हैं सो उर धरौ।
उल्लकापात जो एक हुव सग्व धान सग्रह करौ॥

डूँगरसी ये बर्दी गज्य- निवासी जाति के राव थे। इनका रचना-काल स० १७१० के लगभग हैं। ये बूदी के राव राजा शत्रुसाल के आश्रित थे। उन्होंने इन्हें नैनवा नामक एक गाँव प्रदान किया था जो अभी तक इनके वशवालों के अधिकार में है। इन्होंने 'शत्रुसाल रासौ' नामक ग्रथ बनाया जिसमें शत्रुसाल के राज्य-वैभव, शौर्य-पराक्रम, इत्यदि का सविस्तर वर्णन है। लगभग ५०० छदों का यह एक भारी ग्रथ है। इसकी भाषा-शैली चद कृत पृथ्वीराज रासौ से मिलती-जुलती है। उदाहरण—

वजे चग बाजिया अनग सारग भणकै।
उडे गुलाल रँग अमर, लाल लज्जा अवसकै॥
भ्रम अबीर त्रीविध, समीर जुध नीर सजै गति।
सम वाज सुर पँचम, रग अबुज पराग अति॥
वन फूलि भूलि कमले ललित कुरग रति आरति करै।
राजाधिराज सत्रुसाल रसै, वारै मध्य बसत रै।

जग्गाजी ये खिडिया शाखा के चारण थे। इनके पिता का नाम रतनाजी था। इनकी जन्म भूमि आदि का ठीक-ठीक पता नहीं है। इनके वशज आज-कल सामलखेडा गाँव में रहते हैं जो सीतामऊ राज्य के अन्तर्गत है। इन्होंने सं० १७१५ के लगभग 'वचनिका राठौड रतनसिंहजी री महेसदासोतरी' नामक एक ग्रथ बनाया जिसका दूसरा नाम 'रतन रासौ' है। यह ग्रथ बंगाल की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी की ओर से प्रकाशित भी हो चुका है। इसमे जोधपुर के महाराजा जसवत सिंह ओर मुगल सम्राट शाहजहाँ के विद्रोही पुत्र औरगजेब तथा मुराद के बीच मे उज्जैन के रण-क्षेत्र पर स० १७१५ का युद्ध वर्णित है। इस लड़ाई में रतलाम के राठौड राजा रतनसिंह बडी बहादुरी से लड़ते हुए काम आए थे। इसलिए उन्हीं के नाम से ग्रन्थ का नामकरण हुआ। यह एक वीर रस प्रधान ग्रन्थ है। इसकी भाषा डिंगल है। इसमे गद्य और पद्य दोनो हैं। ग्रथ साहित्य-रसिकों एव इतिहास-प्रेमियों दोनों के काम का है।

वचनिका के अतिरिक्त जग्गाजी के रचे शान्त रसात्मक कुछ फुटकर छप्पय भी मिले हैं। इनमें जहा डिंगल का ओज है वहाँ भावों की कोमलता भी है। जग्गाजी की रचना के दो नमूने यहाँ दिये जाते हैं—

माया जळ अति विमळ, तास कोई पार न पावै।
लहर लोभ ऊठन्त, मन्न जेहाज चलावै॥
जग बूडै जम हँसे, पाव कर कहूँ न लग्गै।
पीठ पार नह कोई, पार नह कोई अग्गै॥
अत वार वहै आपे अनंत, सह विडु हुय जावै सगा।
तक विट नाम श्री राम रो, जग-समद तिर तू जगा॥

इणि भाँति सू चारि राणी त्रिण्हि खवासि द्रव्य नाळेर उछाळि बळण चाली। चचला चढि महासरवर रा पाळि आइ ऊभी रही। किसड़ी हेक दीसै। जिसड़ी किरतिआँ रो झूबकौ। के मोतियाँ री लडि। पवङ्गाँ सूँ ऊतरि महापवीत ठौडि ईसर गौरिज्या पूजी। कर जोड़ि कहण लागी। जुगि जुगि औ हीज धणी देज्यौ। न मांगाँ वात दूजी। पछै जमी आकास पवन पाणी चन्द सूरिज नूँ परणाम करि आरोगी दोली परिकमा दीन्ही। पछै आप रै पूत परिवार नै छेहली सीखमति आसीस दीन्ही[६]।

किशोरदास

ये राव जाति के कवि मेवाड के महाराणा राजसिंह के आश्रित थे। इन्होंने 'राजप्रकाश' नाम का एक ग्रंथ सं० १७१६ में बनाया जिसमें महाराणा राजसिंह के विलास-वैभव और शौर्य-पराक्रम का वर्णन है। सब मिलाकर १३२ छदों में ग्रंथ समाप्त हुआ है। इसकी भाषा डिंगल है। बहुत उच्चकोटि का साहित्यिक ग्रन्थ है। रचना इस ढग की है—

गणपति सरसति गरुड़पति, व्रपपति हसपति वाणि।
तुस्ट होय मो दीजियै, जुगति पुस्टि इस्ट जाणि॥
जुगति जगत जीवे जच, उगति विगति अण पार।
निरत फुरत वाणी अमळ, सुरति सभा ससार॥
राणौ प्रतपै राजसी, धर गिरपाट उधार।
राज प्रकासित नाम रहि, कहि कहि राव किसोर॥

६— तास = उसका। पाव = पैर। विट = द्वीप। चचला = घोडो पर। किरतिया = कृतिका। पवङ्गा = घोडे। आरोगी = चिता। दोली = चारो तरफ।

ये मेवाड़-निवासी आशिया शाखा के चारण थे। इनका रचना-काल सं० १७२० के लगभग है। इन्होंने "सगतसिंह रासो" नाम का एक ग्रंथ बनाया जिसमें प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रताप के छोटे भाई शक्तिसिंह का चरित्र-वर्णन है। दोहा भुजंगी, कवित्त आदि कुल मिलाकर कोई ५०० छंदों में ग्रन्थ समाप्त हुआ। इसकी भाषा डिंगल है। रचना प्रौढ़ और इतिहास की दृष्टि से उपयोगी है। उदाहरण—

गिरधर

ऊदळ राणै एक दिन, सभ पूछियौ स काइ।
अणी सिरै कर आहणो, हूँसारै हूँ सोइ ॥१॥
मेगळ मेगळ मारिपौ, सीह सारिपौ सीह।
सगतौ उदियासिंघ तणा, अग पित जिमौ अबीह ॥२॥
चख रत्तै मुख रत्तडौ, वैस जिहिं कुळ वग्ग।
सगतै जमदड्ढा सिरै, आफाळियो करग्ग ॥३॥
कियो हुकुम न काणि की, ए वट एह अवट्ट।
ऊदळ राण कमखीयौ, पह दी सीख प्रगट्ट ॥४॥
पिता हुकुम लिखियौ परम, अंग अहंकार अथाह।
सगतौ उदियासिंघ तणा, सु बसीयौ पतसाह[७] ॥५॥

ये प्रतापगढ़ राज्य के महारावत हरिसिंह के आश्रित कवि जाति के चारण थे। इनके रचे हरिपिंगल-प्रबन्ध नामक एक बहुत उच्च कोटि के ग्रंथ का पता हाल ही में लगा है यह सं० १७२१ में लिखा गया था। रचना काल का दोहा यह है—

जोगीदास

संवत सतर इकवीस में, कातिक सुभ पख चंद।
हरिपिंगल हरिअंद जस, वणियौ खीरसमंद ॥

यह छंद-शास्त्र का ग्रंथ है। इसकी भाषा डिंगल है। इसमें संस्कृत, हिंदी और डिंगल में प्रयुक्त मुख्य-मुख्य छन्दों का लक्षण उदाहरण सहित विवेचन है। ग्रंथ तीन परिच्छेदों में बँटा हुआ है। अन्तिम परिच्छेद के अधिकांश में

७— अणी = कटारी। ऊदल = उदयसिंह। आहणो = चोट कर। सभ = सभा। मैगल = हाथी। सारिपौ = समान। तणा = तनय। अग = पहाड़। अबीह = निडर। आफालियो = मारा। काणि = मर्यादा। कमखीया = रुष्ट हुआ। वट = मार्ग, प्रण।

जोगीदास ने अपने आश्रयदाता महारावत हरिसिंह के वंश-गौरव का बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया है जो वास्तविक और उपादेय है। साहित्य एवं इतिहास दोनों ही दृष्टियों में यह एक बहुत उत्तम कोटि का ग्रन्थ है। भाषा-रचना इस ढंग की है—

> वाणी मेस उचारवा म मन करौ पेख।
> काकीटा लोडैं न करी, गन घूमतॉ देख॥
> हणमत महजे टाकियों, गो लोपै महराण।
> त की न कूदे दादरो हत्थ-बेहत्थ प्रमाण॥
> राणी गज मोताहळे, बौह मडै सणगार।
> की भीली झाले नहीं, गळ गुंजाहळ हार[८]॥

कुशल धीर ये जैन कवि सोजत नगर के निवासी थे। इनके गुरु का नाम कल्याणलाभ था। इन्होंने तीन ग्रन्थ बनाए—राठोड पृथ्वीराज कृत 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' की टीका (सं० १६९६), केशवदास कृत रसिकप्रिया की टीका (सं० १७२७), और लीलावती रासौ (सं० १७२८)। प्रथम दो ग्रंथ गद्य में और तीसरा पद्य में हैं। इनकी भाषा गुजराती मिश्रित राजस्थानी है। रचना से ऊँची प्रतिभा और विद्वत्ता झलकती है। इनके गद्य का थोड़ा-सा अंश यहाँ दिया जाता है—

"हिव रुक्मिणी माता नउ कथा प्रसंग कहइ। दक्षिण दिसिइ विदर्भ नामा, देस दीपइ। तीयइ देस विपइ कुंडणपुर नामइ पुर नगर अत्यन्त सर्वोत्कृष्ट पणइ शोभइ। तिणि नगर विषइ भीमक एक राजा राज्य करइ। केहवउ छइ? राजनि कहइ। अहि कहता नागलोक। नर, मनुष्य-लोक। असुर, राक्षस-लोक। सुर, देवलोक। तीयां माहि यशइ करी। शिरिहर मुगट समान सर्व राजा माहि॥"

कुलपति कुलपति मिश्र माथुर चौबे थे। इनके पिता का नाम परशुराम था। ये जयपुर के राजकवि थे। इनका रचना-काल सं० १७२४-४३ है। कहा जाता है कि इन्होंने कुल पचास ग्रन्थ बनाए थे, परन्तु इन सब का पता नहीं लगता। केवल नीचे लिखे १३ ग्रन्थ मिलते हैं—

---

८. काकीटा=कीड़े=कृमि। लाड=लोड़ते हैं, खाते हैं। हणमत=हनुमान। महराण=समुद्र। दादरो=दादुर। बोह=बहुत। झाले=धारण करना है।

(१) रस रहस्य (२) दुर्गाभक्ति चन्द्रिका (३) द्रोण पर्व (४) गुण रस रहस्य (५) संग्राम सार (६) मुक्ति तरंगिणी (७) नखशिख (८) दुर्गा सप्तशती का अनुवाद (९) सरूप करूप वाद (१०) आमास की वाद (११) विष-अमृत का झगडा (१२) मेवा की वाद (१३) सतसई।

कुलपति बहुत उच्च कोटि के कवि थे। इनकी भाषा ब्रजभाषा है जिस पर इनका असाधारण अधिकार था। इनकी कविता ललित, कलापूर्ण और प्रासाद गुण युक्त है। उदाहरण देखिए—

> दान बिन धनी मनमान बिन गुनी ऐसे
> बिप बिन फनी अनी सूर न सहत हैं।
> मंत्र बिन भूप ऐसे जल बिन कूप जैसे
> लाज बिन कामिनि के गुननि कहत हैं।
> वेद बिन यज्ञ जप जोग मन वस बिन
> ज्ञान बिन योगी मन ऐसे निवहत हैं।
> चंद बिन निशा प्राण प्यारी अनुराग बिन
> सील बिन लोचन ज्यों सोभा को लहत हैं।

मानजी

इनका पूरा नाम मानसिंह था। ये विजयगच्छीय जैन यति थे। इनका सम्पर्क मेवाड के राजवंश से था। अत. संभव है कि ये मेवाड-निवासी हों। परन्तु इस विषय में ठीक-ठीक कुछ नहीं कहा जा सकता। कविराजा बाँकीदास के 'वात संग्रह' में एक स्थान पर इनका उल्लेख आया है—"मानजी जती राज-विलास नाव रूपक राणा राजसिंह रो वणायौ।" इनका कविता-काल सं० १७३४-४० है। इनके लिखे दो ग्रंथ प्रसिद्ध हैं राज-विलास और बिहारी-सतसई की टीका।

राज-विलास का प्रारम्भ सं० १७३४ में और समाप्ति उसकी सं० १७३७-३८ में हुई थी। इसकी प्राचीनतम प्रति उदयपुर के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित है जो सं० १७४६ की लिखी हुई है। राज-विलास एक वीर रस प्रधान काव्य है। यह अठारह विलासों में विभक्त है। इसकी भाषा पिंगल है। इसमें मेवाड के महाराणा राजसिंह का जीवन-इतिहास वर्णित है। ग्रंथ के आदि में सीसोदिया वंश का संक्षिप्त इतिवृत्त दिया गया है। मुख्य कथा महाराणा राजसिंह के राज्यारोहण (सं० १७०९) से प्रारम्भ होती है। ग्रन्थ में महाराणा राजसिंह के समय की प्राय. सभी मुख्य-मुख्य घटनाओं का

समावेश हो गया है, पर अधिकाश महाराणा राजसिंह और औरङ्गज़ेब के युद्ध वृत्तान्त से भरा हुआ है। इसकी भाषा सालंकार, वर्णन शैली चित्रोपम तथा कविता चमत्कारपूर्ण है और वीर रस के सिवा शृङ्गार आदि दो-एक अन्य रसों का भी इसमें अच्छा निदर्शन मिलता है।

मानजी कृत विहारी-सतसई का टीका भी काफी अच्छी है। इसमें ७१३ दोहे हैं। पहले मूल देकर फिर उसकी टीका की गई है। टीका गद्य मे है। इनकी रचना के नमूने देखिए—

> ऊचलि गयो अगरो दन्द मच्यौ अति दिल्लिय।
> हानापुर परि हक्क दहकि लाहौर सु डुल्लिय॥
> थरग्र लयो रिनथम्भ भमकि अजमेर सु धुज्जिय।
> सूना भया सिरोज भगग भेलसा सुभज्जिय॥
> अहमदाबाद उज्जेनि जन थाल मृग ज्यों थरहरिय।
> राजेस राण सु पयान सुनि पिशुन नगर खरभर मचिय॥
>
> —राजविलास

> कहा लडेते द्रिग करे, परे लाल बेहाल।
> कहुँ मुरली कहुँ पीत पट कहूँ मुकट वनमाल॥

श्री वृन्दावन मे सकल सखीन के सग गनगोर पुजवेकुँ श्री राधाजु फूल पाती लेतु है। तिहा श्री कनइया जु सकल सखीन के सग ठाढे मुरली बजावत है। तिहा श्री राधाजु को सरूप देख कै कनइया जु मुरछित होय गिर परे। तब श्री राधाजु सुं सकल सखी कहै हैं ॥कहा०॥ अहो श्री राधे तुम श्री ऐसे लाडले नैन कीं क्यै ॥परे०॥ इनको देखत ही श्री कनइया गिर परे है ॥कहुँ०॥ कितहुँ मुरली गिरि है। कितहुँ पीताम्बर गिरयो है ॥कहुँ०॥ कितहुँ मुगट वै गयो है। अर कितहुँ फूलन की चौसर गिरी है।

—विहारी-सतसई की टीका

वृन्द शाकद्वीपीय ब्राह्मण[१] थे। इनके पूर्वज बीकानेर के रहनेवाले थे। परन्तु किसी कारण विशेष से इनके पिता श्री रूपजी मेडते में जा बसे थे

१- 'माधुरी', संख्या २, अगस्त सन् १९२३ मे गोस्वामी किशोरीलाल ने 'महाकवि वृन्द' शीर्षक लेख में लिखा है कि "यह कवि गौड ब्राह्मण कुल मे मथुरा प्रान्त के किसी ग्राम में पैदा हुआ था।" यह उनकी भ्रान्ति है।

वृन्द

सं० १७०१ में इनका जन्म हुआ था।[10] इनकी माता का नाम कौशल्या और पत्नी का नवरंगदे था। वृन्द जब दस वर्ष के थे तब इनके पिता ने इनको विद्याध्ययन के लिए काशी भेज दिया। वहाँ ताराजी नामक एक पंडित के पास रहकर इन्होंने साहित्य, वेदान्त आदि अनेकानेक विषयों का ज्ञान प्राप्त किया और कविता करना भी सीखा। काशी से लौटकर जब ये अपने जन्म-स्थान मेड़ते गए तब वहाँ इनका बड़ा सम्मान हुआ और जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह ने कुछ भूमि पुण्यार्थ देकर इनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। महाराजा जसवन्तसिंह ने इनका परिचय बादशाह औरंगजेब के कृपापात्र वजीर नवाब मुहम्मदखाँ से भी करवा दिया जिससे आगे चलकर इनका शाही दरबार में प्रवेश हो गया।

कहते हैं कि पहले-पहल जिस समय नवाब मुहम्मद खाँ वृन्द को शाही दरबार में ले गया उस समय उनकी परीक्षा लेने के लिए औरंगजेब ने इन्हें यह समस्या दी—

"पयोनिधि पैर्यो चाहै मिसरी की पुतरी"

वृन्द ने तत्काल ईश-महिमा विषयक यह कविता रचकर सुनाई—

पूरन परम परब्रह्म को भरयो वारि
सुर मुनि जोगिन डाल इत उत री।
थिरचर जावन की जीवन की वृत्ति जाके
ताही सूँ रुचि रुचि राचि प्रीत जुत री॥
वृन्द कहै साहिब समस्त सब बातन में
उनकी कृपा तें ऐसी बात अद्भुत री।
पंगु गिरि गाहैं मूक निगम निबाहैं क्यों न
पयोनिधि पैर्यो चाहै मिसरी की पुतरी

परन्तु बादशाह को यह कविता कुछ कम पसंद आई। इसलिए वृन्द ने उसकी पूर्ति दूसरी तरह से फिर की—

कुम्भज करूर ता को कठिन करूर दीठ
देखि कै डरानो न हलानो इत उत री।

---

१०. मिश्रबन्धुओं ने इनका जन्म सं० १७४२ माना है और श्री रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी 'कविता-कौमुदी' में इनका जन्म सं० १७३४ लिखा है। यह दोनों ही गलत हैं।

परहर लहर गहर गाज छोड दई
वृन्द कहै भई गति अरीठ अश्रुत री ॥
अगल मुकुर कैसे अचल सुभाव रह्यो
रह्यो दबि भई बात ऐसी अद्भुत री ।
हाकर निशाक अक ऐसो दाग पाव क्यो न
पयोनिधि पैर्यो चाहै मिसरी की पुतरी ॥

औरगजेब काव्य का विरोधी था । कवियो को वह न धन देता था न प्रोत्साहन । परन्तु वृन्द की यह अनूठी उक्ति उस पर भी वार कर गई और उसके मुँह से सहसा निकल पडा "खूब ! खूब !!" बादशाह ने वृन्द को बहुत सा धन दिया । उन्हे अपना दरबारी कवि बनाया और अपने ज्येष्ट पुत्र मुअज्जम (बहादुरशाह) तथा पौत्र अजीमुश्शान का अध्यापक नियुक्त किया । कालान्तर मे जब अजीमुश्शान बगाल और उडीसा का सूबेदार होकर उधर गया तब अपने साथ वृन्द को भी ले गया । तभी से ये उसके साथ रहने लगे ।

स० १७६४ के लगभग किशनगढ के महाराना राजसिंह ने वृन्द को बहादुरशाह से माग लिया और अच्छी जागीर देकर किशनगढ मे बसाया । वहीं स० १७८० मे इनका देहान्त हुआ । इनके वशज अभी तक किशनगढ मे मौजूद है ।[११]

वृन्द डिंगल और पिंगल दोनो मे कविता करते थे । इन्होंने ग्रथ भी लिखे और फुटकर कविता भी की । शुद्ध और स्वाभाविक अनुभूति के आधार पर रची हुई इनकी कविता भारतीय साहित्य के विभव को बढानेवाली है । इन्होंने छोटे बडे सब मिलाकर दस ग्रथ बनाएँ जिनका सक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है

(१) वृन्द सतसई—यह इनका प्रधान ग्रन्थ है । इसका दूसरा नाम दृष्टान्त सतसई है । मुगल सम्राट औरगजेब के पौत्र शाह अजीमुश्शान के विनोदार्थ इसकी रचना का प्रारभ कवि ने स०१७६१ मे ढाका शहर मे किया था । इसमे ७१३ दोहे हैं । प्रत्येक दोहा सद्विचार-पूर्ण एव भावापन्न है तथा

---

११ वशावली—(१) महाकवि वृन्दजी । (२) रूपजी (३) वृन्दजी (४) वल्लभजी (५) मनोहरदासजी (६) दौलतरामजी (७) अखैरामजी (८) अमरराजजी (९) गोवरधनजी (१०) घनश्यामजी (११) श्रीपति (विद्यमान) ।

इसमें वृन्द की कवित्व-शक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। ज्ञान, नीति तथा उपदेश सम्बन्धी विचारों को वृन्द ने ऐसे मन-मोहक एवं प्रभावोत्पादक ढंग से चित्रित किया है कि वे तुरन्त पाठक के हृदय में घर कर लेते हैं। प्रसाद गुण की बहुलता होने से साधारण पढ़े-लिखे लोग भी इन दोहों का मर्म समझ लेते हैं और स्थान-स्थान पर उद्धृत कर अपने पक्ष एवं प्रसंग का समर्थन करते हैं। दोहे लोकोक्तियाँ बन गई हैं। हिन्दी साहित्य में अधुना सात आठ सतसइयाँ प्रचलित हैं। काव्य-प्रेमियों में सभी का यथेष्ट सम्मान भी है। परन्तु सर्वप्रियता की दृष्टि से यदि देखा जाय तो विहारी सतसई के अनन्तर वृन्द सतसई ही उत्कृष्ट रचना ठहरती है।

(२) यमक सतसई—इसमें सातसौ दोहे हैं। वृन्द सतसई में कवि ने भाव प्रदर्शन की ओर विशेष ध्यान रखा है। पर इसकी रचना उन्होंने कविता के कला-पक्ष और भाव-पक्ष दोनों को सामने रख कर की है। यमक अलंकार की छटा एवं भाव और भाषा का सामंजस्य देखते ही बनता है।

(३) भाव पञ्चाशिका—पच्चीस दोहे और पच्चीस सवैयों के इस छोटे ग्रन्थ की रचना सं० १७४३ में औरङ्गाबाद में हुई थी। इसमें मनोभावों का बहुत ही चमत्कारपूर्ण वर्णन है।यद्यपि यह ग्रंथ छोटा है तथापि इसकी रचना बहुत ही सरस, और हृदय-ग्राहिणी है और वृन्द की भावुकता का परिचय देती है। भाषा भी इसकी बहुत परिमार्जित, प्रौढ और श्रुति-मधुर है। इसकी रचना के सम्बन्ध में एक कथा प्रसिद्ध है। जब वृन्द औरंगाबाद में थे तब वहाँ पर किसी काव्य-प्रेमी सज्जन ने कवियों की एक सभा की और वृन्द को भी उसमें सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रण दिया। जिस समय सब लोग इकट्ठे हो गए, वहाँ यह प्रश्न उठा कि इस सभा में सब से अच्छा कवि कौन है और आज कौन इसका सभापति बनाया जाय। बड़ी देर तक बहस हुई। जब कुछ भी तय न हो सका, तब उस सज्जन ने कहा कि जो आज रात में सब से अच्छी कविता करके लाएगा वही कवि-शिरोमणि समझा जाएगा। रात भर में वृन्द ने यह ग्रंथ बनाया और प्रातः काल होते ही सबों के सामने जाकर पढ़ा। वृन्द की कविता के सामने किसी दूसरे कवि का रंग न जमा और यही बहु मत से सर्वोत्कृष्ट कवि माने गए। वृन्द के शिष्य किशनगढ़ के मीर मुन्शी माधौदास ने भी अपने 'शक्ति भक्ति प्रकाश' में इस घटना की ओर संकेत किया है:—

कारज औ कारण तूं विस्व विस्तारन है
अखिल की पालक सुजोति चिदानद की।
तूँ ही गति, तूँ ही मति, तूँ ही सुख सम्पति है,
विपति विहडनी वली है अनन्द की॥
तेरे गुन गाइबे को विधि हू समर्थ नाहिं,
तो कहा गति मेरी रसना मतिमन्द की।
भक्तन की पति राखि ताके सुने गीत साखी
पति राखी मेरता के वासी कवि वृन्द की॥

(४) श्रृङ्गार-शिक्षा—दिल्ली के बादशाह औरंगजेब के वजीर नवाब मुहम्मद खाँ के पुत्र मिरजा कादरी, जो अजमेर का सूबेदार था, की कन्या को पतिव्रत धर्म की शिक्षा देने के निमित्त यह ग्रथ स० १७४८ में लिखा गया था। ग्रथ के आरंभ में वर और कन्या के लक्षण, उनके गुण-दूषण, उनकी सुन्दरता तथा उनके सम्बन्धियों के लक्षणों का वर्णन है। बाद में स्वकीया नायिका, पतिव्रत-धर्म, नायिका नवोढ़ा, मुग्धा, अज्ञात योवना, ज्ञात यौवना आदि का विवरण है। तदनन्तर कवि ने १६ श्रृङ्गारों का बहुत ही सुन्दर, व्यवस्थित तथा काव्य-कलापूर्ण वर्णन किया है। बहुतेरे कवियों के समान न तो इस ग्रथ में भरती के शब्द एवं वाक्य हैं और न कहीं भावावेश में आकर कवि ने लोक-मर्यादा का उल्लघन किया है।

(५) वचनिका—किशनगढ-नरेश महाराजा मानसिंह की आज्ञा से महाराजा रूपसिंह की ख्याति को अक्षय रखने के लिए वृन्द ने इस ग्रन्थ की रचना स० १७६२ में की थी। इसमें उस युद्ध का वर्णन है जो धौलपुर के मैदान में स० १७१५ में बादशाह शाहजहाँ के पुत्रों-दारा, शुजा, मुराद और औरगजेब-में दिल्ली के तख्त के लिए हुआ था। यह एक ऐतिहासिक ग्रथ है। प्रारम्भ में कन्नौज के महाराज राव सीहाजी से लेकर महाराजा रूपसिंह तक के राजाओं की वशावली दी गई है। फिर रूपसिंह के शौर्य का वर्णन किया गया है। महाराजा रूपसिंह ने दारा का पक्ष लिया था। औरगज़ेब की फौज को काटते-काटते वे उसकी सवारी के हाथी तक जा पहुँचे, और वहाँ पैदल होकर हौदे की रस्सियाँ तलवार से काटने लगे। यह देखकर बहुत से आदमी उन पर टूट पड़े और उनके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। जैसा वीरतापूर्ण इतिहास है, वैसी ही वीरतापूर्ण भाषा में यह लिखा भी गया है। वीर रस का कवि

रु, ओजपूर्ण और लोमहर्षण वर्णन किया है कि पढ़ते ही भुजाएं फड़कने लगती हैं।

(६) सत्यस्वरूप—यह ग्रंथ सं० १७६४ में बना था। यह वृन्द की अन्तिम रचना है। इसमें बादशाह औरंगजेब के मरने पर दिल्ली के तख्त के लिए शाहजादा मुअज्जम (बहादुरशाह), आजम, कामबख्श आदि की लड़ाई का वर्णन है। इस युद्ध में किशनगढ़ के महाराजा राजसिंह बहादुरशाह की ओर से लड़े थे। उनके हाथ से आजमशाह के पक्ष के नवाब व राजा, महाराजा आदि लड़नेवालों के १७ हौदे खाली हुए जिनमें दतिया के राजा दलपत और कोटा के महाराव राजा रामसिंह मुख्य थे। इस लड़ाई की विजय का सुयश राजसिंह ही को मिला। इतिहास की लगाम को मानते हुए भी कवि ने अपनी प्रतिभा से सत्यस्वरूप को एक उच्चकोटि का काव्य-ग्रंथ बना दिया है। भाषा, भाव छन्द और शब्द-विन्यास, सभी का इसमें अपूर्व सम्मिलन है। विस्तार में तो यह ग्रंथ वचनिका से बड़ा है ही, साथ ही उसकी अपेक्षा इसकी कविता भी अधिक पुष्ट और भावमयी है।

ये इनके बड़े ग्रंथ हैं। छोटे ग्रन्थों के नाम ये हैं: पवनपच्चीसी, समेत सिखर छन्द, हितोपदेशाष्टक, भारतकथा और हितोपदेश।

वृन्द-रचित पिंगल और डिंगल दोनों प्रकार की रचनाओं के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं—

दोहे

आप वरद वाहन वरद, कर त्रिसूल हर सूल।
अहितन अहितन हितनकर, सिव प्रभु सिव सुख मूल॥
दीन बीनती दीन-प्रति, मानहु परम प्रवीन।
हम से अपराधीन को, करिये अपराधीन॥
कुहुकि घूमि चूमें चुगै, रहै परवी संग।
अरे परेवा काम को, तू मुख लेत विहंग॥
रह्यो सबूरी साधि के, चतुर परेवा जानि।
धरी परवी नीठ दिव, कौकर साकर मानि॥
रागी औगुन ना गनत, यहै जगत की चाल।
देखो सब ही स्याम कूँ, कहत बाल सब लाल॥
रस अनरस समझै न कछु, पढ़ै प्रेम की गाथ।
बीछू मंत्र न जानही, साँपहि डारे हाथ॥

कवित्त

पाऊं जो हुकम तो न लाऊं बार एक पल
जहाँ पाऊं तहाँ तें ले आऊं हेरि हेरि क।
गढ चूरि, गिरि चूरि, सुभटन लसकर तारि
मीधे कारं डारी गज वाजि पेरि पेरि के ॥
सदन तें बन माँहि, बन तें छप्पन माँहि
छप्पन तें घेरि औ बाटिन म घेरि घेरि कै।
रूप कहँ स्वग्ग तैं गुमान सों खिसानो करि
फिरकी फिरत ज्यौं फिराऊं फेरि फेरि कै ॥

नैननि की जोति जा लौं नीकें कै निहारि हरि,
सुन ले पुरान जा लों सुन तुव कान है।
रसना रसीली जो लो रसत रसीले बैन,
तो लौं हरि गुन गाय जो प तूं सुजान है ॥
काँपे नाहिं कर तो लौं भली भाँति सेवा कर,
पायन प्रदक्षिणा दे तो लौं वलवान है।
जरा जकरे तें कहा कारं हो कहत वृन्द,
भज भगवान जो ला देह सावधान है ॥

गीत सपखरो

मच रिला रा चकत ढिली दिगा धमचक्का मचै।
सँभाळे कायरा धरा सूरा चटे मोह ॥
वर्वे नाळा भडाभडा वडाधड़ी धूजै धरा।
छूटे वाणा गोळी रानचरगिया छछोह ॥१॥
तडातडी तठै वगतरा तणी तूटै कडी।
धमाधमी ऊठ वणा सेला रा धमोड़ ॥
झडाझडी जठै तरवारिया था पडै झोक।
रसै राजा महाराजा रानसिह राठोड ॥२॥
आजम का कटका झटका तणा वाड उडै।
जोरावरा पाड़ की अजीम तणी जीप ॥

वकारै हकारै हाथी भिड़ायै वरच्छी वाहै।
पछाडियाँ हाडो राम मान रै महीप ॥३॥
धसै जठी नठी घणा वैरिया विधूसै धींग।
चाचरा धपायै वरा रङ्गी वणू चाळ॥
पाडै घणा उमीरा हमीरा हौदा बिचाँ पाड़ै।
रूपहरै कीधी फतै वैरिया विरोळ[१२] ॥४॥

ये जाति के ढाढी थे। इनका लिखा 'वीरमाण'* नामक डिंगल भाषा का एक ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध है। इसमें मंडोवर के राव मल्लिनाथ के पुत्र जगमाल और उनके भतीजे वीरमजी की युद्ध-वीरता का वर्णन है। परन्तु,जैसा कि कुछ लोग मान बैठे हैं, यह वीरमजी की समकालीन रचना नहीं है। कोई अठारहवीं शताब्दी के मध्य में यह रची गई है। इसके अधिक भाग में वीरमजी और जोइयों की उस लड़ाई का वृत्तान्त है जो सं० १४४७ के लगभग लखबेरा नामक स्थान में हुई थी और जिसमें वीरमजी बड़ी वीरता से लड़ते हुए काम आए थे।

बादर

१२— औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके बेटों-मुअज्जम, आजम और कामबख्श में राजसिंहासन के लिए युद्ध हुआ जिसमें किशनगढ के महाराजा राजसिंह ने मुअज्जम का और कोटा के महाराव रामसिंह ने आजम का पक्ष लिया। रामसिंह महाराजा राजसिंह द्वारा मारे भी गये थे। इस गीत में उसी युद्ध का वर्णन है।

दिल्ली के मुसलमान दिल्ली की तरफ़ धमचक मचा रहे हैं। सब सूरों ने चढ़कर कायरों के घरों को संभाल लिया है। भडाभड-धडाधड आवाज करती हुई बन्दूकें चल रही है जिससे पृथ्वी धूजती है। तीर चल रहे हैं। तोपों से बड़े वेग के साथ गोले छूट रहे हैं। ॥१॥ बख्तरों की कड़ियां तड़ातड़ टूट रही हैं। धमाधम की आवाज के साथ भालों के भारी प्रहार हो रहे हैं। तलवारों में झडाझडी भौंक उड़ रही है। महाराजा राजसिंह राठौड़ तलवारों से खेल रहे हैं ॥२॥ प्रहारों में आजम की सेनाओं का दलनकर, जोरावरों को गिराकर, अजीमुश्शान (आजम का बेटा) की जीन की ललकार डकारकर हाथी भिड़ाये और फिर बरछी चलाकर महाराजा मानसिंह के बेटे राजसिंह ने हाडा रामसिंह को पछाडा ॥३॥ इधर-उधर घुसकर उस जबरदस्त ने बैरियों का विध्वंस किया। पृथ्वी को लाल रंग से खूब रंगकर नरमुंडों से तृप्त किया। बहुत अमीर-उमरावों को हौदों में गिरा, वैरियों का नाश कर, रूपसिंह के वंशज (राजसिंह) ने विजय प्राप्त की॥४॥

*वीरम + अयन = वीरम + अयण = वीरमायण = वीरमाण

इसमें व्यवहृत मुख्य छन्द नीसाणी है। इसलिए इसका दूसरा नाम 'नीसाणी वीरमाण री' भी है। इसकी पद्य संख्या २८५ है। वीररस की बड़ी सबल, सजीव और फड़कती हुई रचना है। उदाहरण--

सुत ज्यारूं मळखेस रै, कुळ में किरणाळा।
गानम बंका राठवड, वर वीर बडाळा॥
साथ लियाँ दळ सामठा, विरदा रखवाळा।
भिड़िया भारथ भीम सा, दळ पारथ वाळा॥
देस दमू ढिस ढाबिया, कीधा धकचाळा।
अरि औद्राहा ऊड ग्या, कट ताळ विमाळा॥
माल अगजी सुरधग, त्रहकै त्रमाळा[13]॥

हरिनाभ ये जयपुर राज्यान्तर्गत खंडेला (बड़ा पाना) के निवासी और वहाँ के राजा केसरीसिंह के आश्रित थे। ये जाति के पारीक ब्राह्मण थे। शांडिल्य इनका गोत्र था। रचनाकाल सं० १७४०-५४ है। इन्होंने 'केसरीसिंह समर' नामका एक ग्रंथ बनाया जिसमें शेखावत-वंश प्रवर्तक राव शेखाजी से आरंभ कर राजा केसरीसिंह तक के इतिहास का वर्णन किया गया है। केसरीसिंह ने औरंगजेब की हिन्दू हित-विघातिनी नीति का विरोध किया था। इस पर वह इनसे नाराज हो गया और सं० १७५४ में अपने सेनापति नवाब अब्दुल्ला खाँ को एक बड़ी सेना देकर इनके विरुद्ध लड़ने को भेजा। खंडेले के पास हरीपुरे के मैदान में भारी संग्राम हुआ जिसमें केसरीसिंह अपने अनेक योद्धाओं सहित वीरगति को प्राप्त हुए और उनकी चार रानियाँ उनके साथ सती हुईं।

'केसरीसिंह-समर' पिंगल भाषा का ग्रन्थ है। इसमें छप्पय, हनूफाल, मोतीदाम, भुजंगप्रयात आदि विविध छंदों का प्रयोग किया गया है। इसकी पद्य-संख्या ४५६ है। ग्रंथ यद्यपि वर्णनात्मक है तथापि मार्मिक स्थलों पर कवि ने अपनी सहज रससिक्त लेखनी से अनेक सुन्दर चित्र उपस्थित किये हैं। युद्ध-वर्णन, सतीचरित्र-वर्णन बड़ा ही मनोहारी है। इसी प्रकार सती-परी

१३— मलखेस=मलखाजी। किरणाला=सूर्य के समान। राजस=राज-कार्य। बडाला=बड़े। सामठा=मजबूत, भारी। विरदा=यश। भारथ=युद्ध। धकचाला=धाक। अरि विमाला। दुश्मन भयभीत होकर भाग गये हैं। माल=मल्लीनाथ। अगजी=अजेय। त्रहकै=बजते हैं। त्रमाला=नगाड़े।

प्रभातगण के वर्णन में भी कवि ने अपनी स्वाभाविक सूक्ष्मदर्शिता और काव्य शक्ति का अच्छा परिचय दिया है। उदाहरण —

> चढिके नव गात निमान किये, हय ऊपर पाखर डारि दिये।
> नव रंग अँग सूरन काच कसे, जमराज भयंकर रूप जिसे॥
> जरि के गज पाखर मान वने, मनु पाय चले सु पहार घने।
> सनि के सब तोपन अग्ग किये, उडि खूरन धूरनि छाय रिये॥

ये मेवाड-निवासी जाति के राव थे। इनका पूरा नाम दयाराम था।

दयाल

इन्होंने राणारासौ नाम का एक ग्रन्थ बनाया जिसमें मेवाड का इतिहास वर्णित है। इसकी सं० १९४८ की लिखी हुई एक प्रति मिली है जिसे सं० १६७५ की हस्तलिखित प्रति की नकल बतलाया गया है[14]। परन्तु यह बात मान्य नहीं है। क्योंकि इसके अन्तिम भाग में महाराणा कर्णसिंह (सं० १६७६-८४) का सविस्तर वृत्तान्त दिया हुआ है और प्रारम्भ में महाराणा जगतसिंह (सं० १६८४-१७०६), महाराणा राजसिंह (सं० १७०६-३७), तथा महाराणा जयसिंह (सं० १७३७-५५) का भी नामोल्लेख है जो सब सं० १६७५ के बाद हुए हैं—

> सीसोदा जगपति नृपति, ता सुत राजरू रान।
> तिनकै निरमल बंस कौ, करयौ प्रसंसु बखान॥
> राजस्यंघ कै पाट अब, बेंठ जेस्यंघ रान।
> धरा अम्म अवतार ल, सनी भान कै भान॥

साफ है कि ग्रंथ महाराणा जयसिंह के समय में सं० १७३७ और सं० १७५५ के बीच में किसी समय लिखा गया है। और मूल प्रति का लेखन-काल सं० १६७५ जो बतलाया गया है वह ठीक नहीं है। शायद सं० १७७५ के स्थान पर भूल से सं० १६७५ लिखा गया है।

राणारासौ पिंगल भाषा का एक ऐतिहासिक काव्य है। इसकी रचना चारण-भाटों की प्रथाबद्ध रीति पर हुई है। सरस्वती और गणपति की वन्दना के पश्चात् कवि ने सृष्टिकर्ता ब्रह्मा से लेकर महाराणा जयसिंह तक के मेवाड के राजाओं की वंशावली दी है। बापा रावळ को एकलिङ्ग का पुत्र कहा गया है। बापा रावळ और अजयसिंह के बीच के राजाओं के नामों में से कुछ

१४—राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, (प्रथम भाग), पृ०, ११८

नाम ठीक हैं, और कुछ गलत। बाद के सभी नाम ठीक हैं। महाराणा कुम्भा महाराणा उदयसिंह, महाराणा प्रताप, और महाराणा अमरसिंह का वर्णन बहुत विस्तारपूर्वक किया गया है। विशेषकर इनके विभिन्न युद्धों का वर्णन बहुत सजीव और चित्रोपम ढंग पर हुआ है। रचना इस तरह की है—

> इक चढ़त उतरत इक इकनि बिच धावतु।
> परि पत्थर लरथरत सथु महि मथु लगावतु॥
> टूटि टोप उछरन्त पूँछ हय भार उरझत।
> गिरि गिरि पाग तर लाग मुंड कटि तुट मुरझत॥
> सबकत बाघ बाराह बहु सह बबकत न कान बस।
> उछटत गेंछ हय सीस मुनि पुनि श्रृंकाल कल मेह सभ॥

मुरली ये मेवाड़ राज्य के कोठारिया ठिकाने के स्वामी रावत उदयभान के आश्रित थे। इनके लिखे दो ग्रंथ मिले हैं: 'त्रिया विनोद' और 'अश्वमेध यज्ञ'। लेकिन इनसे इनके व्यक्तिगत जीवन के विषय में कुछ भी मालूम नहीं होता, सिर्फ इतना ही सूचित होता है कि 'त्रिया विनोद' को उन्होंने रावत उदयभान के कहने से सं० १७६३ में और 'अश्वमेध यज्ञ' को मेवाड़ के महाराणा जगसिंह की आज्ञा से सं० १७९५ में बनाया था। ये दोनों ग्रंथ पिंगल में हैं। कविता-शैली दोनों की समान रूप से मधुर और रोचक है। रचना इस ढंग की है—

> राना आगर चालवै, तीर तुपक तरवार।
> आतस कर न अंग मे, तौ पर धर लै मार॥
> राना मोडि जानिये, अरि ल्यावै गहि बाँह।
> बरपत सब धरका करे, सुख दे सोवत नाँह॥

नागरीदास नागरीदास किशनगढ के महाराजा राजसिंह के पुत्र और महाराजा मानसिंह के पौत्र थे। इनका जन्म सं० १७५६ में हुआ था। इनका असली नाम सावतसिंह था। कविता में नागरी, नागर, नागरीदास और नागरिया लिखा करते थे। अपने पिता के पाँच पुत्रों में नागरीदास तीसरे थे। इनका विवाह भानगढ के राजा यशवंतसिंह की पुत्री के साथ हुआ था। इनसे तीन संतानें हुईं, दो कन्याएँ और एक पुत्र। पुत्र का नाम सरदारसिंह था।

पुत्र का राज्याभिषेक हो जाने के पश्चात् नागरी दास वापस वृन्दावन चले गए और वहाँ कृष्ण-भक्ति में लीन रहने लगे। जब कभी एक-आध दिन के लिए आते भी थे तो किशनगढ में इनका मन नहीं लगता था। अन्तिम बार यह कवित्त कहकर वृन्दावन को और चले गए और आजीवन न लौटे—

ज्यों ज्यों इत देखियन मूरख विमुख लोग
त्यों त्यों ब्रजवासी सुखरासी मन भावें हैं।
खारे जल छीलर दुखारे अन्ध कूप चितै
कालिन्दी कूल काज मन ललचावें हैं॥
जैसी इहै बीतत सो कहत न बनत बैन
नागर न चैन परे प्राण अकुलावें हैं।
थूहर, पलास, देख-देख के बबूल बुरे
हाय हरे हरे वे कदम्ब सुधि आवें हैं॥

नागरीदास का गोलोकवास सं० १८२१ भादों सुदी ५ को वृन्दावन में किशनगढ राज्य की कुंज में, जो नागर-कुंज के नाम से प्रसिद्ध है, हुआ था। वहाँ पर इनकी समाधि, चरणचिन्ह आदि विद्यमान हैं, जिनकी अभी तक पूजा होती है। किशनगढ राज्य की ओर से 'नागर कुञ्ज' में २५ मनुष्यों को हमेशा सदावर्त मिलता है, और जब कभी महाराजा साहब का उधर पधारना होता है तब वे स्वयं नागरीदास के चरण-चिन्हों की पूजा करते हैं। समाधि में निम्नलिखित छप्पय खुदा हुआ है—

सुत को दे युवराज, आप वृन्दावन आये।
रूपनगर पति भक्ति, वृन्द बहु लाड लडाये॥
सूरवीर गम्भीर रसिक, रिझवार अमानी।
मत चरनामृत नेम, उदधि लौं गावें बानी॥
नागरीदास जगविदित सो, कृपा ढार नागर ढरिय।
सावन्तसिंह नृप कलि विषे, सत त्रेता सम आचरिय॥

नागरीदास संस्कृत, फारसी आदि भाषाओं के सुज्ञाता और ब्रजभाषा एवं ब्रजभूमि के अनन्य उपासक थे। इनकी रचना से वृन्दावन के प्रति इनकी अखंड भक्ति टपकती है। इन्होंने छोटे-छोटे ७७ ग्रंथ बनाए जिनका संग्रह 'नागर समुच्चय' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। ग्रन्थों के नाम ये हैं—

(१) सिगार सागर (२) गोपी प्रेम प्रकाश (३) पद प्रसगमाला (४) व्रज वकुण्ठ तुला (५) व्रजसार (६) भार लीला (७) प्रात रस मजरी (८) विहार चद्रिका (९) भाजनानन्दाष्टक (१०) जुगल रस माधुरी (११) फूल-विलास (१२) गाधन आगमन (१३) दाहन आनन्द (१४) लम्राष्टक (१५) फागविलास (१६) ग्रीष्म वहार (१७) पावस पचीसी (१८) गोपीवैन विलास (१९) रास रसलता (२०) रैन रूप रस (२१) सीतसार (२२) इश्क चमन (२३) मजलिस मडन (२४) आरलाष्टक (२५) सदा की माँझ (२६) वर्षा ऋतु की माझ (२७) हारी का माझ (२८) कृष्ण जन्मोत्सव कवित्त (२९) प्रिया जन्मोत्सव कवित्त (३०) साँझी क कवित्त (३१) रास क कवित्त (३२) चाँदनी क कवित्त (३३) दिवारी के कवित्त (३४) गोवर्धन धारण क कवित्त (३५) होरी क कवित्त (३६) फाग गोकुलाष्टक (३७) हिंडारा क कवित्त (३८) वर्षा के कवित्त (३९) भक्त मग दीपिका (४०) तीर्थानन्द (४१) फाग विहार (४२) वाल विनाद (४३) सुजनानन्द (४४) वन विनाद (४५) भक्तिसार (४६) देहदशा (४७) वैरागवल्लरी (४८) रसिक रत्नावली (४९) कलि वैराग वल्लरी (५०) अरिल्ल पचीसी (५१) छूटक विधि (५२) परायण विधि प्रकाश (५३) शिखनख (५४) नखशिख (५५) छूटक कवित्त (५६) चरचरिया (५७) रेखता (५८) मनोरथ मजरी (५९) राम चरित माला (६०) पद प्रबोध माला (६१) जुगल भक्ति विनाद (६२) रसानुक्रम क दोहे (६३) शरद की साझ (६४) साझी फूल बीनन समत सवाद (६५) फाग खेलन समतानुक्रम कवित्त (६६) बसत वर्णन (६७) रसानुक्रम क कवित्त (६८) निकुज विलास (६९) गोविंद परचई (७०) बन जग प्रशसा (७१) छूटक दोहा (७२) उत्सव माला (७३) पद मुक्तावली (७४) वैन विलास (७५) गुप्त रस प्रकाश (७६) धन्य धन्य (७७) व्रज सम्बन्धी नाममाला।

नागरीदास श्रृगारी भक्त एव प्रेमी जीव थे। विधाता ने इन्हे कवि हृदय प्रदान किया था। अत. श्रृङ्गार का पूर्ण परिपाक इनकी रचनाओ म विद्यमान है। वैष्णव सम्प्रदाय के कृष्णोपासक भक्त कवियो क समान इन्होने भी राधाकृष्ण की प्रेमलीला विषयक श्रृङ्गार रसात्मक कविताएँ अधिक सख्या मे रची हैं, पर ईश्वर-भक्ति क नाम पर श्रृङ्गार रस की पिपासा शान्त करने की प्रवृत्ति कही भी दृष्टिगोचर नहीं होती। विशुद्ध श्रृङ्गार के साथ साथ कृष्ण-भक्ति की उत्ताल तरगें इनकी कविता म प्रवाहित हो गई है और उसमे कुछ ऐसा माधुर्य्य, ऐसा रस एव जादू है कि जो कोई उसे एक बार भी पढ लेता है वह

सदेव के लिए नागरीदास का बन जाता है। नागरीदास नैसर्गिक कवि थे। इनकी कविता में न तो परिश्रम की झलक है, न दूर की कौड़ी लाने का प्रयत्न और न पाण्डित्य-प्रदर्शन की रुचि। सीधी बात को सीधे ढग से कह-कर इन्होंने हृदय की सुकुमार वृत्तियों को छेड़ने का उद्योग किया है। भाषा और भाव दोनों में सादगी, सहृदयता और प्रेम-जनित मस्ती है। दोनों ही बड़े प्रेम से गले मिले हुए हैं। उदाहरण—

सवैया

देवन के औ रमापति के दोऊ धाम की वेदन कीन बड़ाई।
शख रु चक्र गदा पुनि पद्म स्वरूप चतुरभुज की अधिकाई॥
अमृत पान विमानन बैठवौ नागर के जिय नेक न भाई।
स्वर्ग बैकुंठ मे होरी जो नाहीं, तो कोरी कहा लै करै ठकुराई॥

भादों की कारी अँध्यारी निसा झुकि बादर मंद फुही बरसावै।
स्यामाजू आपनी ऊँची अटा पै छकी रस रीति मलारहि गावै॥
ता समै मोहन के दृग दूरतें आतुर रूप की भीख यों पावै।
पौन मया करि घूघट टारि दया करि दामिनि दीप दिखावै॥

कवित्त

गहिबो अकासन को लहिबो अथाह थाह,
अति विकराल व्याल कलि को खिलायबो।
ढाल तलवार औ तुपक पर हाथ थान,
गज मृगराज दोनु हाथन लरायबौ॥
गिरते गिरत पच ज्वाल मे जरत पुनि,
कासी मे करौत तन हिम मे गरायबौ।
विषम विष पीवौ कछु कठिन न नागर कहै,
कठिन कराल एक नेह को निभायबौ॥

पद

दरपन देखत, देखत नाहीं।
बालापन फिरि प्रगट स्याम कच, बहुरि स्वेत ह्वै जाहीं॥
तीन रूप या मुख के पलटे नहिं अयानता छूटी।
नियरे आवत मृत्यु न सूझत, आँखें हिय की फूटी॥

कृष्ण भक्ति-सुख लेत न अजहूँ, वृद्ध देह दुख-रासी ।
'नागरिया' सोई नर निहचै, जीवत नरक-निवासी ॥

दोहा

मुख मुदे रहु मुरलिया, कहा करत उतपात ।
तेरे हॉमी घर बसी, औरन के घर जात ॥
बाजे मति मति बॉसुरी, मति पिय अधरन लागि ।
अरी घर बसी देत क्यो, राम राम मे आगि ॥
पीय लियो पिय मन लियो, लियो अधर रस भूम ।
इतौ लयो तै कहा दियो, बैरनि बसी सूम ॥
गाठ गठीले बॉस की, महा द्रोह की खान ।
मति मारै री मुरलिया, तानन विष के वान ॥

ये जोधपुर राज्य के घड़ोई ग्राम के रहनेवाले रत्नू शाखा के चारण थे। इनका जन्म स० १७४५ मे और देहावसान स० १७९२ मे हुआ था।

वीरभाण — इनका लिखा 'राजरूपक' डिंगल भाषा का एक सुप्रसिद्ध ग्रथ है जो नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, द्वारा प्रकाशित भी हो चुका है। इसका मुख्य विषय जोधपुर के महाराजा अभयसिह और गुजरात के सूबेदार शेर विलदखॉ की लड़ाई है जो स०१७८७ मे अहमदाबाद मे हुई थी और जिसमे शेर विलदखा परास्त हुआ था। परन्तु महाराजा अभयसिंह के पिता महाराजा अजीतसिंह और दादा महाराजा जसवतसिह की जीवन-घटनाओं पर भी इसमे खूब प्रकाश डाला गया है। उल्लिखित अहमदाबाद की लड़ाई में वीरभाण महाराजा अभयसिह के साथ थे। अतः इस ग्रथ मे उन्होंने इस युद्ध का अपनी ऑखो देखा वर्णन किया है। राजरूपक की एक बहुत बडी विशेषता यह है कि इसमें घटनाओं के ठीक-ठीक सवत् और युद्ध मे भाग लेने वाले सरदार-सामतों आदि के नाम भी दिए गए हैं जो बहुत उपयोगी हैं। ग्रथ ४६ प्रकाशों मे विभक्त है। इसका ऐतिहासिक मूल्य यथेष्ट है। भाषा इस तरह की है—

सुदर भाल विसाल, अळक सम माळ अनोपम ।
हित प्रकास म्रदु हास, अरुण वारिज मुख ओपम ॥
क्रपा-धाम नव कज, नयन अभिराम सनेही ।
रुचि कपोळ ग्रीवा त्रिरेख, छबि वेस अछेही ॥
निरखत सत सनमुख निजर, करण पुनीत सुप्रीत कर ।
गुण मान दान चाहै सु ग्रहि, कवि सुग्यान औ ध्यान धर ॥

ये कविया शाखा के चारण मेवाड राज्य के शूलवाडा गाँव के निवासी थे। कर्नल टॉड ने इन्हे कन्नौज का और प०रामकर्ण जी आसोपा ने आल्हावास का चारण बतलाया है जो गलती है। ये जोधपुर के

करणीदान महाराजा अभयसिंह के आश्रित थे। इनका रचना काल स० १८०० के आस-पास है। इन्होने सूरजप्रकास नाम का एक ग्रथ रचा जिसमे ७५०० छद हैं। इसकी रचना मे प्रसन्न होकर उक्त महाराजा ने इनको लाखपसाव दिया और इनका इतना मान बढाया कि इन्हे हाथी पर सवार किया और स्वय घोडे पर चढकर उनकी जलेब (हाजिरी) मे चले और उनको अपने घर पहुँचाया। इस विषय का यह दोहा प्रसिद्ध है—

अस चढियौ राजा अभौ, कवि चाढै गजराज।
पोहर हेक जलेब मे, मौहर चले महराज।

सूरजप्रकास डिंगल भाषा का एक बहुत उत्तम कोटि का ग्रथ है। यह चारण काव्य-परपरा का अच्छा प्रतिनिधित्व करता है। विषय इसका भी लगभग वही है जो पूर्वोक्त वीरभाण कृत राजरूपक का है। परन्तु भाषा, साहित्य एव विषय-विस्तार की दृष्टि से यह उससे अधिक पूर्ण है। महाराजा अभयसिंह को सुनाने के लिए करणीदान ने सूरजप्रकास का साराश एक दूसरे छोटे ग्रथ के रूप मे लिखा था जिसका नाम विडद सिणगार है। इसमे १२६ पद्धरी छद हैं। रचना यह भी उत्कृष्ट है। इनकी कविता का नमूना लीजिए—

कालिका हक्कि डबरूक हार। हर रिष मिलि जोगणि वीर हाक ॥
लख लख्ख अरावा धोमि लागि। ऊछळिया गोळा चोळ आगि ॥
जळधर अग्राज चढि धोम जोर। घण निसा अमावस तिमिर घोर ॥
पखरैत मिडज जरदैत पूर। सवार हुवै अणपार सूर ॥
छुटै अम्होसम्ह कुहुकबाण। पमगा गज सुभडा उडै प्राण ॥
पग हाथ उडै धड सीस पाट। आहुडै क्रोध पौरिस उपाट ॥
हाकलै भडा जैचद अथाह। सुरताण सात पर तेज साह ॥
तन फूटि पडत तडफडत ताय। लख हेक जाणि लोटण लुटाय ॥
पाळि सोक भयकर उडि पखाळ। काळि मे जाणि घण प्रलयकाळ [१५]॥

१५-रिष = ऋषि, नारद। अरावा=तोपें। अग्राज=गर्जना। पखरैत=पाखरवाले। मिडज=घोडे। जरदैत=कवचयुक्त। पमगा=घोडे। आहुडे=लडते है। लोटण=कबूतर। पखाल=गीध आदि पक्षी।

ये पुष्कर क्षेत्र के रहनेवाले गौड ब्राह्मण थे और स० १७६५ में पैदा हुए थ। श्रीराधावल्लभीय गोस्वामी हितरूपजी इनके गुरु थे। इनके माता, पिता आदि के सम्बन्ध मे कुछ ज्ञात नहीं है। नागरीदास के भाई हित वृन्दावनदास बहादुरसिंह इन्हें बहुत मानते थे। इसलिए ये प्राय किशनगढ ही मे रहा करते थे। पर बाद मे जब राजघराने मे राज्य सम्बन्धी झगडे उठ खडे हुए तब ये किशनगढ छोड कर वहा से वृन्दावन चले गए और अन्त समय तक वहीं रहे। स० १८४४ तक की इनकी रची कविताएँ मिलती हैं पर इसके बाद की नहीं मिलती। इससे अनुमान होता है कि उक्त सवत् के आसपास किसी समय इन्होंने शरीर छोडा होगा।

वृन्दावनदास भगवान श्री कृष्ण के अनन्य उपासक थे। इन्होंने कृष्ण-लीला विषयक छोटे-बडे कई ग्रथ बनाए जिनके नाम ये हैं—

(१) कृष्ण गिरि पूजन वेलि (२) श्री हितरूपचरित वेलि (३) भक्तिप्रार्थनावली (४) चौबीस लीला (५) हिंडोरा (६) श्री ब्रज प्रेमानन्द सागर (७) कृष्ण गिरिपूजन मगल (८) हरिनाम महिमावली (९) हितहरिवश चन्द्रजू की सहस्र नामावली (१०) भाव विलास टीका (११) राधा सुधा निधि (१२) सेवक बानी (१३) रसिक यशवर्णन (१४) युगल प्रीतिपचीसी (१५) आनन्द-वर्द्धन वेलि (१६) नवम समय प्रवन्ध शृखला (१७) कृष्ण सुमिरन पचीसी (१८) कृष्ण विवाह उत्कठा (१९) रास उत्साह वर्द्धन (२०) इष्टभजन पचीसी (२१) जगनिर्वेद पचीसी (२२) पद (२३) प्रार्थनापचीसी (२४) राधाजन्म उत्सव वेलि (२५) वृषभानु जस पचीसी (२६) राधाबाल विनोद (२७) लाडली जी की जन्म बधाई (२८) हित कल्पतरु (२९) भक्त सुजस वेलि (३०) करुणा वेलि (३१) भँवर गीत (३२) लीला (इसमें छोटे-छोटे ४१ ग्रथ हैं) (३३) हरि कला वेलि (३४) लाड सागर (३५) सेवक जी की विरुदावली (३६) छद्म षोडशी (३७) रसिक अनन्य (३८) ख्याल विनोद (३९) व्रज विनोद (४०) वेलि (४१) हितरूप चरितावली (४२) सेवकजी की परिचर्यावली।

इनके सिवा इन्होंने अष्टयाम, समय प्रबन्ध, अष्टक वेलि, पचीसी आदि भी कई लिखे हैं।

इन्होंने श्रीकृष्ण के भोजन, शयन, रास आदि का बडा विशद वर्णन किया है। सब से बड़ी विशेषता जो इनकी रचना मे हमे दीख पडती है वह इनकी शुद्ध, सरल और व्यवस्थित व्रजभाषा है। इनकी पदावली में कान्ति, माधुर्य्य और कोमलता है। पद-विन्यास भी बहुत ललित है। भावुक कवि के

आराध्य देव के प्रति उठनेवाली भाव-तरंग का हृदयग्राही दृश्य इनकी कविता में हमें देखने को मिलता है। उदाहरण—

पद

(१)

सोभा केहि विधि बरनि सुनाऊँ।
इक रसना, सोउ लोचन-हीनी कहौ पार क्यों पाऊँ॥
अंग-अंग लावन्य-माधुरी बुधि बलि कितौ बताऊँ।
अतुलित सुनति कहि गये त्यों इग पल रजि धरिजु उचाऊँ॥
नव वय-सवि दुहुनि नित उलहत, जब देखौ तब औरै।
यहि कौतुक मेरी सुनि सजनी चित्त न रहत इक ठौरै॥
लोक न सुनी श्रवन नहिं देखी ऐसी रूप निकाई।
मेरी तेरी कहा चली, खग-मृग-मति प्रेम बिकाई॥
कबहूँ गौर स्याम तन कबहूँ, लोचन प्यासे धावैं।
कह घटि जात सिंधु कौ, पछी जो चौंचन भरि लावैं॥
सुदरता की हद मुरलीधर, बेहद छवि श्रीराधा।
गावें वपु अनन्त धरि शारद, तऊ न पूजै साधा॥
न्याइ काम करवट ह्वै निकसत, पिय अरु रूप गुमानी।
'वृन्दावन' हितरूप, किशोरी बस, सो कानन की रानी॥

(२)

प्रीतम, तुम मो दृगनि बसत हौ
कहा भरोसे ह्वै पूछत हौ, कै चतुराई करि जु हँसत हौ?
लीजे परखि स्वरूप आपनो, पुतरिन मे तुमहीं जु लसत हौ।
वृन्दावन हितरूप, रसिक तुम, कुंज लडावत हिय हुलसत हौ।

हिन्दी के वीर रस के कवियों में सूदन का स्थान बहुत ऊँचा माना गया है। कोई-कोई तो चन्द बरदाई के बाद इन्हीं को वीर रस का सर्वोत्कृष्ट कवि मानते हैं। पर दुःख है कि इनके व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में हिन्दी समाज को बहुत कम बात अभी तक मालूम हुई हैं। इनके रचे 'सुजान-चरित्र' ग्रंथ से भी केवल इतना ही सूचित होता है कि ये जाति के माथुर एवं मथुरा के निवासी थे और इनके पिता का नाम बसन्त था—

सूदन

मथुरापुर सुभ धाम, माथुर कुल उतपत्ति वर ॥
पिता बसन्त सुनाम, सूदन जानहु सकल कवि ॥

सूदन भरतपुर के राजा सूरजमल उपनाम सुजानसिंह के आश्रित थे। इन्होंने 'सुजान-चरित्र' नामक एक ग्रथ बनाया जिसमे सूरजमल के युद्धो का वर्णन है और स० १८०२ से स० १८१० तक की घटनाएँ कही गई हैं। ग्रथ सात जगो मे विभक्त है। प्रत्येक जग मे कई अक हैं जिनको किसी खास नियम के अनुसार नहीं रखा गया है। स्वर्गीय पडित रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि सूरजमल की वीरता की जो घटनाएँ कवि ने 'सुजान चरित्र' मे वर्णित की हैं वे कपोल-कल्पित नहीं, ऐतिहासिक हैं। परन्तु उनका यह कथन ठीक नहीं है। क्योंकि इसमे अनेक ऐसी बाते लिखी मिलती हैं जो वास्तविकता से बहुत दूर हैं। उदाहरण के लिए एक स्थान पर सूदन ने सूरजमल का मेवाड को जीतना लिखा है जो बिलकुल निर्मूल है। सच तो यह है कि मेवाड़ के किसी महाराणा का कोई युद्ध ही सूरजमल के साथ नहीं हुआ। हार-जीत तो बहुत दूर की बात है।

सूदन की भाषा पिंगल है जिस पर पूरबी-पजाबी का भी पुट लगा हुआ है। केशवदास की तरह इन्होंने भी छन्द बहुत जल्दी-जल्दी बदले हैं और जिस स्थान पर जिस छन्द का प्रयोग किया है वहाँ छन्द-शास्त्र के नियमो का पूरी तरह से पालन किया है। अतएव एक तो छन्दोभग इनकी कविता मे बहुत कम है दूसरे, गति भी अच्छी है। इनकी वर्णन-शैली साधारण रूप से सजीव एव कविता ओजस्विनी है, पर जैसा कि युद्ध की तैयारी के समय हथियारो तथा दिल्ली की लूट के समय बाजार के वर्णन में देखा जाता है, वस्तुओं की नामावली प्रस्तुत करने में कहीं-कहीं ये इतने आगे बढ गए हैं कि पढते-पढते जी ऊब जाता है। इनकी कविता का थोडा-सा अश यहाँ देते हैं—

जुटे रुहेले जट्टही। न कोई वीर हट्टहीं ॥
सु एक एक डट्टहीं। झपट्टहीं लपट्टहीं ॥
अनेक अग्ग बाहहीं। कितेक मार छाँहही ॥
किते परे कराहहीं। हकार सौं रपट्टहीं ॥
कहूँक हथ्थ हथ्थहीं। भरै कहूँक बथ्थहीं ॥
परे सु लथ्थपथ्थहीं। सपट्टि कै चपट्टहीं ॥

उताल चाल हाल सौ। धवत कोह ज्वाल सौ ॥
गहै कृवाल ढाल सौं। अरीनु कौ कपट्टही ॥
धमकि धिंम धावहीं। तमकि तेग आवहीं ॥
झमकि कै चलावहीं। बुलावहीं बल्लकि कैं ॥
कटत कध कुडला। छटत वाहु डुडला ॥
फटत पेट रुडला। ढुलावहा ढलकि कैं ॥
लरैं कहूँ छुरा छुरी। परें कबन्ध रातुरी ॥
कितेक टूटि जाबुरी। हुलावहीं हलकि कैं ॥
भलकि भाल भालहीं। झलकि झाल झालहीं ॥
गलकि घाव घालहीं। बुलावहीं घलकि कैं ॥

लुटियौ लडुआ बहु भाँतिन के। नुकती अरु मोदक पाँतिन के ॥
कलकद सुमैथिय मूग दला। सिमई मतसूत मगद्द भला ॥
सुठि सेव सु औरिहुँ गौदगिरी। खुरमा मठरी भरि ली गठरी ॥
गुप-चुप्प गुना गुल पापरियाँ। खजला सु खजूरि खडापरियाँ ॥
अमृती रु जलेबिनु पुंज लुटे। खिरसादर भिस्ति चुटे सुफुटे ॥
गुझिया गुलकद गुलाब करी। तिरकौनु सुहागिन मोट भरी ॥
बहु घेवर बावर मालपुवा। अरु सेव कचोरिन लेत हुवा ॥
हलुआ हिसमी बहु फेननु की। कतरी रसना-सुख चैननु की ॥
कहुँ लेत निवात बतासन कौं। सु गिंदौरन ए रनवासिन कौं ॥
अरु खोवन ढेर बखेर दए। बहु खाड खिलोनन लेत भए ॥
अरु लाद्दचदाननु गोद भरें। दधि दूधन के परसाद करैं ॥
कुजतीतिल सक्कर रेवरियाँ। बहु पाक पुडार जु सेवरियाँ ॥
पकवान जथा रुचि और घना। बुहरी परमल्ल सुखोल चना ॥

ये मेवाड के महाराणा जगतसिंह (दूसरे) के आश्रित कवि जाति के ब्राह्मण थे। इनके 'शिकारभाव' और 'जगविलास' नाम के दो ग्रंथ मिले हैं जो क्रमश: सं० १७६० और सं० १८०२ में लिखे गये थे। 'शिकार भाव' में महाराणा जगतसिंह की शिकार का और 'जगविलास' में उनकी दिनचर्य्या, राज्यवैभव तथा जग-निवास महल की प्रतिष्ठा आदि का सविस्तर वर्णन है। ये दोनों ग्रंथ पिंगल में हैं और साहित्यिक दृष्टि से उच्चकोटि के होने के साथ-साथ इतिहास की दृष्टि से भी बड़े महत्व के हैं। उदाहरण—

नन्दराम

इक्क समय दीवान, मौज दरियाव नाव मधि।
राजत सकल समाज, रूप रतिराज सु बिधि बिधि ॥
इत जलमंदिर निरखि, सरस सुन्दर सर राजै।
उत जगमंदिर जात, वरा सारा सिरताजै ॥
दुहु बीच ठार सरसा सरस, या तैं यह पुनि काजियै।
सब दिखै जिते माँहै जगत, आप पेखि मन रीझियै ॥

ये साँदू शाखा के चारण जोधपुर के महाराजा अभयसिंह के आश्रित थे। इन्होंने महाभारत के अठारह पर्वों का सारांश डिंगल भाषा में लिखा, जो 'भाषा भारथ' के नाम से प्रख्यात है। यह लगभग

खेतसी

तेरह हजार छन्दों का एक भारी ग्रंथ है। इसमें मोतीदाम, हनूफाल, दोहा, छप्पय इत्यादि विविध प्रकार के छन्द प्रयुक्त हुए हैं। इसका रचना-काल सं० १७६० है। ग्रंथ डिंगल भाषा के प्रथम श्रेणी के ग्रंथों में गणना करने योग्य है। इसकी भाषा का नमूना लीजिए—

वदव्यास धुरि वरिणि, अनन्त अवतार उदारह।
कजि ससारि उवारि, वद किय चार प्रकारह ॥
जे भारथ भाषियौ, निगम पचह्मा वायण।
जगत हेत जुग कियो, वळे भागवत पुरायण ॥
सति मात सतो पित धूम जिह, सतांत सुप वाचा विमळ।
जिह कियौ पर्गापत त्रिपत कूँ, नभगामी रिष श्राप कळि ॥

ये दोनों अहमदाबाद के रहनेवाले थे। इनमें दलपतिराय जाति के महाजन और बंसीधर ब्राह्मण थे। मेवाड़ के महाराणा जगतसिंह (द्वितीय) की आज्ञा से इन्होंने 'अलंकार-रत्नाकार' नामक एक ग्रंथ

दलपतिराय और बंसीधर

सं० १७९८ में बनाया जो पहले-पहल सं० १९३८ में उदयपुर के राज्य यन्त्रालय से प्रकाशित हुआ था। इसमें अलंकारों का सोदाहरण विवेचन है और अलंकार विषयक कुछ बातों को पद्य के साथ-साथ गद्य में भी समझाने का उद्योग किया गया है। यह एक तरह से महाराजा जसवंतसिंह कृत 'भाषा भूषण' की टीका है। ग्रन्थारम्भ में लिखा है कि कुवलयानन्द का अर्थ तो दलपति राय ने किया और कवित्त बंसीधर ने बनाये। पर दलपतिराय के रचे कवित्त

सवैये भी इसमें बहुत है। इससे मालूम होता है कि ये दोनो ही अच्छे कवि थ, दोनो को अलकारो का अच्छा ज्ञान था, और दोनो ने संस्कृत-हिन्दी के प्रधान-प्रधान आचार्यो के अलकार-ग्रथो का गहरा अध्ययन किया था। इनकी रचनाएँ सुरुचिपूर्ण, सरल एव कला समन्वित है और दोनो के काव्य-नैपुण्य का परिचय देती हैं। उदाहरण—

अलकैं अति लाल अमाल महा, चल कुडल जोत छटा बरसैं।
चल हार हियैं विथुर्‌यो कचभार औ स्वेद कपोलन पैं दरसैं॥
अति लेत उसास विलास महा चल चारु नितंबन कौं सरसैं।
सिख धन्य हैं पीमत दार जुनार अमद अनद भरें परसैं॥

—दलपतिराय

हौ नवला तुन रग रग्या नव पल्लव कौ तुहि रग दियौ हैं।
दोउन कौ तन बीर मनो मन चाप शिलामुख छाय लियौ हैं॥
लागत नारि कौ पाय दुहूँन के मोह महा जुत होत हियौ हैं।
मोहि ससोक कियौ इहिं लोक मे ताहि असोक असोक कियो हैं॥

—बसीधर

देवकर्ण

ये कायस्थ जाति के कवि मेवाड के महाराणा जगतसिंह (द्वितीय) के दीवान थे। इनका रचनाकाल स० १८०३ है। इनके पिता का नाम हरनाथ और दादा का मनीदास था। इन्होंने 'वाराहपुराण' के काशीखड के आधार पर एक बहुत बड़ा ग्रथ रचा जिसका नाम 'वाराणसी-विलास' है। यह ग्रथ स० १८०३ मे बना था। इसके रचना-काल का दोहा यह है—

आश्विन कृष्णा अनग तिथि, अट्ठारह सै तीन।
उदियापुर सुभ नगर मे, उपज्यौ ग्रथ नवीन॥

वाराणसी-विलास पिंगल भाषा मे रचा गया है। इसमे ४०५२ छद हैं। ग्रन्थ तीस विलासो मे विभक्त है। इसमे दोहा, सोरठा, छप्पय, गीतिका त्रोटक, तोमर आदि अनेक छदो का प्रयोग किया गया है। ग्रन्थारभ मे कवि ने मेवाड़ का सक्षिप्त इतिहास और थोडा-सा अपना परिचय दिया है। फिर मुख्य विषय आरभ होता है। बहुत प्रौढ एव प्रशसनीय रचना है।

उदाहरण— न

महारान जगतेस सुहायौ । जगनिवास मधि ता यै लव ॥
सीस महल अनमित चित्रसारी । देवदारु मय अमित किंवारी ॥
बुरजे गौख चादिनी चौरी । चढि अराम मुकता रग धौरी ॥
रगि तरहट बहैं सक धारी । अहि निसि सुभग सींचियतु क्यारी ॥
सब रितु तहाँ बसत हि मानौं । इमि जगमहल सुगधनि सानौं ॥

हरिचरणदास ये किशनगढ के रहनेवाले जाति के ब्राह्मण थे। इनका जन्म स० १७६६ मे और मृत्यु स० १८३५ मे हुई थी। इन्होंने केशवदास कृत रसिक-प्रिया एव कवि-प्रिया, बिहारीलाल कृत सतसई और महाराजा जसवन्तसिंह कृत भाषा भूषण की टीकाएँ लिखीं। इनके अतिरिक्त इन्होंने दो स्वतत्र ग्रन्थ भी रचे थे. सभा प्रकाश और बृहत्कविवल्लभ। ये बहुत उच्चकोटि के कवि थे। इनकी भाषा ब्रजभाषा है। कविता बहुत रसीली, प्रौढ़ एव भावमयी है। उदाहरण—

आनद कौं कद वृषभानुजा को मुख-चद
लीला ही तैं मोहन क मानस को चोरे है।
दूजो तैसो रचिबै कौ चाहत विरचि नित
ससि कौ बनावैं अजौं मनकौं न मारे हैं ॥
फेरत हैं सान आसमान पैं चढाय फेरि
पानप चढाइबे कौ वारव मे बौरे हैं।
राधिका को आनन के जोट न विलोकै विधि
टूक टूक तौरै पुनि टूक टूक जोरै है।

सुन्दरकुवरि ये किशनगढ के महाराजा राजसिंह की पुत्री थीं। इनका जन्म स० १७९१ में हुआ था। सुप्रसिद्ध भक्त कवि नागरीदास इनके भाई थे। जब बाईजी चौदह वर्ष की थी तब इनके पिता की मृत्यु हो गई थी और तदनन्तर इनके भाइयों में किशनगढ़ के राजसिंहासन के लिए झगड़े होने शुरू हो गए थे, इसलिये इनका विवाह न हो सका और ३१ वर्ष की उम्र तक ये कुँवारी रहीं। बाद मे जब इनके भतीजे सरदारसिंह गद्दी पर बैठे तब उन्होंने इनका विवाह राघौगढ के राजा बलभद्रसिंह के कुवर बलवन्तसिंह के साथ किया। बाई जी का देहान्त स० १८५३ के लगभग हुआ था।

सुन्दर कुंवरि बाई साहित्यिक वायु-मडल में पली थीं और कविता इनकी पैतृक सम्पति थी। इनके पिता राजसिंह, माता ब्रजदासी, भ्राता नागरीदास

और भतीजी छत्रकुवरि बाई सभी साहित्य रुचि-सम्पन्न एव प्रकृष्ट कवि थे। इस वातावरण मे इन्हे सत्काव्य-रचना मे बडी सहायता मिली। पन्द्रह वर्ष की आयु मे बाईजी बहुत अच्छी कविता करने लग गई थी और बाद मे तो काव्य रचना का इन्हे ऐसा व्यसन पड गया था कि जिस दिन थोडा-बहुत भी नहीं लिख लेती, इन्हे कल न पडती थी। इन्होंने ग्यारह ग्रन्थो की रचना की जिनके नाम ये हैं—

(१) नेह निधि (२) वृन्दावन गोपी माहात्म्य (३) सकेत युगल (४) रस-पुंज (५) गोपी माहात्म्य (६) रस-पुज (७) प्रेम-सपुट (८) सार-सग्रह (६) भावना-प्रकाश (१०) राम-रहस्य (११) पद तथा स्फुट कवित्त।

सुदर कुवरि बाई की कविता मे भक्ति और प्रेम का प्राधान्य है। इनकी रचना से स्पष्ट विदित होता है कि रस, छद, अलकार आदि का इन्हें प्रौढ ज्ञान था, और भाषा तथा भाव के सामञ्जस्य को अच्छी तरह से समझती थीं। इनकी भाषा बड़ी शिष्ट, स्वच्छ एव सुव्यवस्थित है। इन्होंने काव्य के कला पक्ष तथा भाव पक्ष दोनो ही का बडी सुन्दरता से निर्वाह किया है। इनके दो कवित्त यहाँ दिए जाते हैं—

श्याम रूप-सागर मे नैर वार पारथ के
नचत तरंग अग - अग रगमगी है।
गाजन गहर धुनि बाजन मधुर वैन,
नागिन अलक जुग सोधै सगमगी है॥
भँवर त्रिभगताई पान पै लुनाई ता मैं,
मोती मणि जालन की जोति जगमगी है।
काम पौन प्रबल धुकाव लोपी पाज तातैं
आज राधे लाज की जहाज डगमगी है॥

गागरि गिरी हैं कोऊ सीस उघरी हैं कोऊ
सुध बिसरी हैं ते लगी हैं द्रुम डारि कै।
डगमग ह्वै के भुज धारी गर द्वै के काहू
वैठि गई कोऊ सीस मटकी उतारि कै॥
मैन-सर-पागि कोऊ घूमन हैं लागी कोऊ
मोती मणि भूषन उतारै डारैं वारि कै।
ऐसी गति हेरि इन्हे ग्वार कहैं टेरि टेरि,
मदन दुहाई जीति मदन मरारि कै॥

ये पाल्हावत शाखा के चारण थे। इनका जन्म जयपुर राज्यान्तर्गत हर्णूतिया नामक ग्राम में सं० १८०० में हुआ था। इनके पिता का नाम नाथनजी और दादा का कालीराम था। युवावस्था में उम्मेदराम को अलवर के राव राजा बख्तावरसिंह ने अपने यहाँ बुला लिया था और अच्छी जीविका प्रदान की थी। वहीं सं० १८७८ में इनकी मृत्यु हुई।

उम्मेदराम

उम्मेदराम डिंगल और पिंगल दोनों में सुमधुर एवं सरल कविता करते थे। इनके नीचे लिखे ग्रंथों का पता है—

(१) वाणी भूषण (२) राजनीति चाणक्य (३) रामचन्द्रजी की राजनीति (४) अवध पचीसी (५) मिथिला पचीसी (६) जनक शतक (७) बिहारी सतसई की टीका (८) कवि-प्रिया की टीका (९) मरसिया बख्तावरसिंह जी।

उम्मेदराम की भाषा मजी हुई और सरस है। उसमें अलंकार की छटा भी यत्र तत्र पाई जाती है। इनकी भावना सीधे हृदय को जाकर स्पर्श करती है। इनके जैसे कलात्मक और विचार-वैभव पूर्ण कविता करनेवाले कवि चारणों में बहुत थोड़े हुए हैं। इनके तीन दोहे नीचे उद्धृत किए जाते हैं :—

कारज आछौ औ बुरो, कीजै बहुत विचार।
कियै जलद नाहीं बनै, रहत हिये में हार॥
पर नारी सब मातु सम, पर धन धूलि समान।
सबै जीव निज जीव सम, देखै सो भगवान॥
इक तरु सूखे की अगनि, जारत सब बनराय।
त्योंही पूत कपूत तें, वंश समूल नसाय॥

ये आदि गौड़ कुलोत्पन्न अत्रि गोत्रीय ब्राह्मण थे और अपने समय के प्रसिद्ध कवि होने के सिवा अच्छे ज्योतिषी भी थे। इनके पिता का नाम बालकृष्ण था। अपने आश्रयदाता नीमराणा के अधिपति महाराज चन्द्रभानु की आज्ञा से इन्होंने हमीर रासौ लिखा, जो सं० १७८५ में समाप्त हुआ था—

जोधराज

चन्द्र नाग वसु पंच गिनि, संवत माधव मास।
शुक्ल त्रितिया जीव जुत, ता दिन ग्रन्थ प्रकास॥

हमीर रासो नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित हो चुका है। इसमें चौहाण-कुल-भूषण महाराज हमीर की वंशावली, उनका अलाउद्दीन से बैर, उनकी वीरता, उनके युद्ध-कौशल उनकी मृत्यु आदि का यथाक्रम तथा विस्तृत वर्णन है और लगभग १००० छन्दों में समाप्त हुआ है। रासो का ढाँचा ऐतिहासिक है पर काव्योपयोगी बनाने की लालसा से कवि ने कथा-वस्तु में परिवर्तन भी यत्र-तत्र किया है। हमीर का जन्म जोधराज ने सं० ११४१ में होना लिखा है, जो ठीक नहीं है। इसी प्रकार हमीर के आत्महत्या करने तथा अलाउद्दीन के समुद्र में कूदकर मरजाने की कथाएँ भी अनैतिहासिक और प्रमाण-शून्य हैं। हमीर रासो में जोधराज ने हमीर, अलाउद्दीन तथा महिमाशाह इन तीन व्यक्तियों के चरित्र को चित्रित करने का उद्योग किया है और इसमें इन्हें अच्छी सफलता मिली है, विशेषतः हमीर के चरित्र-चित्रण में। हमीर जैसे वीर और स्वदेशाभिमानी पुरुष का जिस ढंग से वर्णन होना चाहिए उसी ढंग से रासो में हुआ है। हमीर और अलाउद्दीन का स्वर्ग में सम्मेलन कराकर कवि ने पाठकों का ध्यान शायद हिन्दू-मुस्लिम एकता की ओर आकर्षित किया है। पर समझ में नहीं आता कि ऐसा करने से उनका वास्तविक अभिप्राय क्या था? यदि अलाउद्दीन जैसा नृशंस, हृदय हीन तथा पतित मनुष्य भी मरने के पश्चात् स्वर्ग में पहुँचता है तो फिर नरक है किसके लिए?

हमीर रासो एक वीररस प्रधान काव्य-ग्रन्थ है। पर शृंगार की अद्भुत छटा भी इसमें इधर-उधर दीख पड़ती है। इससे मालूम होता है कि जोधराज का शृंगार और वीर दोनों रसों पर अच्छा अधिकार था। इन्होंने प्रकृति-वर्णन तथा ऋतु वर्णन भी बहुत अच्छे ढंग से किया है। इनकी कविता देखिए—

मिले बंधु दोउ धाय। बहु हरष कीन सुभाय॥
अब स्वामि धर्म सुधारि। दोउ उठे वीर हँकारि॥
असमान लग्गिय सीस। मनौं उभै काल सरीस॥
इत कोप महिमा कीन्ह। हम्मीर नौन सु चीन्ह॥
उत मीर गभरू आय। मिलि सेख के परि पाँय॥
कर तेग वेग समाहि। रहि दूहूँ सेन सचाहि॥
कम्मान लीन सुहत्थ। जनु सार कार सुपत्थ॥
धरि स्वामि काज समत्थ। दोउ उभै जुद्ध स पत्थ॥

दुहुँ द्वन्द्व जुद्ध मुकीन। मनु जुटे मल्ल नवीन ॥
तरवारि बज्जिय ताय। मनु लगी ग्रीषम लाय ॥
करि चरण सीस रु हत्थ। परि लुत्थ जुत्थ सुतत्थ ॥
घमसान थान सु धीर। धर वरनि खेलत बीर ॥
गजराज लुट्टत भुम्मि। बहु तुरग परत सु झुम्मि ॥
बिय बीर वज्जिय मार। तरवार बरसहु धार ॥
दोऊ भ्रात स्वामि सकाम। जग में किये अति नाम ॥
दोहुँ बीर देखन दूर। चढ़ि गए सुख अति नूर ॥
दल दोय दिग्ग्वत बीर। पहुँचे विहस्त गहीर ॥
तजिये तप पावस वित्ति सव। ऋतु शारद बादर दीस अब ॥
सरिता सर निम्मल नीर वहैं। रस रग सरोज सुफुल्लि रहैं ॥
बहु खजन रजन भृग भ्रमैं। कलहस कलानिधि वेद भ्रमैं ॥
बसुधा सव उज्जल रूप किय। सित वासन जानि बिछाय दिय ॥
बहु भाँति चमेलिय फूलि रही। लखि मार सुमार सुदेह दही ॥
बन रास विलास सुवास भरैं। तिय काम कमान सुतानि धरैं ॥
श्रमणों पर तैं नर काम जगै। विरही सुनि कै उर घाव लगै ॥
धर अम्बर दीपक जोति जगी। नर नारि लखैं उर प्रीति पगी ॥

बूँदी-नरेश महाराव राजा बुधसिंह का जन्म स० १७४२ में हुआ था। अपने पिता राव राजा अनिरूद्धसिंह की मृत्यु के पश्चात् स० १७५२ में ये बूंदी की राजगद्दी पर आसीन हुए थे। बड़े वीर, रणपटु एव अपने वश गौरव के नाम पर मर-मिटनेवाले आत्माभिमानी पुरुष थे। औरगजेब की मृत्यु के बाद उसके दो बेटों, बहादुर शाह और आजम, में दिल्ली के राजसिंहासन के लिए जो सग्राम हुआ उसमे बहादुरशाह की विजय इन्हीं के कारण हुई थी। कर्नल टॉड के शब्दों में "केवल बुधसिंहजी के पराक्रम ही से शाह आलम अपने प्रतिद्वद्वियों को जीत कर दिल्ली के सिंहासन पर बैठ सका। कोटे के रामसिंहजी और दतिया के दल-पति बुदेला तोप के गोले से उड़ गए और शाहजादा आजम अपने बेटे केदार-बख्श समेत इस लडाई में बुधसिंहजी की तलवार खा कर सदा के लिए कबर में सो गया"। बुधसिंह का देहान्त स० १७६६ में अपनी सुसराल बेगू से तीन कोस की दूरी पर बाघपुर गाँव में हुआ था।

बुधसिंह

महाराव राजा बुधसिंह कला और सौन्दर्य्य के उपासक थे, साथ ही प्रतिभावान कवि भी थे। इन्होंने 'नेहतरग' नाम का एक रीतिग्रथ बनाया जो

अपने रग-ढग का अप्रतिम है। यह स० १७८४ मे रचा गया था जैसा कि इसके अन्तिम दोहे से सूचित होता है—

> नतरहसै चौरासिया, नवमी तिथि ससिवार।
> शुक्ल पक्ष भादौं प्रगट, रच्यो ग्रथ सुख सार ॥

'नेहतरग' चौदह तरगो मे विभक्त है। दोहा, कवित्त, सवैया, छप्पय आदि कुल मिलाकर ४४६ छदो मे यह समाप्त हुआ है। इसकी भाषा व्रजभाषा है। कविता शृगार रस स सराबार है। अत्यत सरस एव सराहनीय रचना है। उदाहरण—

> साजे सिगार सषीन की सगति देखी हुती वृषभान दुलारी।
> लालन चित्त घनैं ललचैं भुज भेटन कौ वढि बॉह पसारी ॥
> नैन की सैन निसक झुकी उझकी कटु बैन उचारत गारी।
> जानैं कहा चतुराई कौ जो रस आखर गारस बेचन हारी ॥

ये रत्नू शाखा के चारण कच्छ-भुज के राजा महाराव श्री देशल जी प्रथम (स० १७७४—१८०८) के महाराज कुमार लखपत जी के आश्रित थे।

हंमीर इनका जन्म जोधपुर राज्य के घड़ोई गॉव मे हुआ था। विद्या अध्ययन इनका कच्छभुज मे हुआ जहॉ भाट-चारणो के लिए उन दिनो विशेष सुविधा थी। इन्होने लखपत-पिगल, गुण पिंगल-प्रकास, हमीर नाममाला, जातिष जडाव, ब्रह्माण्ड पुराण, भागवत दर्पण इत्यादि बाईस ग्रथ बनाए जिनमे लखपत-पिगल इनकी सर्वोपयोगी रचना है। यह डिगल के छन्दशास्त्र का ग्रन्थ है। इसकी रचना स० १७६६ मे हुई थी—

> सवत सत्तर छिनुओ प्रणॉ तस वरस पटतर।
> तिथि उत्तिम सातिम्म वार उत्तिम गुरु वासर ॥
> माह मास व्रतमान अरक बैठौ उतराइणि।
> सुकल पष्य रिति सिसिर महा सुभ जाग सिरोमणि।
> विसतार गाह मात्रा वरण सुजि पसाउ सरसत्ती रौ ॥
> कहियौ हमीर चित चोजि करि पिगल गुण लखपत्ति रौ ॥

लखपत पिगल मे चार प्रकरण हैं जिनमे क्रमश. वार्णिक छन्दों, मात्रिक छन्दों, गाहा छद के विविध भेदो और गीतो की विविध जातियों का सविस्तर

वर्णन किया गया है। कुल मिलाकर ४६६ छंदों में ग्रन्थ समाप्त हुआ है। पहले छंद का लक्षण देकर फिर उदाहरण दिया गया है जिसमें महाराज कुमार लखपत जी की प्रशंसा की गई है। भाषा-रचना इस ढंग की है—

> महादेव सुत करि महर, गणपति सुमति गभीर।
> कुअर वखाणा कुल तिलक वजवनी लखधीर ॥ १ ॥
> अति उत्तिम दीजे उकति सरसति ह्व सुप्रसन्न।
> गाओ लखपना गुणों, महिपति वड मन्न ॥ २ ॥
> किया छंद पिंगल कवि के हजार लख कोडि।
> आखाँ हूँ तिण ऊपरे, जाति अमोलिक जाडि ॥ ३ ॥

सोमनाथ

ये माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मण थे। इनका रचना काल सं० १७६०—१८१० है। ये भरतपुर के महाराज बदनसिंह के आश्रित थे, जिन्होंने इनको राज्याचार्य, दानाध्यक्ष आदि के पद दे रखे थे। संस्कृत—हिंदी के प्रकांड पंडित होने के अतिरिक्त ये ज्योतिष एवं काव्य-रचना में भी परम प्रवीण थे। इनके रचे ग्रंथों के नाम ये हैं—

(१) रस पीयूष निधि (२) सुजान विलास (३) माधव विनोद (४) कृष्ण लीलावली (५) पंचाध्यायी (६) दशम स्कंध भाषा (७) ध्रुव विनोद (८) राम कलाधर (९) वाल्मीकि रामायण (१०) अध्यात्म रामायण (११) अयोध्याकांड (१२) सुन्दरकाण्ड (१३) व्रजेन्द्र विनोद (१४) रस विलास (१५) रामचरित्र रत्नाकर।

सोमनाथ व्रजभाषा में कविता करते थे। इनकी भाषा बहुत कर्णमधुर, सरस और सीधी-सादी है। कविता साहित्यिक दृष्टि से निर्दोष, भावपूर्ण और रसीली है। एक उदाहरण दिया जाता है—

> दिसि विदिसनि तें उमडि मढि लीनो नभ,
> छाँडि दीने धुरवा जवासै-जूथ जरिगे।
> डहडहे भये द्रुम रंचक हवा के गुन,
> कहूँ कहूँ मोरवा पुकारि मोद भरिगे ॥
> रहि गए चातक जहाँ के तहाँ देखत ही,
> सोमनाथ कहै बूँदाबाँदी हू न करिगे।

सोर भयो घोर चहुँ ओर महि मण्डल में,
आए घन आए घन, आयकै उघरिगे ॥

जयपुर नगर के बसानेवाले महाराजा सवाई जयसिंह से तीसरी पीढी मे महाराजा माधवसिंह हुए जिनके दो पुत्र थे, पृथ्वीसिंह और प्रतापसिंह। पृथ्वीसिंह का जन्म स० १८१६ मे और प्रतापसिंह का स० १८२१ मे हुआ था। माधवसिंह के बाद पृथ्वीसिंह जयपुर के उत्तराधिकारी हुए। परन्तु स० १८३३ मे इनकी अकाल मृत्यु हो गई। इनके कोई सतान न थी, इसलिए प्रतापसिंह को राज्याधिकार प्राप्त हुआ।

प्रतापसिंह

महाराजा प्रतापसिंह के समय मे मरहठो का राजस्थान मे बडा आतंक और जोर था। इसलिए उनका दमन करने के लिए महाराजा को कई युद्ध करने पड़े और दो-एक बार इन्होंने उन्हे पराजित भी किया। पर राजपूतों की अनेकता तथा अन्तः कलह के कारण राजस्थान का राजनैतिक वातावरण उस समय कुछ ऐसा विगडा हुआ था कि इन्हे अपने प्रयत्न मे स्थायी सफलता न मिली। निरतर युद्ध मे लगे रहने के कारण इनकी धन-जन से ही हानि नहीं हुई, बल्कि इनके स्वास्थ्य को भी भारी धक्का पहुँचा और अत में स०-१८६० में इनके जीवन का अतिम अभिनय हो गया।

के बड़े मिलनसार, हँसमुख एव गुणग्राही थे और काव्य, सगीत, चित्रकारी आदि कलाओं के सरक्षक थे। कवियो, विद्वानो, और गायकों का इनके दरबार में बडा सम्मान होता था। इन्होंने आईने-अकबरी, दीवाने हाफिज आदि ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद करवाया और ज्योतिष, धर्मशास्त्र, वैद्यक, सगीत आदि विषयों पर भी बहुत से ग्रन्थ लिखवाए, जो जयपुर के राज पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। इनके सिवा इन्होंने कविता के सग्रह ग्रथ भी बहुत से तैयार करवाए थे, जिनमे 'प्रताप वीर हजारा' और 'प्रतापसिंगार हजारा' मुख्य हैं।

महाराजा स्वय भी बहुत अच्छी कविता करते थे। इन्होंने बहुत से ग्रन्थ बनाए जिनका काव्य-प्रेमियो मे बडा आदर है। कविता में ये अपना नाम 'ब्रजनिधि' लिखते थे। इनके ग्रन्थो के नाम नीचे दिए जाते हैं। ये सभी ग्रथ नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा 'ब्रजनिधि-ग्रथावली' के नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। ग्रथों के नाम ये हैं—

(१) प्रीतिलता (२) स्नेह सग्राम (३) फाग रग (४) प्रेम प्रकाश (५) विरह सलिता (६) स्नेह बहार (७) मुरली विहार (८) रमक-जमक बत्तीसी (९) रास का रेखता (१०) सुहाग रैन (११) रग-चौपड (१२) नीति मजरी (१३) शृगार मजरी (१४) वैराग्य मजरी (१५) प्रीति पच्चीसी (१६) प्रेमपथ (१७) ब्रज शृगार (१८) श्री ब्रजनिधि मुक्तावली (१९) दुख हरण वेलि (२०) सोरठा ख्याल (२१) ब्रजनिधि पद सग्रह (२२) हरि पद सग्रह (२३) रेखता सग्रह।

ब्रजनिधि की भाषा ब्रजभाषा है और कविता के विषय हैं—शृगार, नीति और वैराग्य। इनकी कविता बहुत सरल, परिमार्जित एव उल्लास-पूर्ण है। वर्णन-शैली बहुत सहज और मार्मिक है। कृष्ण-लीला के विविध दृश्य जो इन्होने अकित किए हैं वे बहुत मर्य्यादा-पूर्ण तथा लोक-रजककारी हैं, और उनसे इनकी अखड कृष्ण-भक्ति ही झलकती है। पर राधा के चित्राकन से इनकी इन्द्रिय-लिप्सा व्यजित होती है। ब्रजनिधि की राधा एक भक्त कवि की राधा नहीं, वरन किसी कामुक शृगारी कवि की राधा प्रतीत होती है। इनकी दो कविताएँ यहाँ उद्धृत करते हैं—

विधि वेद-भेदन बतावत अखिल बिस्व,
पुरुष पुरान आप धारयौ कैसौ स्वाग वर।
कइलास वासी उमा करति खवासी दासी,
मुक्ति तजि कासी नाच्यौ राच्यौ कैयो राग पर॥
निज लोक छाँड्यौ ब्रजनिधि जान्यौ ब्रजनिधि,
रग रस बोरी सी किसोरी अनुराग पर।
ब्रह्मलोक वारौं पुनि शिवलोक वारौ और,
विष्णु लोक वारि डारौ होरी ब्रज फाग पर॥

राधे बैठी अटारियाँ, झाँकत खोलि किवार।
मनौ मदन गढ तैं चली, द्वै गोली इकसार॥
द्वै गोली इकसार, आनि आँखिन मे लागीं।
छेदे तन-मन-प्रान, कान्ह की सुधि बुधि भागीं॥
ब्रजनिधि है बेहाल, विरह बाधा सौ दाधे।
मद मद मुसकाइ, सुधा सौं सींचति राधे॥

इनका रचना काल स० १८६५ के आसपास है। ये जोधपुर राज्य के गाँव खराड़ी के निवासी खिड़िया शाखा के चारण थे। इनके पिता का

कृपाराम

नाम जगराम था। बडे होने पर ये सीकर के रावराजा लक्ष्मणसिंह के पास चले गए और अत समय तक वहीं रहे। इनको ढाणी गाँव मिला जो 'कृपाराम की ढाणी' के, नाम से मशहूर है।

राजिया के नाम से जो सोरठे राजस्थान मे प्रचलित हैं वे कृपाराम के बनाए हुए हैं। राजिया इनका नौकर था। उसी को सबोधित करके ये सोरठे कहे गए हैं।

कृपाराम रचित इन सोरठो की सख्या १७५ के लगभग है। इनमे नीति और उपदेश की बाते कही गई हैं। भाषा इनकी डिंगल है। प्रासाद गुण युक्त होने से अपढ लोग भी इन सोरठो का मर्म समझ लेते हैं और बात-बात में इनका प्रयोग करते हैं।

कहा जाता है कि इन फुटकर सोरठो के अतिरिक्त कृपाराम ने 'चालक-नेसी' नामक एक नाटक और अलकारो का एक ग्रन्थ भी बनाया था। परन्तु इनका पता नही लगता। राजिया के कुछ सोरठे यहाँ दिए जाते हैं—

कारज सरै न कोय, बळ प्राक्रम हीमत बिना।
हलकारयाँ की होय, रंग्या स्याळाँ राजिया॥

(बल, पराक्रम और हिम्मत के बिना कोई काम पूरा नही हो सकता। हे राजिया! रगे हुए सियारो को हिम्मत दिलाने से क्या हो सकता है?)

काळी भोत कुरूप कसतूरी काँटै तुलै
साकर बड़ी सरूप रोड़ाँ तूलै राजिया॥

(कस्तूरी बहुत काली और बदसूरत होती है पर काँटे पर तोली जाती है। परन्तु हे राजिया! शक्कर बहुत सुन्दर होने पर भी पत्थरों के बराबर तोली जाती है।)

गहभरियौ गजराज, मदछकियौ चालै मतै।
कूकरिया बेकाज, रोय भुसै क्यूँ राजिया॥

(गभीर हाथी मद मस्त होकर अपनी मौज से चला जा रहा है। हे राजिया! कुत्ते क्यों रो-रोकर भौंकते हैं।)

गुण-औगण जिण गाँव, सुणै न कोई साँभळै ।
मच्छ-गळागळ माँय, रहणो मुसकल राजिया ॥

(जिस गाँव मे गुण-अवगुण को सुनने व समझने वाला कोई नहीं है और जहाँ अराजकता फैली हुई है । हे राजिया ! वहाँ रहना कठिन है ।)

पाटा पीड़ उपाव, तन लागाँ तरवारियाँ ।
बहै जीभ रा घाव, रती न ओषद राजिया ॥

(शरीर मे तलवारो के घाव लगने पर पट्टी द्वारा उसकी पीडा का इलाज हो सकता है । पर हे राजिया ! जीभ के घावो की रत्ती भर भी दवा नहीं है ।)

मुख ऊपर मीठास, घट माँही खोटा घडै ।
इसडा सूँ इखळास, राखीजै नहँ राजियाँ ॥

(मुँह से मीठे बोलते हैं पर हृदय से बुराई करते रहते हैं । हे राजिया ! ऐसे लोगो से कभी सपर्क नहीं रखना चाहिये ।)

मूसा नै मजार, हितकर बैठा हेकठा ।
सौ जाणै ससार, रस नहँ रहसी राजिया ॥

(चूहा और बिल्ली प्रेम पूर्वक एक साथ बैठे हुए हैं । परन्तु हे राजिया ! सारा ससार जानता है कि यह प्रेम रहने का नहीं है ।)

लावा तीतर लार, हर कोई हाका करे ।
सिंघाँ तणो सिकार, रमणौ मुसकल राजिया ॥

(लवा और तीतर के पीछे प्रत्येक आदमी हाँक लगा सकता है । परन्तु हे राजिया ! सिंहो की शिकार करना कठिन है ।)

रोटी चरखौ राम, इतरौ मुतलब आप रो ।
की डोकरियाँ काम, राज कथा सूँ राजिया ॥

(रोटी, चरखा और राम इन बातो से बुढियाओं का मतलब होना चाहिए । हे राजिया ! राजनीति मे उन्हे क्या करना है ?)

मानसिंह

ये महाराजा विजयसिंह के पौत्र और गुमानसिंह के पुत्र थे । इनका जन्म स० १८३९ मे हुआ था । इक्कीस वर्ष की अवस्था मे ये जोधपुर की गद्दी पर बैठे । कुछ सरदारो के षड्यन्त्रों, नाथो तथा मरहठो के कारण इनके राज्य मे बडी अव्यवस्था रही और इन्हें बडे कष्ट झेलने पडे । मरहठों आदि से तो इन्होने खूब लोहा लिया और बडी चतुराई से उनका दमन किया, पर नाथ सम्प्रदाय के प्रति अत्यधिक भक्ति

होने से नाथों का दमन ये न कर सके। यही नहीं, तत्कालीन पोलिटिकल एजेएट लड्लो ने जब दो एक उपद्रवी नाथों को पकड़कर अजमेर भेज दिया तब इन्हें असीम दु:ख हुआ और उनको छुड़वाने की चेष्टा करने लगे। अन्त में अपने इस प्रयत्न में जब इन्हें सफलता न मिली तब इन्होंने अन्न खाना छोड़ दिया और सन्यास लेकर इधर-उधर भटकने लगे। इनका देहान्त सं० १६०० की भादों सुदी ११ को जोधपुर में हुआ।

महाराजा मानसिंह बड़े गुणाढय, कविता-प्रेमी एव सरस्वती-सेवक थे। विशेषत. काव्यकला को इन्होंने बडा प्रोत्साहन दिया। ये इसके रहस्य को भी भली प्रकार समझते थे, और स्वय भी काव्य-रचना में प्रवीण थे। कवियों, विद्वानों एव पडितों का ये इतना आदर करते थे कि वे पालकिया में बैठे फिरते थे। इन्होंने जोधपुर में 'पुस्तक प्रकाश' नामक पुस्तकालय की स्थापना की जिसमें आज संस्कृत की १६७८ और डिंगल आदि की १०६४ हस्तलिखित पुस्तकों का सुन्दर सग्रह है। इसमें सबसे प्राचीन पुस्तक सं० १४७२ की लिखी हुई है। महाराजा की गुणग्राहकता के विषय में यह दोहा आज भी मारवाड़ में प्रसिद्ध है—

> जोध बसाई जोधपुर, ब्रज कीनी ब्रिजपाल।
> लखनेऊ, काशी, दिली, मान करी नेपाल॥

इनके रचे हिन्दी तथा संस्कृत के ग्रथो के नाम ये हैं—

(१) नाथ चरित्र (२) विद्वज्जन मनोरजनी (३) कृष्ण विलास (४) भागवत की मारवाडी भाषा की टीका (५) चौरासी पदार्थनामावली (६) जलधर चरित्र (७) जलधर चन्द्रोदय (८) नाथ पुराण (९) नाथ स्तोत्र (१०) सिद्ध गंगा, मुक्ताफल सम्प्रदाय आदि (११) प्रश्नोत्तर (१२) पद सग्रह (१३) शृंगार रस की कविता (१४) परमार्थ विषय की कविता (१५)नाथाष्टक (१६) जलधर ज्ञान सागर (१७) तेज मजरी (१८) पद्मावली (१९) स्वरूपों के कवित्त (२०) स्वरूपों के दोहे (२१) सेवासागर (२२) मान विचार (२३) आराम रोशनी (२४) उद्यान वर्णन।

महाराजा मानसिंह डिंगल और पिंगल दोनों में कविता करते थे। नाथ सम्प्रदाय के प्रति अत्यधिक भक्ति होने से इन्होंने उक्त पथ के सिद्धान्तो, उसकी महिमा आदि के विषय में अधिक लिखा है। पर इनकी शृंगार रस की कविताएँ भी थोडी-सी मिली हैं जो काव्यकला एव भाव-मौलिकता दोनों ही दृष्टियों से बहुत सुन्दर बन पडी हैं। इनकी कविता देखिए—

सररर बरसत सलिल, घरर घरर घनघोर ।
झररर झरना झरन, दमौं दिमी बोलत मोर ॥
झर पावस चहुँ दिसि, प्रचंड दामिनि दमकाई ।
सर डाबर जल झरत, मरित जलनिधिहिं मिलाई ॥
किलकारि करत जित तितहिं विहँग, मधुर सबद मन भावही ।
नृप मान कहत या विधि प्रबल, घन वरषा रितु आवही ॥

पद

म्हारी विगडी कौन सुधारै, नाथ बिन बिगडी कौन सुधारै ।
बनी वनी के सब कोय सीरी, कोई बिगडी को नहीं नाथ ॥
कड़वी वेल की कड़वी तुमडिया, सब तीरथ कर आई जी ।
गगा न्हाँही जमुना न्हाँही, अजहुँ न गई कडवाई जी ॥
नाथ नाम की चुदडी हमारी, चुदडी मे दाग लगाया जी ।
नाथ निरजन अरमन-परसन, राजा मान गुण गाया जी ॥

ओपाजी

ये आढा गोत्र के चारण सिरोही राज्य के पेशवा ग्राम में पैदा हुए थे। इनका रचना काल स० १८६०-६० है। इनका कोई ग्रन्थ नहीं मिलता, फुटकर गीत देखने मे आते हैं। ये गीत डिंगल भाषा मे हैं और शात रसात्मक हैं। इनके कारण ओपाजी कीर राजस्थान मे बडी ख्याति है। इन गीतों मे बडी सरसता और कोमलता है। भाव-सौन्दर्य्य भी इनमे यथेष्ट पाया जाता है। एक गीत देखिए—

मन जाणै चढूँ हाथियाँ माथै, खुर घासता जनम खुवै ।
नर री चींती बात न होवै, हर री चीती बात हुवै ॥१॥
मन जाणै पदमण हूँ माणूँ, गोबँद बाँधै पथर गळै ।
माडणहारै लेख माँडिया, मेटण वाळौ कूण मळै ॥२॥
यूँ जाणै पकवान अरागूँ, धापर मिलै न लूकौ धान ।
हचियौ खाय काय हींचोळा, भोळा रे रचियौ भगवान ॥३॥
दिल में जाणै पाव दबाऊ, औरा रा पग दाबै आप ।
कळपै कसू कसू मन कोपै, प्राणी लेख तणौ परताप ॥४॥
चित में जाणै हुकुम चलाऊँ, हुकुम तणौ वस नार न होय ।
साचा लेख लिख्या उण साईं, काचा करण न दीसै कोय ॥५॥

धापै मन बैठा धौळाहर, तापै सूनौ ढूढ तठै ।
आदू रीत असी है "ओपा", कुटी लिखी सो महल कठै[१६] ।।६।।

ये आशिया शाखा के चारण थे। इनका जन्म जोधपुर राज्य के पचभदरा परगने के भाड़ियावास नामक गॉव मे स० १८२८ मे हुआ था। इनके पिता का नाम फतहसिंह और दादा का शक्तिदान था। अलकारों के प्रख्यात ग्रन्थ 'जसवत-जसो- भूपण' के रचयिता मुरारिदान इनके पौत्र थे। छोटी अवस्था मे बॉकीदास ने अपने गॉव मे थोड़ा सा पढ़ना-लिखना सीखा और सोलह वर्ष की आयु मे जोधपुर चले गए, जहॉ भिन्न २ गुरुओं से काव्य, व्याकरण, इतिहास, आदि विभिन्न विषयों का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। तदनन्तर अपने ऊँचे व्यक्तित्व एव ऊँची योग्यता के सहारे महाराजा मानसिह के प्रीति-पात्र बन गए। महाराजा मानसिंह बॉकीदास की कवित्व-शक्ति और विद्वता पर मुग्ध थे। उन्होंने इन्हे अपना काव्य-गुरु बनाया और कालान्तर मे कविराजा की उपाधि ताजीम, पॉव म सोना, बॉह-पसाव आदि देकर इनकी प्रतिष्ठा वढाई। गुरु-शिष्य का सबन्ध सूचित करने के अभिप्राय से उक्त महाराजा ने इन्हे कागज़ो पर लगाने की मोहर रखने का मान भी दे रक्खा था, जिस पर निम्नलिखित शब्द अकित थे—

बॉकीदास

श्रीमन् मान धरणि पति, बहु गुन रास।
जिन भाषा गुरु कीनौ, बॉकीदास ।।

बॉकीदास सस्कृत, डिंगल, फ़ारसी तथा ब्रजभाषा के अच्छे पण्डित थे और आशु कवि होने के साथ-साथ इतिहास के भी सुज्ञाता थे। कहा जाता है, एक बार ईरान का कोई सरदार भारतवर्ष मे भ्रमण करता हुआ जोधपुर आया और महाराजा मानसिंह से मुलाक़ात करते समय उनसे यह प्रार्थना की कि यदि आपके यहॉ कोई अच्छा इतिहासवेत्ता हो तो मैं उससे मिलना चाहता हूॅ। इस पर महाराजा ने बॉकीदास को उसके पास भेजा। बॉकीदास के ऐतिहासिक ज्ञान, उनकी स्मरण-शक्ति और उनके काव्य-चमत्कार को देखकर वह सरदार दंग रह गया और जिस समय जोधपुर से जाने को रवाना हुआ महाराजा से कह गया कि जिस आदमी को आपने मेरे पास भेजा था

१६— घासता=घिसते हुए। खुवै=नष्ट करता है। मारू=वार्तालाप करूँ। गोबद=गोविंद। धापर=पेट भर कर।

वह इतिहास ही का पूर्ण ज्ञाता नहीं, वरन् उच्चकोटि का कवि भी है। इतिहास का ऐसा पूर्ण और पुख्ता ज्ञान रखनेवाला कोई दूसरा व्यक्ति मेरे देखने में अभी तक नहीं आया। इसे समस्त भूमण्डल के इतिहास का भारी ज्ञान है। मैं ईरान का रहनेवाला हूँ, पर ईरान का इतिहास भी मुझ से अधिक वह जानता है।

बाँकीदास का अन्तकाल सं० १८९० में श्रावण सुदी ३ को जोधपुर में हुआ था। इनकी मृत्यु से महाराजा मानसिंह को असीम दुःख हुआ और निम्नलिखित शब्दों द्वारा उन्होंने अपने शोकोद्गार प्रकट किए—

सद्विद्या बहु साज, बाँकी थी बाँका वसु।
कर सूधी कवराज, आज कठी गौ आसिया ॥१॥
विद्या-कुळ विख्यात, राज काज हर रहसरी।
बाँका तो विण बात, किण आगळ मनरी कहाँ[17] ॥२॥

इनके ग्रन्थों के नाम ये हैं—

(१) सूर छत्तीसी (२) सींह छत्तीसी (३) वीर विनोद (४) धवळ पच्चीसी (५) दातार बावनी (६) नीति मंजरी (७) सुपह छत्तीसी (८) वैसक वार्ता (९) मावडिया मिजाज (१०) कृपण दर्पण (११) मोहमर्दन (१२) चुगल मुख चपेटिका (१३) वैसवार्ता (१४) कुकवि बत्तीसी (१५) विदुर बत्तीसी (१६) भुरजाल भूषण (१७) गंगा लहरी (१८) झमाल नख-शिख (१९) जेहल जस जड़ाव (२०) सिद्ध राव छत्तीसी (२१) संतोष बावनी (२२) सुजस छत्तीसी (२३) वचन विवेक पच्चीसी (२४) कायर बावनी (२५) कृपण पच्चीसी (२६) हमरोट छत्तीसी (२७) स्फुट संग्रह।

इन ग्रंथों के अतिरिक्त बाँकीदास के लिखे डिंगल भाषा के बहुत से फुटकर गीत और २८०० के लगभग इतिहास विषयक छोटी-छोटी कहानियाँ (वार्ता) भी उपलब्ध हुई हैं।

बाँकीदास की गणना डिंगल भाषा के प्रथम श्रेणी के कवियों में की जाती है। इनकी भाषा प्रौढ, परिमार्जित और सरस है, वर्णन-शैली संयत

१७— हे बाँकीदास! तेरी सद्विद्या रूपी सामग्री के कारण पृथ्वी पर बहुत बाँकपन (निरालापन) था। हे आशिया! आज उसे सीधा करके तू कहाँ चला गया? ॥१॥ विद्या और कुल में विख्यात हे बाँकीदास! तेरे बिना राज-काज की प्रत्येक बात को किसके आगे जा कर कहें? ॥२॥

और स्वाभाविक है। इन्होंने नीति- उपदेश की बाते अधिक कही हैं जिनमें मौलिकता और चमत्कार विशेष दिखाई नहीं देता परन्तु वीररस की उक्तियाँ इनकी कहीं-कहीं बहुत सुन्दर बन पडी हैं —

सूतौ थाहर नींद सुख, सादूळौ बळवत।
वन काठै मारग बहै, पग-पग हौल पडन्त ॥१॥
घाल घणाँ घर पातळा, आयौ थह मे आप।
सूतौ नाहर नींद सुख, पौहरौ दियै प्रताप ॥२॥
केहर कुम्भ विदारियौ, गजमोती खिरियाह।
जाँणै काळा जळद सूँ, ओळा ओसरियाह[१८]॥३॥

बाँकीदास को अलकारो का अच्छा ज्ञान था। इसलिए अलकारो की बडी सुन्दर छटा इनकी रचना मे स्थान-स्थान पर दिखाई देती है। इनके मुख्य अलकार अप्रस्तुत प्रशसा, हेतु, उदात्त और समुच्चय हैं। अप्रस्तुत प्रशसा के तो इनको मास्टर हैंड ही समझना चाहिए—

गाज इतै उखेड गज, माँझळ वन तर मूळ।
जागै नहँ थह मे जितै, सझ हाथळ सादूळ ॥१॥
सादूळौ वन साहिबौ, खाटै पग-पग खून।
कायरड़ा इण काम नूँ, जबक कहै जबून ॥२॥
के दती श्रृगी किता, किता नखी वन जत।
समझाया दे दे सजा, सादूळै वलवन्त ॥३॥
मयँद धपावै मोतियाँ, हसाँ लोघणियाँह।
रहै नहा जुध रोकियौ, औ धाराँ अणियाँह[१९] ॥४॥

१८-बलवान सिंह अपनी माद मे सुखपूवक सोया हुआ है। पर उन वन के पास वाले मार्ग पर चलते हुए हाथी के मन में पग पग पर डबके पट रहे ह ॥१॥ बहुत से घरों के मनुष्यों का नाश कर सिंह अपनी माद में आया और सुख पूर्वक निद्रा मे सो रहा। उसका प्रताप उसका पहरा देने लगा ॥२॥ सिंह ने हाथी का कुभस्थल विदीर्ण कर दिया जिससे गजमुक्ता निकल पड़े। ऐसा प्रतीत होता था मानो काले बादल से ओले बरसे हों ॥३॥

१९ हे गज! जब तक सिंह अपनी माद मे जग न जाय और अपने पज को ठीक न कर ले तब तक तू गर्जना कर ले और वन के वृक्षों की जडे उखाड ले ॥१॥ वन का स्वामी सिंह पग-पग पर अपराध करता है। कायर-जम्बुक इस काम को कठिन बतलाते हैं ॥२॥ बलवान सिंह ने कितने ही दाँतवालों, कितने ही सींगवालों, और कितने ही नखवालों को सजा दे देकर सीधा किया ॥३॥ मृगेन्द्र भूखे हसों को मोतियों से तृप्त करता है। वह युद्ध में तलवारों की धारों और भालों की नोकों से रोका नहीं रुकता ॥४॥

नीति-उपदेश विषयक अपनी कविताओं में बाँकीदास ने दुर्जनों, कायरों, मूँजियों, कुकवियों, चुगलखोरों इत्यादि के स्वभाव-लक्षणों को बतलाया है और उनकी बड़ी भर्त्सना की है जो यथार्थ है। परन्तु भावावेश में कहीं कहीं इतने आगे बढ़ गए हैं कि साहित्यिक शिष्टाचार का भूल बैठे हैं और वर्णन में अश्लीलता आ गई है। परन्तु सौभाग्य से ऐसे स्थल बहुत अधिक नहीं है। सामान्यत बाँकीदास की रचना में ऊँची रुचि और ऊँचे आदर्शों ही के दर्शन होते हैं। उदाहरण—

दोहे

नर कायर आँणै नहीं, लूण लिहाज लगार।
धोळै दिन छाडै धणी, अणी मिलै उण वार ॥१॥
बादळ ज्यूँ सुर धनुष बिण, तिलक बिना दुज पूत।
बनौ न सोभै मौड बिण, घाव बिना रजपूत ॥२॥
कीडी कण पावै नहीं, अदतारा घर आय।
और घरा सूं आणियौ, जिको गमाडै जाय ॥३॥
दाता धन जेतो दियै, जस तेतौ वर पीठ।
जेतौ गुळ लै थाळियाँ, तेतौ जीमण मीठ ॥४॥

झमाल

काळी भमरावळि कळी भूँहाँ बाँकड़ियाँह।
कमळ प्रभात विकासिया, इसडी आँखडियाँह ॥
इसडी आँखड़ियाँह किया म्रग वारणौ।
सर मनमथ गा हारि क अजण सारणौ ॥
खूबी न रही काय खतगाँ खजनाँ।
नेही ह्वै मुनिराज विसारि निरजनाँ[२०]॥

गवरीबाई का जन्म सं० १८१५ में डूँगरपुर शहर में हुआ था। यह जाति की नागर ब्राह्मण थीं। इनके माता-पिता का नाम अविदित है। इनका विवाह

२० लूण=नमक। लगार=जरा भी। धोळै दिन=दिन ही में। धणी=स्वामी। अणी=सेना। उण=उस। बनौ=दूल्हा। मौड=सेहरा। कीडी=चींटी। कण=दाना। अदतारा=कंजूस। आणियौ=लाया हुआ। जिको=वह भी। गमाडै=खो देता है। गुळ=गुड़। गा=गये। सारणै=लगाने से। काय=कुछ भी। खतगा=बाण। नेही ह्वै=मोहित होकर। निरजना=ईश्वर।

गवरीबाई पाँच-छह वर्ष की बहुत छोटी अवस्था मे हो गया था। परन्तु विवाह के एक ही वर्ष बाद इनके पति का देहान्त हो गया। वैधव्य धर्म का पालन गवरीबाई मे अच्छी तरह से हो सके इस उद्देश्य से इनके माता-पिता ने इन्हे पढाना-लिखाना प्रारम्भ किया और कुछ ही समय मे यह पढ-लिखकर होशियार हो गई। कालान्तर मे इन्होंने भागवत, गीता, आदि धार्मिक ग्रन्थो का अच्छा अध्ययन कर लिया और कविता भी करने लग गई। अपना अधिकाश समय यह पूजा-पाठ और भजन कीर्तन मे व्यतीत करती थी। धीरे-धीरे इनकी ज्ञान-गरिमा और भगवत् भक्ति की महिमा चारो ओर फैल गई और हजारो की सख्या मे लोग इनके दर्शन करने तथा भजन सुनने के लिये इनके पास आने लगे। उस समय डूँगरपुर पर महारावळ शिवसिंह (स० १७८६ १८४२) राज्य करते थे जो बडे धर्मिष्ठ और प्रभु-भक्त राजा थे। उनके कानो मे भी गवरीबाई की कीर्ति-कथा पहुची। एक दिन वे इनके घर गए और इनसे वार्तालाप कर बहुत खुश हुए। उन्होने इनके लिए एक मन्दिर बनवा दिया जो अभी तक डूँगरपुर में मौजूद है।

कहते हैं कि अत समय मे गवरीबाई काशी चली गई थी और वही स० १८६५ के लगभग पचास वर्ष की अवस्था मे इनका देहावसान हुआ था।

गवरीबाई मीरॉ का अवतार मानी गई है। उनकी तरह इन्होने भी केवल फुटकर पद लिखे हैं जिनकी सख्या ६१० है। इन पदो मे इन्होंने ज्ञान, भक्ति तथा वैराग्य की महिमा बतलाई है। इनकी भाषा गुजराती, राजस्थानी तथा व्रजभाषा का मिश्रण है। इनके पदो पर कबीर, सूर आदि प्राचीन भक्त कवियों का प्रभाव स्पष्ट है। परन्तु साथ ही उनमे मौलिकता का सर्वथा अभाव भी नही है। सरलता और तन्मयता भी उनमे यथेष्ट पाई जाती है। पद गाने के लिए बहुत उपयुक्त हैं। उदाहरण—

प्रभु मोकूँ एक बेर दरसन दइये ॥
तुम कारन मैं भइ रे दिवानी, उपहास जगत की सहिये ॥
हाथ लकुटिया कधे, कमळिया, मुख पर मुरली बजैये ॥
हीरा मानिक गरथ भडारा, माल मुलक नहीं चहिये ॥
गवरी के ठाकर सुख के सागर, मेरे उर अतर रहिये ॥

होरी खेले मदन गोपाल।

मोर मुगट कट कछनी काछै, चचळ नैन विसाल ॥
सब सखियन मे मोहन सोहत, ज्यूॅ तारन बिच चद उजाल ॥
चोवा चदन और कुमकुम, उडत अबीर गुलाल ॥
ताल मृदग झॉझ डफ बाजै, गावत बसत धमाल ॥
गवरी के प्रभु नटवर नागर, निरखी भई नेहाल ॥

ये सेवक जाति के ब्राह्मण जोधपुर नगर के निवासी थे। इनका जन्म स० १८३० मे और देहान्त स० १८६२ मे हुआ था।

मछाराम इनके पिता का नाम बख्शीराम और माता का रुक्मिणी था। ये जोधपुर के महाराजा मानसिंह के कृपापात्र थे। कविता करना इन्होंने जोधपुर के तत्कालीन मत्री भडारी अमरसिंह के पुत्र किशोरदास से सीखा था, जैसा कि इन्होंने अपने 'रघुनाथ-रूपक' के प्रारम्भ मे बतलाया है—

सदगुर प्रणाम किसोर, सचिव अमरेस सवाई।
करै पिता जिम कृपा, तिकण गुण समझ बनाई॥

मछराम का लिखा अभी तक सिर्फ एक ग्रन्थ, रघुनाथ-रूपक, प्रकाश में आया है। कहते हैं कि इन्होंने दो-चार ग्रन्थ और भी लिखे थे जो इनके वशवालों के पास सुरक्षित हैं। 'रघुनाथ-रूपक' डिंगल के छदों का ग्रन्थ है। इसकी समाप्ति स० १८६३ में हुई थी—

सवत् ठारै सतक बरस तेसठौ बखाणौं।
सुकल भादवी दसम वार ससि हर बरताणौं॥

ग्रन्थ नव विलासों मे विभाजित है। प्रथम दो विलासो में वर्ण, गण, दग्धाक्षर, दुगण, अक्षर-त्याग, फलाफल, वयण-सगाई, काव्य-दोष, अखरोट, उक्ति के लक्षण-भेद, रसों के नाम-भेद-लक्षण इत्यादि का वर्णन है। शेष सात विलासों में डिंगल भाषा मे प्रयुक्त ७२ जाति के गीतों का लक्षण-उदाहरण सहित विवेचन है। गीतो के उदाहरण में भगवान् श्री रामचन्द्र की कथा कही गई है और इसीलिए ग्रन्थ का नाम रघुनाथ रूपक रखा गया है—

इण ग्रथ मो रघुनाथ गुण अत भेद कविता भाखियौ।
इण हीज कारण नाम श्री रघुनाथ रूपक राखियौ॥

इसमें वर्णित श्री रामकथा का क्रम तुलसीकृत रामायण के अनुसार रखा गया है। कहीं-कहीं अन्तर भी है पर वह नगण्य है।

रघुनाथ-रूपक बहुत उपयोगी ग्रथ है। डिंगल भाषा-साहित्य की ज्ञान प्राप्ति के लिए इसका अध्ययन अनिवार्य है। अन्य कविता की दृष्टि से भी काफी महत्व का है। इसके विषय मे उत्तमचद भडारी की निम्नलिखित राय उल्लेखनीय है—

> आछौ कीध इसाह, रस लै माहित सिंधु रो।
> जग मह पियण जिसाँह, रूपक राम पयोध रुख ॥
> मनसाराम प्रबन्ध मझ, राखै मनमा राम ॥
> कियौ भलो द्विज काम कवि, कियो भलो द्विज काम ॥

पाठको के विनोदार्थ रघुनाथ रूपक मे से एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है—

(वरण जथा)

> पावड़ियाँ सहत नरम पद-पकज,
> नूपुर हाटक परम पुनीत ।
> छक कडबन्ध सुचगा छाजै
> पट अगा गाजै पुग पीत ॥१॥
> पुणचा जडत जडाऊ पुणची,
> कळ• आजान भुजा केयूर ।
> बैजती बळ मुगत विसाला
> प्रगट हियै माळा भरपूर ॥२॥
> कडसरी ग्रीवा श्रुत कुडळ,
> चदण निलै तिलक दुत चद।
> सिर सिरपेच सुघट हीरा सद,
> क्रीट मुगट सोभै सुखकद ॥३॥
> जळधर वरण भगत भव भजण,
> सीता मन रजण मज साथ ।
> मो मन आण सुजाण सिरोमण,
> नित इण वाण वसौ रघुनाथ ॥४॥

(खडाऊँ सहित कोमल चरण-कमलो मे स्वर्ण के पवित्र नूपुर हैं, कमर में श्रेष्ठ किंकिणी और शरीर पर सुन्दर पीला वस्त्र सुशोभित होता है ॥१॥ हाथ के पहुँचे पर जड़ाऊ पहुँची और सुन्दर आजानु भुजाओ पर भुजबन्ध शोभित

हैं। हृदय पर बड़े बड़े मोतियों की वैजयंती माला है ॥२॥ ग्रीवा में कटसरी, कानों में कुंडल, (ललाट पर) मलयागिरि चंदन का द्युतिवन तिलक और मस्तक पर अच्छे घाट के सच्चे हीरे का सिरपेच, किरीट और मुकुट सुशोभित होता है ॥३॥ भक्तों के भय का नाश करनेवाले श्रेष्ठ पुरुषों के सिरमौर मेघवर्ण राम और मन को प्रसन्न करनेवाली सीता के साथ हमेशा इस रूप से मेरे मन में निवास करें ॥४॥)

कृष्णलाल

ये बूँदी के प्रसिद्ध गोस्वामी गदाधरलाल के वंश में महंत श्री मोहनलाल के पुत्र थे। इन्होंने सं० १८७२ में नायिका भेद का एक ग्रन्थ 'कृष्ण-विनोद' और सं० १८७४ में दूसरा ग्रंथ अलंकारों का 'रस भूषण' नाम का बनाया। महाराव राजा विष्णुसिंहजी की रानी राठौड़जी की आज्ञा से भक्तमाल की टीका भी इन्होंने लिखी थी। इनकी भाषा सानुप्रास और कविता मधुर है। एक उदाहरण देखिये—

> सूखि सफेद भई विरहै जरि, सोई गंगे गति ऊरध दैनी।
> अंग मलीन अंगार के धूमसी, सो जमुना जग जाहर रैनी ॥
> ताहि समै भयो प्यारे को आवन, सो अनुराग गिरा गति लैनी।
> कृष्ण कहै तब ही वर बाल कै, आय करी तनकाल त्रिवैनी ॥

रामदान

ये जोधपुर राज्य-निवासी लालस गोत्र के चारण थे। इनका जन्म सं० १८१८ में और देहान्त सं० १८८२ में हुआ था। इनके पिता का नाम फतहदान था। सं० १८६५ में जोधपुर के महाराजा मानसिंह ने रामदान को तोलेसर नामक एक गांव दिया था। कुछ वर्ष तक ये मेवाड़ में भी रहे थे। इन्होंने 'भीमप्रकाश' नाम का एक ग्रन्थ रचा जिसमें मेवाड के महाराणा भीमसिंह के राजमहल, राज-दरबार, राजवैभव, गणगौर की सवारी इत्यादि का भव्य वर्णन है। दोहा, कवित्त आदि सब मिलाकर १७५ छन्दों में ग्रन्थ समाप्त हुआ है। बीच में कहीं कहीं गद्य भी है। प्रारम्भ के ७० छन्दों में मेवाड का इतिहास वर्णित है। फिर महाराणा भीमसिंह का वर्णन शुरू होता है। इसकी भाषा डिंगल है। रचना इस तरह की है—

> असक सेन आरम्भ बोल नकीब बळोबल।
> गहर थाट गैमरा चपळ हैमरा चळोबळ ॥

भाळ तेज भळहळै ढळै बिहुँवै पख चम्मर।
दिन दूलह दीवाण ए चढियौ छक ऊपर॥
तिण वार आप हरिम्राव नट बिडग छडि नगपति बियौ।
दीवाण भीम गणगोर दिन एम गाण आरम्भियौ[२१]॥

जवानसिंह

ये मेवाड के महाराणा भीमसिंह के पुत्र और महाराणा हमीरसिंह (द्वितीय) के पौत्र थे। इनका जन्म स० १८५७ में और देहान्त स० १८६५ में हुआ था। इतिहास-प्रसिद्ध रूपवती कृष्णाकुमारी इनकी बहिन थी। ये कविता में अपना नाम 'ब्रजराज' लिखा करते थे। इन्होने ब्रजभाषा मे अनेक कवित्त, सवैया, पद आदि बनाए जिनका सग्रह 'ब्रजराज पद्यावली' के नाम से प्रसिद्ध है। इनकी भाषा परिमार्जित, कल्पनाएं सुवर और रचना-पद्धति सरस हैं। इनके काव्य मे आत्म-समर्पण की झलक है और उसमे शृङ्गार-भक्ति का अच्छा स्फुरण हुआ है। उदाहरण—

उद्धव आय गये व्रज मे सुनि गोपिन के तन मे सुख छायौ।
आनद सौ उमगी सगरी चलि प्रम भरी दवि आन बँधायौ॥
पूछति है मन मोहन की सुधि बोलत ही दृग नीर चलायौ।
देखि सनेह सखा हरि क घनश्याम वियोग कछू न सुनायौ॥

चडीदान

ये मिश्रण शाखा के चारण बूँदी के रहनेवाले थे। इनका जन्म स० १८४८ में और देहावसान स० १८६२ में हुआ था। इनके पिता का नाम बदनजी था जो बूदी दरबार के बहु सम्मानित कवि थे। ये सस्कृत, पिगल एव डिंगल के अच्छे विद्वान् और तत्वज्ञाता थे—

बदन सुकवि सुत कवि मुकुट अमर गिरा मतिमान।
पिंगल डिंगल पटु भये धुरधर चडीदान॥
रवि साहित्य सरोज के रसमुमं केरो लव।
तत्वबोध वैराग्य निधि अरु स्वधर्म पिक अब॥

इन्होंने पाच ग्रथ बनाए जिनके नाम ये है—

---

[२१]भर्का=ढोली। बलाबल=एक के बाद दूसरा। थाट=समूह। बिहुवै=दोनों। दिन दूलह=नित नया।

(१) सार सागर (२) बलविग्रह (३) वशाभरण (४) तीज तरग और (५) विरुद प्रकास ।

चडीदान की कविता मे भाव की नवीनता नहीं है। इनकी वर्णन-शैली भी प्राचीन ढग की और प्रथाबद्ध है । परन्तु एक तो भाषा इनकी बहुत सरल एव मधुर है । दूसरे, छन्दो की गति भी अच्छी है । उदाहरण—

घूमत घटा से घनघोर से घुमड़ घोख,
उमडत आए कमठान तैं अधीर से ।
चपट चपेट चरखीन की चलाचल तैं,
धूरि धूम धूसत धकात बलि वीर से ॥
मसत मतग रामसिंह महिपाल जू के,
डाकिनि डराए मद छाकिनि छकीर से ।
साजैं साटमारन अखारन के जैतवार,
आरन के अचल पहारन के पीर से ॥

ये आढा गोत्र के चारण राजस्थान के प्रसिद्ध कवि दुरसाजी की वश-परम्परा मे थे और मेवाड के महाराणा भीमसिंह के आश्रित थे । इनके पिता

किशनजी

का नाम दूल्ह था, जिनके छः पुत्रो में ये तीसरे थे। 'रघुवर-जस-प्रकास' मे इन्होंने अपना वश-परिचय इस प्रकार दिया है—

दुरसा घर किसनेस, किसन घर सुकवि महेसर ।
सुत महेस खुँमाण, खानसाहिब सुत जिण घर ॥
साहिब घर पनसाह, पना सुत दूल्ह सुकव पुण ।
दूल्ह घरे षट पुत्र, दान१ जस२ किसन३ बुधोमण४ ॥
मारूप५ चमन६ मुरधर ऊतन, घणट नगर पाँचेटियो ।
चारण जात आढौ विगत, किसन सुकवि पिंगल कियो ॥

किशनजी को हिन्दी तथा सस्कृत के रीति ग्रथो का प्रौढ ज्ञान था और ये डिंगल-पिंगल दोनो में कविता करने के अभ्यासी थे । इतिहास की ओर इनकी रुचि विशेष थी । इतिहास-सम्बन्धी सामग्री को एकत्र करने के लिए जब कर्नल टॉड ने मेवाड़ में भ्रमण किया था तब ये उनके साथ थे और चारण-भाटों के घरो में पड़ी हुई बहुत-सी सामग्री इन्हीं के अविश्रान्त उद्योग

से कर्नल टॉड को प्राप्त हुई थी। इनकी लिखी सैकडो फुटकर कविताएँ, तथा भीमविलास और रघुवर-जस-प्रकास नामक दो ग्रथ प्राप्त हुए हैं। भीमविलास महाराणा भीमसिंह की आज्ञा से स० १८७९ मे लिखा गया था। इसमें उक्त महाराणा का जीवन-वृत्तान्त है। इतिहास की दृष्टि से यह ग्रथ बहुत उपयोगी है। परन्तु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण रचना रघुवर-जस-प्रकास है। इसमें डिंगल के छन्दशास्त्र का विस्तृत विवेचन है। यह स० १८८१ में पूरा हुआ था। इसमें हिन्दी, सस्कृत और डिंगल मे प्रयुक्त प्रधान प्रधान छन्दों के लक्षण बहुत सरल भाषा मे समझाए गए हैं और उदाहरणों मे भगवान रामचन्द्र का यशोगान किया गया है। मात्रा, गण, प्रस्तार, वैणसगाई, काव्य-दोष आदि पर लिखी हुई इनकी व्याख्याएँ वास्तव मे बहुत मौलिकता पूर्ण और अपने रग-ढग की अनुपम हैं। किशन जी का एक छप्पय यहाँ उद्धृत किया जाता है—

हय अरोह कहा लगत, सर्प सिर पै कहा सोहत।
कहा न दाता कहत, सिद्ध कह का कौ रोकत॥
नर सेवक कहा नाम, कवित के आदि वरत किहिं।
का घटते को कहत, बनिक सचत का कहि वहि॥
लख चलत खाग कहाँ लरत दल, दसरथ सुत कौ है बरन।
कवि क्रस्न इहै उत्तर कियौ, राम नाम जग उधरन॥

मेवाड़ की वर्तमान राजधानी उदयपुर से १३ मील उत्तर दिशा मे मेवाड के महाराणाओं के इष्टदेव श्री एकलिङ्ग जी का मन्दिर है। जिस गाव में यह मन्दिर अवस्थित है उसे आज कल कैलाशपुरी कहते हैं। दीनजी इसी गाव के निवासी थे। ये जाति के लोहार थे। इनके जन्म-मृत्यु सम्वत् का ठीक-ठीक पता नहीं है। परन्तु इनके ग्रथों से इनका रचना काल स० १८६३-८८ निश्चित होता है। मिश्रबन्धुओ ने इन्हे काठियावाड-निवासी बतलाया है जो भूल है। काठियावाड़ी ये नहीं, इनके गुरु थे जिनका नाम बाल गुरु था और जो गिरनार के रहनेवाले थे। इस विषय मे दीनजी स्वय एक स्थान पर लिखते हैं—

दीनजी

"गुरु स्थान गिरनार, हौ उदैपुर देस एकलिंग वासी"

मेवाड़ के महाराणा भीमसिह दीनजी को बहुत मानते थे। इसलिए जब तक उक्त महाराणा जीवित रहे तब तक इन्होंने मेवाड़ मे निवास किया पर

बाद मे कोटे चले गए जहाँ एक दिन जब ये चबल नदी पर स्नानार्थ गए हुए थे पानी मे डूबकर मर गए। यह घटना स० १८९० के आस-पास की है।

दीनजी प्रतिभावान कवि और योग-सिद्ध पुरुष थे पर पढ़े-लिखे विशेष न थे। इनकी भाषा बोल-चाल की राजस्थानी है। रचना आध्यात्मिक, ब्रह्मविद्या से सम्बन्ध रखनेवाली और रहस्यवाद-पूर्ण है। उदाहरण—

जितना दीसै थिर नहीं, थिर है निरंजन नाम।
ठाट पाट नर थिर नहीं, नाहीं थिर धन धाम॥
नाहीं थिर धन धाम, गाम घर हस्ती घोड़ा।
नजर आत थिर नाहिं, नाहि थिर साथ सजोड़ा॥
कहै दीन दरवेस, कहा इतने पर इतना।
थिर निज मन सत शब्द, नाहीं थिर दीसै जितना॥

बूझै कूप समद कूँ, अड़ियौ सनमुख आय।
तुव मे जल कितनोक है, हम कूँ देव बताय॥
हम कूँ देव बताय, समद कैहै सुन भाई॥
भोले जल मत भूल, नाहिं अपनो सर खाई॥
कहै दीन दरवेस, तुं होवे तैसा सूझै।
सुनो सुग्यानी सत, कूप समद कूँ बूझै॥

ऊपर जिन कवियो का परिचय दिया गया है उनके अतिरिक्त और भी अनेक कवि इस काल में हुए हैं जिनमे से कुछ का उल्लेख आवश्यक है। कुभकर्ण साँदू शाखा के चारण थे। इन्होंने 'रतन रासौ' (स० १७३२) नामक एक ग्रथ बनाया जिसमे मुगल बादशाह शाहजहाँ के विद्रोही पुत्रों की आपसी लडाई का वर्णन है। जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह (स० १७३५-८१) अच्छे कवि थे। इनकी रची दो पुस्तको का पता है, 'गुण सागर' और 'भाव विरही'। इनके अतिरिक्त इनके दो-चार और ग्रथो के नाम मिश्रबन्धु-विनोद मे दिये हुए हैं। मालूम नहीं, ये नाम कहाँ तक ठीक हैं। हरिदास भाट डिंगल भाषा के अच्छे कवि थे। इन्होंने 'अजीतसिंह चरित्र' और 'अमर बत्तीसी' (स० १७००) नामक दो ग्रथ बनाये जो काफी अच्छे हैं। किशनगढ के मीर मुशी माधोदास कृत 'शक्तिभक्ति-प्रकाश' (स० १७४०) एक उत्तम रचना है। वहाँ के महाराजा राजसिंह (स० १७६३-१८०५) के भी तीन ग्रथ

मिले हैं—राजप्रकाश, बाहु-विलास और रसपाय नायक। ये रचनाएँ कला-समन्वित और ईश-भक्ति से ओत-प्रोत हैं। इनके राज्य में रूप-जी और वल्लभ जी दो अच्छे कवि हुए। रूपजी कृत 'रस रूप' (सं० १७३६) नायका भेद का ग्रन्थ है। वल्लभजी प्रसिद्ध कवि वृन्द के पुत्र थे। इनके दो ग्रन्थ मिले हैं, 'वल्लभ-विलास और वल्लभ-मुक्तावली'। लोकनाथ चौबे बूंदी-निवासी थे। इनका रचना काल सं० १७६० है। इन्होंने 'रस तरंग' और 'हरिवंश चौरासी' नामक दो ग्रन्थ बनाये। इनकी स्त्री भी कविता करती थी। नाजिर आनन्दराम रचित 'भगवद्गीता' (सं० १७६१) प्रसिद्ध है। इसमें गद्य और पद्य दोनों हैं। प्रियादास प्रसिद्ध भक्त नाभादास के शिष्य थे। अपने गुरु के कहने से इन्होंने सं० १७६९ में भक्त माल की टीका बनाई थी। धर्मवर्द्धन (सं० १७००-८१) जैन साधु थे। इनके छोटे-मोटे २३ ग्रथ उपलब्ध हैं जो जैन धर्म विषयक हैं। इन्होंने चारणी ढग की कविता भी की है। ये उन इने-गिने जैन पडितों में से हैं जिनकी रचना में थोडी-सी साहित्यिकता भी पाई जाती है। भोज मिश्र (सं० १७७७) बूँदी के राव राजा बुधसिंह के दरबारी कवि थे। इन्होंने 'मिश्र शृंगार' नामक एक ग्रन्थ लिखा। पृथ्वीराज साँदू शाखा के चारण थे। इन्होंने 'अभय-विलास' की रचना की जिसमें जोधपुर के महाराजा अभयसिंह (सं० १७८१-१८०६) का इतिहास वर्णित है। ग्रन्थ डिंगल भाषा का है। महाराज सुजानसिंह (सं० १७९०) करौली के राज-घराने में पैदा हुए थे। 'सुजान-विलास' इनकी एक प्रसिद्ध रचना है। कुँवर कुशल और कनककुशल दोनों भाई थे। ये जैन थे और जोधपुर के रहने वाले थे। इन्होंने कच्छ के राजा लखपतसिंह (सं० १७९६) के लिए 'लख-पत-सिंधु' नाम का एक बहुत बड़ा ग्रन्थ बनाया। शिवसहायदास (सं० १८०९) जयपुर-निवासी भद्र कवि थे। इनके 'शिव-चौपाई' और 'लोकोक्ति-रस-कौमदी' नामक दो ग्रथों का पता है। गोपीनाथ गाडण शाखा के चारण थे। इनका रचना-काल सं० १८१० है। इन्होंने 'ग्रन्थराज' नामक एक ग्रन्थ बनाया जिसमें बीकानेर के महाराजा गजसिंह का वर्णन है। इस ग्रन्थ पर इन्हें लाखपसाव मिला था। ग्रन्थ डिंगल भाषा का है और उपयोगी भी है। मेवाड़ के महाराणा अरिसिंह ने नागरीदास कृत 'इश्क-चमन' के जवाब में रसिक-चमन (सं० १८२५) लिखा जो एक छोटी पर सरस रचना है। श्री नाथ शर्म्मा जैसलमेर के रावळ मूलराज के सभासद थे। संस्कृत, हिंदी और डिंगल के अच्छे कवि एवं विद्वान थे। इनके चार ग्रन्थ मिलते हैं: मूल-

पाँचवाँ प्रकरण

संत साहित्य

संत कबीर के सदुपदेशों का जनसाधारण ने अच्छा स्वागत किया और उनकी सफलता से उत्साहित होकर राजस्थान में भी कुछ संत-महात्माओं ने कबीर पथ से मिलते-जुलते दादू पथ, चरणदासी पथ इत्यादि नवीन पथों को जन्म दिया जो कालांतर में राजस्थान के सिवा अन्य प्रान्तों में भी बड़े लोक-प्रिय सिद्ध हुए। सैद्धान्तिक दृष्टि से इन नये पथों के जन्मदाताओं की विचार-धारा और कबीर की विचार-धारा में विशेष अंतर न था। कबीर के समान इनकी उपासना भी निराकारोपासना थी और उन्हीं की तरह ये भी मूर्ति-पूजा, कर्मकांड आदि के विरोधी थे और प्रेम, नाम, शब्द, सद्गुरु आदि की महिमा का गुण-गान करते थे। इन सन्तों के कारण राजस्थानी साहित्य की अच्छी उन्नति हुई और इस उन्नति में सबसे अधिक हाथ दादूपथियों का रहा। कहना न होगा कि ये संत लोग न तो विशेष पढ़े-लिखे होते थे और न काव्य-निर्माण की ओर इनका विशेष ध्यान था। ये पहले भक्त, फिर उपदेशक और फिर कवि थे और जहाँ तक बन सकता अपने विश्वासों को सरल-से-सरल रूप में लोगों के समक्ष रखने का प्रयत्न करते थे। काव्य-कला संबंधी नियमों के निर्वाह एवं भाषा की प्रांजलता की अपेक्षा लोक-कल्याण की ओर इनका ध्यान विशेष रहता था। अतएव अपने धर्म-सिद्धान्तों के प्रचार तथा प्रसार की भावना से प्रेरित होकर जो कुछ भी इन्होंने लिखा उसमें कला पक्ष की अपेक्षा विचार पक्ष की प्रधानता है। नि.संदेह कुछ संत ऐसे भी हुए जिन्होंने विचार-प्रदर्शन के साथ-साथ काव्य-चमत्कार और भाषा-लालित्य का भी पूरा खयाल रखा, पर ऐसे संतों की संख्या बहुत अधिक नहीं है।

दादू पथ

दादूपथ के जन्मदाता संत दादूदयाल थे। इस पथ में मुख्यतः चार प्रकार के साधु पाए जाते हैं—खाकी, विरक्त, थाँभाधारी और नागा। इनमें जो खाकी हैं वे शरीर पर भस्म लगाते और सिर पर जटा बढ़ाते हैं। विरक्त कोपीन बाँधते, कषाय वस्त्र पहिनते और हाथ में तूंबी रखते हैं। ये भजन- कीर्तन,

ज्ञान-चर्चा आदि कर अपना समय बिताते हैं। नागे और थाँभाधारी सफेद वस्त्र पहिनते और खेती, नौकरी, वैद्यक आदि द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। नागे साधु बड़े वीर, साहसी और रण-कुशल होते हैं। जयपुर के सैन्य-विभाग में एक नागा जमात आज भी विद्यमान है। विवाह करने की सभी प्रकार के साधुओं को मनाई है। गृहस्थों के लड़कों को चेला बनाकर ये अपना पंथ चलाते हैं। ये लोग न तो तिलक लगाते हैं, न चोटी रखते हैं और न गले में कंठी पहिनते हैं। ये प्राय हाथ में सुमिरनी रखते हैं और जब मिलते हैं 'सत्तराम' कहकर एक दूसरे का अभिवादन करते हैं। दादू पंथानुयायी निरंजन निराकार परब्रह्म की सत्ता को मानते हैं और मूर्त्तिपूजा में विश्वास नहीं रखते। ये अपने अस्थलों में दादूजी तथा उनके प्रधान-प्रधान शिष्यों की वाणियाँ रखते हैं और उन्हीं का अध्ययन-अध्यापन करते रहते हैं। जयपुर से लगभग बीस कोस की दूरी पर नराणा नाम का एक छोटा-सा कस्बा है। इसी के पास भैराणा की पहाड़ी है जहाँ पर दादूदयाल ने शरीर छोड़ा था। दादू पंथी इस स्थान को बहुत पवित्र मानते हैं और यही इनका मुख्य तीर्थ है। यहाँ पर दादूजी के उठने-बैठने के स्थान, कपड़े और पोथियाँ हैं, जिनकी पूजा होती है, प्रतिवर्ष फाल्गुन सुदी चौथ से द्वादशी तक एक भारी मेला लगता है और एक बहुत बड़ी सख्या में दादूपंथी लोग एकत्र होते हैं।

दादूजी

संत दादू का जन्म सं० १६०१ में हुआ था। इनकी जाति के संबंध में विद्वानों में बहुत मतभेद हैं। कोई इन्हें ब्राह्मण, कोई मोची और कोई धुनिया बतलाते हैं। इनके जन्मस्थान का भी ठीक ठाक पता नहीं है। कहते हैं कि अहमदाबाद के किसी लादी-राम नामक एक ब्राह्मण को ये साबरमती नदी में बहते हुए एक संदूक में मिले थे। उसीने इनका पालन-पोषण किया। इनके गुरु का नाम भी अज्ञात है। इनके शिष्य जनगोपाल ने 'दादू जन्मलीला परची' में लिखा है कि एक दिन भगवान ने स्वयं सामने आकर इनको दर्शन और उपदेश दिया था। तभी से ये विरक्त हो गये और साधु-सेवा तथा सत्संग में अपना जीवन बिताने लगे। उन्नीस वर्ष की उम्र में ये अहमदाबाद से राजस्थान में चले आए और साँभर, आमेर, कल्याणपुर, नराणा आदि स्थानों में घूम-घूमकर अपने धर्म-सिद्धान्तों का प्रचार करने लगे। दादूजी ने विवाह भी किया था और इनके दो पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं। इनके ज्येष्ठ पुत्र का नाम गरीबदास था जो इनकी मृत्यु के बाद इनकी गद्दी के उत्तराधिकारी हुए थे। दादूजी का गोलोकवास सं० १६६० के आस-पास नराणे में हुआ था।

दादूजी की 'वाणी' प्रसिद्ध है। इसमें इन्होंने प्रेम, गुरुभक्ति, सत्संग, माया, जीव, ब्रह्म आदि तत्वज्ञान सम्बंधी अनेकानेक विषयों पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। इनकी भाषा पिंगल है जो बहुत सीधी-सादी और सुलझी हुई है। कबीर की भाषा की तरह अटपटापन उसमें नहीं है। भाव-विचार की दृष्टि से इनकी रचना में बड़ी गंभीरता है। इनका एक पद और कुछ साखियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं—

भाई रे ऐसा पंथ हमारा
द्वै पख रहित पंथ गह पूरा अवरण एक अधारा।
वाद विवाद काहु सौं नाहीं मैं हूँ जग थे न्यारा॥
समदृष्टी सूँ भाई सहज में आपहिं आप विचारा।
मैं तैं मेरी यह मति नाहीं निरवैरी निरविकारा॥
काम कलपना कदे न कीजे पूरण ब्रह्म पियारा।
एहि पथ पहुँचि पार गहि दादू सो तत सहज सँभारा॥
घी व दूध में रमि रह्या, व्यापक सब ही ठौर।
दादू बकता बहुत हैं, मथि काढ़ैं ते और॥ १॥
दादू दीया है भला, दिया करो सब कोय।
घर में धरा न पाइये, जो कर दिया न होय॥२॥
कहिं कहिं मेरी जीभ रहि, सुणि सुणि तेरे कान।
सतगुरु बपुरा क्या करै, चेला मूढ अजान॥
दादू देख दयाल कौ, सकल रहा भरपूर।
रोम-रोम में रमि रह्यो, तू जिनि जानै दूर॥
केते पारिख पचि मुये, कीमति कही न जाइ।
दादू सब हैरान हैं, गूंगे का गुड़ खाइ॥
क्या मुँह ले हँसि बोलिये, दादू दीजै रोइ।
जनम अमोलक आपणा, चले अकारथ खोइ॥
सुरग नरक संसय नहीं, जिवण मरण भय नाहिं।
राम विमुख जे दिन गये, सो सालै मन माँहि॥
कहताँ सुनताँ देखताँ, लेताँ देताँ प्रान।
दादू सो कतहूँ गया, माटी धरी मसान॥
जिहि घर निंदा साधु की, सो घर गये समूल।
तिनकी नींव न पाइये, नाँव न ठाँव न धूल॥

ये जयपुर राज्य के नराणा नामक गाँव मे स० १६०० और सं० १६१० के बीच किसी समय पैदा हुए थे। इनकी जाति के सम्बन्ध मे मतैक्य नहीं है। कोई हिंदू और कोई मुसलमान बतलाते हैं। परन्तु अधिक मत मुसलमान मानने के पक्ष मे है। इनके मृत्यु-काल का भी निश्चित पता नहीं है। अनुमान किया जाता है कि स० १६८० के बाद और स०१६८७ से पूर्व ये ब्रह्मलीन हुए थे।

बखनाजी

बखनाजी की 'वाणी' प्रकाशित हो चुकी है। इसमे इनके पद, दोहे आदि संग्रहीत हैं। ये गायन विद्या मे प्रवीण थे। इसलिये इन्होंने गेय पद अधिक बनाए हैं जिनकी संख्या १६७ है। इनकी भाषा आम जनता की भाषा है। भाव बाँधन की शैली क्लिष्ट न होकर बहुत सरल और सुबोध है। उदाहरण देखिए—

बखना हरि जल बरखिया, जल-थल भरै अनेक।
करम कठाराँ माणसाँ, रोम न भीगो एक॥
पाणी मे पथर रह्यौ, ऊपरि बँध्या सिवाल।
बखना ढाच्याँ नीकळी, माँहि अगन की झाल॥
अभणी माया पार की, पलक एक मैं होइ।
अगनि दहै तसकर मुसै, देखत विनसै कोइ॥
पय पाणी मेळा पिवै, नहीं ग्यान का अस।
तजि पाणी पय नै पिवै, बखना साधू हंस॥

ये जात के पठान थे और जयपुर राज्य के सांगानेर नामक स्थान मे स० १६२४ के आसपास पैदा हुए थे। इनका असली नाम रज़बअलीखाँ था। कहते हैं कि बीस वर्ष की उम्र में जब ये अपना विवाह करने के लिए सांगानेर से आमेर गये हुये थे तब वहाँ इनका दादूदयाल से साक्षात्कार हुआ और विवाह करने का विचार छोड़ उनके चेले हो गये। तभी से ये दादू जी के साथ रहने और कथा-कीर्तन, सत्संग आदि मे अपना समय व्यतीत करने लगे। दादू जी के प्रति इनकी बड़ी श्रद्धा थी और वे भी इनको बहुत मानते थे। कहा जाता है कि दादूजी की मृत्यु से इन्हें संसार सूना प्रतीत होता था और जिस दिन उन्होंने शरीर छोड़ा उस दिन से इन्होंने भी अपनी आँखें बन्द कर लीं और आजन्म न खोलीं। इनका देहान्त सं० १७४६ मे साँगानेर ही मे हुआ था।

रज्जबजी

रज्जबजी पढ़े-लिखे न थे, पर बहुश्रुत थे। इन्होंने 'वाणी' और 'सर्वंगी' नामक दो बहुत बडे ग्रन्थ बनाए जिनसे इनकी कवित्वशक्ति, ज्ञानगरिमा और गुरु-भक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। इनकी भाषा पिंगल और कविता भावमयी है। भक्ति एव प्रेम के उद्‌गारो का इन्होंने बहुत ही हृदयग्राही और नैसर्गिक ढग से चित्रण किया है। इनकी रचना के नमूने लीजिए—

पद

सतों मगन भया मन मेरा
अह-निस सदा एक रस लागा दिया दरीबै डेरा ॥टेक॥
कुल मर्याद मैंड सब भागी वैठा भाठी नेरा।
जाति पाति कछु समझौ नाहीं किस कू करै परैरा ॥१॥
रस की प्यास आस नहिं औरौ इहिं मत किया बसेरा।
ल्याव ल्याव या ही लै लागी पीवैं फूल घनेरा ॥२॥
सो रस माग्या मिले न काहू सिर साटै बहुतेरा।
जन रज्जब तन मन दै लीया होय धणी का चेरा ॥३॥

साखी

दादू दरिया राम जल, सकल सत जन मीन।
सुख सागर मे सब सुखी, जन रज्जब लो लीन ॥१॥
सतगुरु चुम्बक रूप है, सिष्य सुई ससार।
अचल चलैं उनके मिलैं, या मे फेर न फार ॥२॥
विरही साबित विरह मे, विरह बिना मर जाय।
ज्यूं चूने का काकरा, रज्जब जल मिल जाय ॥३॥
नाव निरजन नीर है, सब सुकृत बनराय।
जन रज्जब फूलै फलै, सुमिरन सलिल सहाय ॥४॥
रज्जब पारस परस तैं, मिटिगो लोह विकार।
तीन बात तो रहि गई, बाक धार अरु मार ॥५॥
भली कहत मानत बुरी, यहै परकृति है नीच।
रज्जब कोठी गार की, ज्यू धोवै ज्यू कीच ॥६॥
सिर छेदे हू वीर को, वीरपना नही जाय।
दीन हीनता ना तजै, पद विशेष हू पाय ॥७॥
रज्जब कोल्हू काल कै, सब तन तिली समानि।
सो उबरै कहि कौन विधि, जो आया बिचि घानि ॥८॥

ये दादूदयाल के ज्येष्ठ पुत्र थे और उनके स्वर्गवास के बाद उनकी गद्दी के उत्तराधिकारी हुए थे। इनका जन्म स० १६३२ मे हुआ था। ये बहुत अच्छे पडित और गान-विद्या मे निपुण थे। इनके रचे 'साखी' 'पद' 'अनभै प्रबोध' 'अध्यात्म बोध' आदि ग्रन्थ मिलते हैं। एक पद देखिए—

गरीबदास

पद

नाद व्यद ले उरधै धरै।
सहज जोग हठ निग्रह नाही पवन फेरि घट माहै भरै ॥ टेक
त्रिकुटी ध्यान साधि नहिं चूके भौर गुफा क्यू भूलै।
द्वै सर साधि अनूप अराधै सुख सागर मे झूलै ॥१॥
इगला प्यगुला सुषमन नारी तिरवेणी सग ल्यावै।
नौसे नवासी फेरि अपूठा दसवें द्वार समावै ॥२॥
अरधै उरधै ताली लखै चन्द सूर सम कीन्हा।
अष्ट कमल दल माहे बिगसे ज्योति सरूपी चीन्हा ॥३॥
राम राम धुनि उठी सहज मे परचै प्राण सुपीवै।
गरीबदास गुरमुखि है बूझी जो जाणै सो जीवै ॥४॥

ये जाति के कायस्थ थे। स० १६४० के लगभग आमेर मे दादूजी के शिष्य हुए थे। दादूजी की इन पर बडी कृपा थी। प्राय. उन्ही के साथ रहा करते थे। बड़े योग्य और प्रतिभावान कवि थे। इनके 'वाणी' और 'गुण गजनामा' ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त इनके लिखे दो और ग्रन्थो का भी पता है, (१) गीता सार और (२) योग वाशिष्ठ सार। इनकी रचना का नमूना देखिए—

जगन्नाथदास

मणियाँ सहज इकीस लै, षटसत माला पोइ।
जगन्नाथ मन सुरति सों, रात-दिवस भजि सोइ ॥
मन की मेरे कलपना, तन निश्चल जगनाथ।
सुमिरन सो स्वासा रहै, चचल मन नहँ हाथ ॥

ये फतहपुर सीकरी के रहनेवाले जाति के वैश्य थे। अपने जन्मस्थान सीकरी में ही इन्होने दादूदयाल से गुरु-मत्र लिया था। इनका रचनाकाल स०१६५० के लगभग है। दादूपंथियों मे इनके पद और छद बहुत प्रचलित हैं। इनके ग्रन्थ ये हैं—

जनगोपाल

(१) दादू जन्म लीला परची (२) ध्रुव चरित्र (३) प्रह्लाद चरित्र (४) भरत चरित्र (५) मोहविवेक (६) चौबीस गुरुओं की लीला (७) शुक संवाद (८) अनन्त लीला (९) बारहमासिया (१०) भेट के नवैये कवित्त (११) नखर्डी-काया प्राण संवाद (१२) साखी, पद इत्यादि।

इनकी कविता का थोड़ा-सा अंश नीचे उद्धृत है —

नोमी मे स्वामी है आये। द्वारै सेवग तिन सुख पाये ॥
अरु जब बीते समये दोई। ढुढाहर की विनती होई ॥
स्वामी गये सबनि सुप पाये। रमते नग्र नगाणे आये।
बपनौ होगी गावत देख्यौ। गुरु दादू अपनौ करि पैष्यौ ॥
कृपा करी तब ऐमी स्वामी। वचन बोलिया अंतरजामी।
ऐसो देह रची रे भाई। राम निरंजन गावौ आई ॥
ऐसा वचन सुन्या है जबही। बपनो दष्या लीन्ही तबही ॥

ये ब्राह्मण कुल मे पैदा हुए थे और दादूजी के प्रधान शिष्यों में से थे इनका रचना-काल सं० १६५० के आस-पास है। बहुत बड़े संत और शास्त्र-

जगजीवन

वेत्ता थे। काव्य-रचना में भी निपुण थे। इनकी 'वाणी' एक बहुत बड़ा ग्रन्थ है। ये पहले वैष्णव थे और दादूपंथी बाद में हुए थे। इसलिए इनकी रचना पर वैष्णव धर्म के सिद्धान्तों का प्रभाव भी पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। इनकी भाषा बहुत सीधी-सादी और सरस है। उदाहरण—

खीर नीर निरनै करै, पर उपगारी संत।
कहि जगजीवण साखि धर, पारब्रह्म को अंत ॥
यह सब सम्पत्ति जायगी, विपति पडेगी आय।
जगजीवण सोई भली, जै कोइ खरचै खाय ॥

ये दादूजी के शिष्य जगजीवनजी के चेले थे। मिश्रबंधु-विनोद में इनका समय सं० १७१५ बतलाया गया है, जो अशुद्ध है। इनका ठीक समय

दामोदरदास

सं० १६५० और सं० १६६० के मध्य में है। इन्होंने गद्य में मार्कंडेयपुराण का अनुवाद किया था जो काफी अच्छा है। ये पद्य-रचना भी करते थे। दो दोहे देखिए—

सगति सुरझै प्राणि सब चार वरण कुल सब्ब।
हरि सुमरण हित सूँ करै कारज होवै तब्ब ॥

कोटि कोटि किन कीजिये जो कीजै सतसग।
सतसगत सुमरण बिना चटै न जिउ के रग ॥

ये गूलर (मारवाड) के रहनेवाले थे। रचना-काल सं० १६६१ है। इनका लिखा 'सत गुण सागर सिद्धान्त' नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इसमें २४ तरगें हैं। दादूजी के चरित्र का अनेक छदों मे वर्णन किया गया है। बहुत उपयोगी रचना है। इसका साहित्यिक महत्व भी यथेष्ट है। एक सवैया यहाँ दिया जाता है—

माधौदास

औसा मे इक भूसर सेवग, ता सुत सुन्दर नाम कहाई।
ता जननी सुत आइ गुरु ढिग, पाद-सरोजहि देख लुभाई ॥
सुन्दर के सिर हाथ धरयौ गुरु कानहिं मे निज मत्र सुनाई।
बालपने उपदेश दियो गुरु मात पिता घर तात रहाई ॥

ये फतहपुर-निवासी जाति के महाब्राह्मण (तारक व आचारज) थे और सतदास के चेले थे। इनका रचना-काल सं० १६८३ है। सत्सगी और गुणाढ्य महात्मा थे। इनकी 'भीख बावनी' एक प्रसिद्ध रचना है। इसमें ५३ छप्पय हैं। नीति का यह एक छोटा पर अमूल्य ग्रन्थ है। भाषा इस ढग की है—

भीखजन

सम्वत सोला सह बरस, जय हुतो तियासी।
पोष मास पष सेत, हेत दिन पूरनमासी ॥
सुभ निषत्र गुन करयौ, अखिर जो धरयौ जु आरज।
कथ्यौ भीखजन ग्यान, जाति द्विज कुल आचारज ॥
सब सतन सौ बिनती करै, औगुन मोहि निवारियौ।
मिलते सूॅ मिलता रहह, अनमिल आक सवारियौ ॥

ये चमडिया गोत्र के अग्रवाल महाजन और दादूजी के बावन प्रधान शिष्यों में से थे। इनके जन्म-काल का ठीक-ठीक पता नहीं है। इन्होंने जीवित समाधि ली थी। समाधि समय सं० १६९६ है। इनकी अठखभो की एक छतरी अभी तक फतहपुर में विद्यमान है। इन्होंने 'वाणी' रची थी जिसकी छद-सख्या बारह हजार है। इसी से ये 'बारा हजारी' भी कहलाते थे। रचना इस तरह की है—

संतदास

रैण छमाही हो रही, आया नाँही पीव।
सत सनेही कारणै, तलफै मेरा जीव॥
बिरहणि बिछुड़ी पीव सा, ढूढत फिरै उदास।
सतदास इक पीव बिन, निश्चल नाँही वास॥

ये बूसर गोत्री खंडेलवाल महाजन थे और जयपुर राज्यान्तर्गत द्यौसा नगरी मे, जो जयपुर शहर मे पूर्व दिशा मे १६ कोस पर है, स० १६५३ में पैदा हुए थे। इनके पिता का नाम चोखा उपनाम परमानद और माता का सती था। ये दोनो बडे धर्मात्मा, भगवद्-भक्त और साधु-महात्माओं का सत्कार करनेवाले व्यक्ति थे। कहते हैं कि टहटडा गाँव की ओर से घूमते हुए एक दिन दादूदयाल जब द्यौसा मे आये और सुन्दरदास के माता-पिता इन्हे लेकर उनके निवास स्थान पर गये तब दादूजी इनकी मुखाकृति से बहुत प्रभावित हुए और होन-हार समझकर इन्हे अपना चेला बना लिया। इस समय सुन्दरदास की अवस्था ६ वर्ष की थी। उसी दिन से इन्होने अपना जन्म-स्थान तथा परिवार छोड दिया और जगजीवन नामक दादूजी के एक शिष्य की देख-रेख मे गुरु के साथ रहने लगे। अपने 'गुरु सप्रदाय' ग्रन्थ मे सुन्दरदास ने इस घटना का उल्लेख किया है—

सुन्दरदास

प्रथमहिं कहौ आपुनी बाता, मोहि मिलायौ प्रेरि विधाता।
दादूजी जब द्यौसह आये, बालपनै हम दर्शन पाये॥
तिन के चरननि नायौ माथा, उनि दीयौ मेरै सिर हाथा।
स्वामी दादू गुरु है मेरौ, सुन्दरदास शिष्य तिन केरौ॥

दादूजी के स्वर्गवास (स० १६६०) के समय तक ये नराणे मे रहे। तदन्तर अपने माता-पिता के पास द्यौसा चले आए और कुछ दिन वहाँ रहकर शिक्षा प्राप्त करने के लिए काशी चले गए। लग भग तीस वर्ष की आयु तक काशी मे रहकर इन्होने व्याकरण, साहित्य, वेदान्त, योग और षट्दर्शन के ग्रन्थो का मनन किया तथा भाषा काव्य के छद, रस, अलकारादि विविध अंगो के विषय में भी बहुत से ग्रन्थ पढे। वहाँ से लौटकर ये अपने गुरु भाई प्रयागदास के साथ फतहपुर मे रहने लगे।

सुन्दरदास बाल ब्रह्मचारी, बडे स्वरूपवान, विनोदप्रिय तथा मधुरभाषी थे। उनकी प्रकृति अत्यन्त सरल और उन्मुक्त हँसी बालको की तरह भोली

थी। उच्चकोटि के दार्शनिक होते हुए भी दार्शनिकों का-सा रूखापन इनके स्वभाव में न था। सरल, निरभिमान तथा आडम्बर-शून्य स्वभाव के साथ-ही साथ स्वामीजी के व्यक्तित्व में कुछ ऐसा आकर्षण था कि जिससे प्रत्येक मिलनेवाला प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था। उनकी मनमोहक मुख-श्री और सौम्य मूर्ति के दर्शन मात्र से एक प्रकार की पवित्रता एवं शान्ति का अनुभव होता था। स्वामीजी सत्साहित्य के उद्भावक, पोषक तथा उन्नायक थे, और कहा करते थे कि शृङ्गार रसात्मक कविता कला की दृष्टि से चाहे कितनी ही उच्चकोटि की क्यों न हो, लोकहित साधन के विचार से तो विष ही है। केशवकृत रसिकप्रिया हिन्दी साहित्य में रसों पर एक अद्भुत, अपूर्व एवं अनूठा ग्रन्थ समझा जाता है पर सुन्दरदास की दृष्टि में उसका कुछ भी मूल्य न था—

> रसिकप्रिया रसमजरी और सिंगारहि जानि।
> चतुराई करि बहुत विधि विषै बनाई आनि॥
> विषै बनाई आनि, लगत विषयिन को प्यारी।
> जागै मदन प्रचण्ड, सराहैं नख सिख नारी॥
> ज्यों रोगी मिष्टान्न, खाइ रोगहि विस्तारै।
> सुन्दर यह गति होइ, जु तौ रसिक प्रिया धारै॥

स्वामीजी को देशाटन का बडा शौक था। बिना किसी खास कारण के एक स्थान पर ये विशेष न रहते थे। प्राय समस्त उत्तरी भारत, गुजरात, मध्यप्रदेश, मालवा आदि का इन्होंने कई बार पर्यटन किया था, और दादू पंथियों के स्थानों को देखा था। इससे इनके ज्ञान-भडार की अच्छी अभि-वृद्धि हुई और अन्य भाषा-भाषियों के सम्पर्क में आने से अरबी, फारसी, पूर्वी, पजाबी, गुजराती आदि भाषाओं का भी इन्हें अच्छा ज्ञान हो गया। इनका नियम था कि जिस स्थान पर जाते वहाँ के साधु-महात्माओं से अवश्य मिलते थे। उनके सत्संग से लाभ उठाते और अपने सदुपदेशों से उन्हे लाभान्वित करते थे। अपनी गुणग्राहिता के कारण दादूपंथियों के सिवा इतर धर्मावलम्बी भी इन्हें बडी श्रद्धा की दृष्टि से देखते और इनकी ज्ञान-गरिमा, साधुता तथा रचना-पाटव की बडी सराहना करते थे।

सुन्दरदास कभी फतहपुर में, कभी मोरा में, कभी कुरसाने में, और कभी आमेर में रहे पर अन्त समय में ये सागानेर में थे, जहाँ स० १७४६ में इनका बैकुंठवास हुआ।

सुन्दरदास के कई शिष्य थे जिनमें दयालदास, श्यामदास, दामोदरदास, निर्मलदास और नारायणदास मुख्य थे। इन पाँचों के थाभा को बड़े थामे कहते हैं। उनमें भी फतहपुर का थाभा प्रधान गिना जाता है। इसलिए ये 'सुन्दरदास फतहपुरिया' भी कहलाते हैं। इनके हाथ की लिखी हुई पुस्तकें, इनके पलग, चादर, टोपी आदि भी फतहपुर में इनके थाभाधारियों के पास सुरक्षित हैं। सागानेर में जिस स्थान पर स्वामीजी का अग्नि-सस्कार हुआ, वहाँ पर उनके शिष्यों ने एक छोटा-सा चबूतरा तयार कर उस पर एक छोटी-सी गुमटी बना दी थी जो स० १९६५ तक ठीक दशा में रही पर बाद में न मालूम किसी ने उसे तोड-फोड डाला और स्वामीजी के चरण-चिन्हों को भी उखाड़ कर फेक दिया। इस छतरी में यह चौपाई खुदी हुई थी :—

> सवत सत्रास छीयाला, कातिक सुदि अष्टमी उजाला।
> तीजे पहर भरस्पतिवार, सुन्दर मिलिया सुन्दर सार॥

इनके रचे ग्रन्थों के नाम निम्न हैं—

ज्ञान-समुद्र, सर्वांगयोग, पचेन्द्रिय चरित्र, सुख समाधि, स्वप्न-प्रबोध, वेद विचार, उक्त अनूप, अद्भुत उपदेश, पच प्रभाव, गुरु सप्रदाय, गुन उतपति, सद्गुरु महिमा, बावनी, गुरुदया षटपदी, भ्रमविध्वशाष्टक, गुरु कृपा अष्टक, गुरु उपदेश अष्टक, गुरु महिमा अष्टक, रामजी अष्टक, नाम अष्टक, आत्मा अचल अष्टक, पजाबी भाषा अष्टक, ब्रह्मस्तोत्र अष्टक, पीर मुरीद अष्टक, अजब ख्याल अष्टक, ज्ञान झूलना अष्टक, सहजानद ग्रथ, गृह वैराग्य बोध ग्रथ, हरिबोल चितावनी, तर्क चितावनी, विवेक चितावनी, पवगम छन्द ग्रथ, अडिल्ला छद ग्रथ, मडिल्ला-छद ग्रन्थ, बारहमासो, आयुर्बल भेद आत्मा विचार, त्रिविध अतःकरण भेद ग्रन्थ, पूर्वीभाषा बरवै ग्रन्थ, सवैया (सुन्दर विलास) साखी ग्रन्थ, फुटकर पद, कवित्त इत्यादि—

हिंदी साहित्य के निर्गुणोपासक भक्त कवियों में सुन्दरदास का एक विशेष स्थान है। शान्तरस और वेदान्त विषयक कविता इनकी सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। इनकी भाषा पिंगल और वर्णन-शैली सरस, स्पष्ट एव साहित्यिक है। सत कवियों में यही एक ऐसे व्यक्ति हुए हैं जो दिग्गज विद्वान एव साहित्य-मर्मज्ञ थे और पद-साखियों के अतिरिक्त कवित्त-सवैया लिखने में भी सिद्धहस्त थे। अत: रीतिकालीन कवियों की अभिव्यजना पद्धति पर रची हुई इनकी कविताओं का जितना औपदेशिक मूल्य है उतना ही साहित्यिक

भी। और यही कारण है कि उन्हे पटकर ज्ञान-पिपासु भक्तजन ही परितृप्त नहीं होते, बल्कि बडे-बडे काव्य कला-कौशल प्रेमी भी आनदित होते और झूमने लगते हैं। इनकी रचना के नमूने देखिए—

कवित्त

अपने न दोष देखै पर के औगुन पेखै
दुष्ट को सुभाव उठि निंदाई करतु है।
जैसे काहू महल सवार राख्यौ नीके करि
कीरी तहाँ जाइ छिद्र ढूढत फिरतु है॥
भोर ही ते साँझ लग साँझ ही ते भोर लग
सुन्दर कहतु दिन ऐसे ही भरतु है।
पाँव के तरोस की न सूझै आगि मूरख कौ
और सो कहतु सिर ऊपर बरतु है॥

कामिनी को तन मानों कहिए सघन वन
उहाँ कोउ जाइ सुतो भूलि कैं परतु है।
कुञ्जर है गति कटि केहरि को भय जामैं
वेनि काली नागनीऊ फन को धरतु है॥
कुच है पहार जहा काम चोर रहे तहाँ
साधि कै कटाक्ष-बान प्रान कौ हरतु है।
सुन्दर कहत एक और डर अति ता मैं
राक्षस बदन खाउ खाउ ही करतु है॥

सवैया

घात अनेक रहे उर अतर दुष्ट कहै मुख सौ अति मीठी।
लोटत पोटत व्यघ्रहि ज्यौ नित ताकत है पुनि ताहि की पीठी॥
ऊपर ते छिरके जल आनि सु हेठ लगावत जारि अगीठी।
या महिं कूर कछू मति जानहु सुन्दर आपुनि आँखिनि दीठी॥

तू ठगि कै धन और को ल्यावत तेरेउ तौ घर औरइ फोरै।
आगि लगै सब ही जरि जाय सु तू दमरी दमरी करि जोरै॥
हाकिम को डर नाहिंन सूझत सुन्दर एकहि बार निचोरै।
तू खरचै नहिं आपुन खाइ सु तेरिहि चातुरि तोहि ले बोरै॥

पद

मन कौन सो लगि भूल्यो रे।
इन्द्रिनि के सुख देखत नीके जैसे सेवरि फूल्यौ रे ॥ टेक ॥
दीपक जाति पतंग निहारि जरि बरि गयौ समूल्यौ रे ॥१॥
झूठी माया है कछु नाहीं मृगतृष्णा मे भूल्यो रे ॥२॥
जित तित फिरै भटकतो यों ही जैसे बायु बघूल्यौ रे ॥३॥
सुन्दर कहत समुझि नहिं कोई भवसागर हैं डूल्यौ रे ॥४॥

ये दादूजी की शिष्य परंपरा मे रज्जबजी के चेले थे। इनका रचना-काल काल सं० १७४० के आसपास है। इन्होने चार ग्रन्थ बनाए जो इनकी ज्ञान-गरिमा के अच्छे परिचायक हैं। इनकी भाषा प्रौढ और परिमार्जित है। कविता-शैली संयत और गंभीर है। ग्रंथों के नाम ये हैं कर्म-धर्म संवाद, सुख संवाद चितावणी योग संग्रह, और साखी। इनकी कविता का एक उदाहरण निम्न है। इसमे इन्होंने गुरु रज्जबजी का गुणगान किया है—

खेमदास

ग्यानवन्त गंभीर सूर सावत सुलच्छन।
पंच पचीसी मेलि भरम गुन इन्द्रिय भच्छन॥
दुरजन द्वै दल मोडि मोह मद मच्छर माया।
खल खबीस सब पीस सीस धरि ईस गजाया॥
सैमन्त मना गुर ज्ञान मैं खेम बुद्धि लै अरि हते।
ध्यान अडिग धर धीर धुर जन रज्जब पूरे मते॥

ये जाति के क्षत्रिय थे। इनके गुरु का नाम प्रहलाददास था। इन्होने 'भक्तमाल' नामक एक ग्रंथ लिखा जो सं० १७७० मे समाप्त हुआ था। इसमे दादू पन्थ के प्रधान-प्रधान महन्तो के जीवन चरित्र वर्णित हैं। भाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा और कविता सरल तथा सारगर्भित है। दादू पंथी बहुत से सन्तों का जीवन-इतिहास हमें इस भक्तमाल के द्वारा विदित होता है और इस विचार से यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी है। एक उदाहरण देखिए—

राघवदास

द्वीत भाव करि दूर एक अद्वीतहि गायौ।
जगत भगत षट दरस अवनि कै चाणिक लायौ॥

अपणा मत मजबूत थप्यौ अरु गुरू पक्ष भारी।
आन धर्म करि खड अजा घट मैं निरवारी॥
भक्ति ज्ञान हटि माखिलौ सर्व सास्त्र पारहि गयौ।
सकराचारज दूसरो दादू के सुन्दर भयौ॥

ये एक पठान के कुल मे पैदा हुए थे। मिश्रबन्धुओं ने इनका जन्म सवत् १७०८ दिया है, जो सन्दिग्ध है। राघवदास कृत भक्तमाल मे लिखा है कि एक बार एक हरिणी का शिकार करते समय इनके मन मे दया का प्रादुर्भाव हुआ, जिससे हिंसात्मक कार्यों को छोड़कर ये सत्सग मे लग गए। इन्होंने दादू पथ को स्वीकार कर लिया और रात-दिन ईश्वर भजन मे व्यतीत करने लगे। इनके रचे ग्रन्थों के नाम ये हैं—

बाजीदजी

(१) अरिल (२) गुण कठियारा नामा (३) गुण उत्पत्ति नामा (४) गुण श्री मुख नामा (५) गुण घरिया नामा (६) गुण हरिजन नामा (७) गुण नाव माला (८) गुण गज नामा (९) गुण निरमोही नामा (१०) गुण प्रेम कहानी (११) गुण विरह का अग (१२) गुण नीसानी (१३) गुण-छन्द (१४) गुण हित उपदेश ग्रथ (१५) पद (१६) राज कीर्तन। उदाहरण

डार छाँडि गहि मूल मानि सिख मोर रे।
बिना राम के नाम भलो नहिं तोर रे॥
जो हमकू न पत्याय बूझि किहिं गाव मे।
परिहाँ बाजीदा जप तप तीरथ वरत सबै एक नाम मे॥

ये जयपुर राज्य की उदयपुर तहसील के जाखल नामक गाँव के पास ढाँणी मे रहते थे। इनका रचना-काल स० १९०० के आस पास है। ये जाति के चारण थे, पर दादूपथ को स्वीकार कर लिया था। कवि होने के सिवा ये वीर और साहसी भी पूरे थे। इन्होंने लगभग १०० ग्रन्थ बनाए जिनमें 'सुन्दरोदय' इनकी सर्वोच्च रचना है। इसमे नागा जमात का वर्णन है। इनका एक पद्य देखिये—

मगलराम

जै जै जै जग तार, निरजन निज निरकारा।
सदा झिलमिले जोति, पुजि कहुँ वार न पारा॥
नूर तेज भरपूर, सूर सावत हजूरा।
गुण विकार करि छार, लह्यौ निज आतम मूरा॥

सुदि सरूप अनूप पद, सदा सभा निश्चल सुदा।
सगल नग निस्तार कूँ प्रगट रहै पलक न जुदा॥

इसके अतिरिक्त दादूपंथियों में मोहनदास, रामदास, लक्ष्मीदास, नारायणदास प्रयागदास कान्हडदास, चतरदास, प्रहलाददास, टीलाजी कल्याणदास जैतदास इत्यादि और भी अनेक अच्छे साहित्यकार हुए हैं।

चरणदासी पंथ

यह पंथ चरणदासजी से निकला है और कबीर पंथ से बहुत मिलता-जुलता है। इस पंथ के अनुयायियों में शब्द मार्ग बहुत प्रचलित है और गुरु चरणों का आश्रय लेना ही सर्वोच्च साधन मानते हैं। चरणदास ने मूर्ति-पूजा का खंडन और निराकारोपासना का समर्थन किया था। पर आजकल उनके अनुयायी मूर्ति पूजा भी करने लग गए हैं। चरणदासी साधु पीले वस्त्र पहिनते हैं, और ललाट पर गोपी चंदन का पतला तिलक लगाते हैं। ये सिर पर पीले रंग की पगड़ी बाँधते हैं, जिसके नीचे भी पीले रंग की एक नोकदार टोपी होती है।

इनका जन्म मेवात प्रदेश के डहरा नामक ग्राम में सं० १७६० के लगभग हुआ था। कुछ लोग इन्हें ब्राह्मण और कुछ दूसरे बनिया बतलाते हैं।

चरणदास

इनके पिता का नाम मुरलीधर और माता का कुंजो था। जब ये सात वर्ष के थे तब इनके पिता घर छोड़कर कहीं चले गए जिससे अपनी माता के साथ ये भी अपने नाना के घर दिल्ली में जाकर रहने लगे। कहते है कि वहीं १६ वर्ष की आयु में शुकदेव मुनि ने इन्हें शब्दमार्ग का उपदेश दिया। बारह वर्ष तक गुरुपदिष्ट मार्ग में साधन अभ्यास कर बाद में चरणदास ने लोगों को उपदेश देना प्रारंभ किया इन्होंने चरणदासी पंथ चलाया और अपने पीछे ५२ शिष्य छोड़कर सं० १८३८ में परलोक सिधारे जिनकी गद्दियाँ आज भी विभिन्न स्थानों में चल रही हैं। चरणदासजी ने १४ ग्रन्थों की रचना की। इनके नाम ये हैं—

(१) अष्टांग योग (२) नासकेत (३) सन्देह सागर (४) भक्ति सागर (५) हरि प्रकाश टीका (६) अमरलोक खंड धाम (७) भक्ति पदारथ (८) शब्द (९) मन विरक्त करन गुटका (१०) राम माला (११) ज्ञानस्वरोदय (१२) दान लीला (१३) ब्रह्मज्ञान सागर (१४) कुरुक्षेत्र की लीला।

उदाहरण —

> मैं मिरगा गुरु पारधी, शब्द लगायो बान।
> चरणदास घायल गिरे तन मन बींधे प्रान॥
> सतगुरु मेरा सूरमा करै शब्द की चोट।
> मारै गोला प्रेम का, ढहै भरम का कोट॥
> कडुवा बचन न बोलिए तन सो कष्ट न देय।
> अपना सा सब जानि के, बनै तो दुख हरि लेय॥

दयाबाई

ये महात्मा चरणदास की शिष्या थीं और उन्हीं के गाँव में पैदा हुई थीं। सं० १७५० और सं० १७७५ के बीच किसी समय इनका जन्म हुआ था। इन्होंने दयाबोध और विनयमालिका नामक दो ग्रन्थों की रचना की। दयाबोध की रचना सं० १८१८ में हुई थी। इस सम्बन्ध में इन्होंने स्वयं अपने ग्रन्थ में लिखा है —

> संवत् ठारा सै सगे, पुनि ठारा गये बीति।
> चैत सुदी तिथि सातवीं, भयो ग्रन्थ सुभ रीति॥

दयाबाई की कविता के विषय हैं— गुरु-महिमा, प्रेम का अंग, सूर का अंग, सुमिरन का अंग इत्यादि। इनकी कविता में दैन्य और वैराग्य की प्रधानता है और उस पर इनके उच्चादर्श एवं स्त्री सुलभ कोमलता की छाप लगी हुई है। इनके चार दोहे नीचे देते हैं—

> प्रेम पथ है अटपटो, कोई न जानत वीर।
> कै मन जानत आपनौ, कै लागी जेहिं पीर॥
> निरपच्छी के पच्छ तुम, निराधार के धार।
> मेरे तुम ही नाथ इक, जीवन प्रान अधार।
> नहि संजम नहिं साधना, नहिं तीरथ व्रत दान।
> मात भरोसो रहत है, ज्यों बालक नादान॥
> सीस नवैं तो तुमहिं कं, तुमहिं सूँ भाखूँ दीन।
> जो झगरूँ तो तुमहिं सूँ, तुम चरनन आधीन॥

इनका जन्म सं० १८०० के लगभग मेवात प्रदेश के डहरा नामक गाँव में एक दूसर वैश्य के घर में हुआ था। दयाबाई की तरह ये भी महात्मा

सहजोबाई चरणदास की शिष्या था। इनके पिता का नाम हरिप्रसाद बतलाया जाता है। सहजोबाई ने अपने गुरु चरणदास की बड़ी महिमा गाई है और उन्हें भगवान से भी ऊँचा माना है। इनकी रचना सरल तथा उल्लासपूर्ण है और उसमें प्रेम की गम्भीरता है। उनकी कविता का नमूना देखिए—

> राम दिवाने ने भये मन भयो चकनाचूर।
> छके रहैं घूमत रहैं, सहजो देख हजूर॥
> साहन कूँ तो भय घना, सहजो निर्भय रङ्क।
> कुंजर के पग बेड़ियाँ, चींटी फिरै निसंक॥
> अभिमानी नाहर बड़ो भरमत फिरत उजारि।
> सहजो नन्ही बाकरी, प्यार करै संसार॥

रामस्नेही पंथ

राजस्थान में रामस्नेहियों के मुख्य केन्द्र तीन हैं: शाहपुरा, खेड़ापा और रैण। शाहपुरे का रामस्नेही पथ रामचरणजी से चला है। इनके अनुयायी निर्गुण परमेश्वर को राम के नाम से मानते हैं और उसी का ध्यान करते हैं। ये मूर्ति-पूजा पे विश्वास नहीं रखते। रामस्नेही साधु रामद्वारे में रहते हैं और भिक्षा माँगकर अपनी उदर-पूर्ति करते हैं। ये कपड़े नहीं पहनते, सिर्फ लगोट बाँधे रहते हैं और ऊपर से चादर ओढ लेते हैं। पहले कोई-कोई साधु नगे भी रहते थे, जो परमहस कहलाते थे। ये प्राय तुम्बी, लगोट, चादर, माला और पोथी के सिवा कोई दूसरी वस्तु अपने पास नहीं रखते और न किसी से रुपया-पैसा लेते हैं। ये विवाह नहीं करते। किसी उच्च वर्ण के लड़के को अपना चेला मूँड लेते हैं और जो चेला सबसे पहले मूँडा जाता है उसी का गुरु की गद्दी पर अधिकार होता है। बड़े चेले को छोटे चेले नमस्कार करते और गुरुवत् समझते हैं। ये साधु रामद्वारे में रहते हैं जहाँ कथा बाँचते तथा भजन गाते हैं। यों तो सभी जातियों के लोग इन्हें पूज्य दृष्टि से देखते हैं, पर अग्रवाला तथा महेश्वरिया की भक्ति इनके प्रति विशेष है। ये रामस्नेही साधु शाहपुरा को अपना गुरुद्वारा समझते हैं जहाँ प्रत्येक वर्ष फाल्गुन सुदी १ से चैत्र वदि ६ तक मेला भरता है।

खेड़ापे का रामस्नेही पन्थ हरिरामदासजी से निकला है। हरिरामदास-जी का जन्म-स्थान सिंहथल (बीकानेर) था और इन्होंने स० १८०० में बीकानेर राज्यान्तर्गत दुलचासर नामक गाँव में जैमलदास नाम के एक रामानन्दी वैष्णव साधु से दीक्षा ली थी। इनके एक शिष्य रामदासजी हुए।

इन्होंने खेड़ापे में अपनी गद्दी स्थापित की। अतएव खेड़ापे के रामस्नेही रामदास जी को अपना आदि गुरु, हरिरामदासजी को आदि प्रवर्तक और जैमलदासजी को आदि आचार्य मानते हैं। इनके अनुयायियों की संख्या बीकानेर, जोधपुर, गुजरात और मालवे में अधिक है। रामदासजी स्वयं गृहस्थ थे और अपने चेलों को भी उन्होंने गृहस्थ धर्म के पालन का आदेश दिया था। अपने शिष्यों के लिए किसी प्रकार का स्वरूप और बाना भी उन्होंने नियत नहीं किया। पर बाद में इनके बेटे दयालदास और पोते पूर्णदास ने रामस्नेहियों के विरक्त, विदेही, परमहंस प्रवृत्ति और घरबारी ये पाँच भेद कर दिए जो आज तक चले आते हैं। शाहपुरे के रामस्नेहियों की भाँति ये भी मूर्तिपूजा नहीं करते। रामद्वारों में अपने गुरु का चित्र अवश्य रखते हैं। पर यह प्रथा भी हरिरामदासजी से बहुत पीछे से चली है। ये साधु भंग, तम्बाखू, गाँजा, मदिरा आदि किसी प्रकार का नशा नहीं करते और भक्षाभक्ष का पूरा ध्यान रखते हैं। ये रात्रि में भोजन नहीं करते और पानी को भी बार बार छानकर पीते हैं। खेड़ापे का गुरुद्वारा सिंहथल है। इन दोनों स्थानों पर होली के दूसरे दिन भारी मेला लगता है और साधु लोग भजन-कीर्तन तथा 'पंचवाणी' की कथा करते हैं।

रैण (मेड़ता) के रामस्नेही दरियावजी को अपना आदि गुरु मानते हैं। इनकी रहन-सहन तथा उपासना-पद्धति शाहपुरे तथा खेड़ापे के रामस्नेहियों से मिलती है। इनका गुरुद्वारा रैण है जहाँ दरियावजी का एक चित्र रखा हुआ है। वर्ष में एक भारी मेला यहाँ भी होता है और इनके अनुयायी एक बहुत बड़ी संख्या में एकत्र होते हैं।

रामचरण

ये जयपुर राज्य के सोडा नामक गाँव के रहनेवाले बीजावरगी बनिये थे। इनका जन्म सं० १७७६ में माघ शुक्ला चतुर्दशी शनिवार को हुआ था। इनके गुरु का नाम कृपाराम था जिनसे सं० १८०८ में इन्होंने दीक्षा ग्रहण की थी। सं० १८२६ में भ्रमते-घूमते ये भीलवाड़े (मेवाड़) में आए और वहाँ से शाहपुरे गए जहाँ के राजाधिराज रणसिंहजी ने इनका अच्छा स्वागत किया और इनकी गद्दी स्थापित करवाई। इनका देहावसान् सं० १८५५ में शाहपुरे में हुआ। इनके २२५ शिष्य थे जिनमें से रामजनजी इनकी गद्दी के उत्तराधिकारी हुए।

रामचरणजी की 'वाणी' प्रकाशित हो चुकी है। इसमें ८००० के लगभग छन्द हैं। इनकी कविता है तो तथ्यपूर्ण पर उसमें छंदोभंग बहुत है। उदाहरण—

क्षुधा पिपासा उदर सँग, शीत उष्ण तन माथ।
सो किसके सार नहीं, ये कर्त्ता के हाथ॥
ये कर्त्ता के हाथ और मति व्याधि लगावैं।
कंक स्वाद शृङ्गार अजक हैरान करावैं॥
रामचरण भज राम कूँ पाँचा परबल नाथ।
क्षुधा पिपासा उदर सँग शीत उष्ण तन साथ॥

रामहि राम अखण्डित ध्यावत राम बिना सब लागत खारो।
रामहि राम लिया मुख बोलत रामहि ज्ञान रु राम विचारो॥
रामहि राम करे उपदेश हि रामहि जोगरु जिग्य पसारो।
रामचरण इसं कोट साधु हैं सा ही सिरामणि प्राण हमारो॥

ये बीकानेर राज्यान्तर्गत सिंहथल नामक ग्राम के एक ब्राह्मण-कुल मे पैदा हुए थे। इनके पिता का नाम भाग्यचंद्र था। ये बड़े कुशाग्रबुद्धि तथा मेधावी थे। और बहुत थोड़ी आयु में वेदान्त, ज्योतिष आदि में परगत हो गए थे। इन्होंने सं० १८०० में दुलचासर ग्राम, जो सिंहथल से सात कोस है, में जाकर जैमलदासजी से दीक्षा ग्रहण की थी। इनके योग-चमत्कार की कई कथाएँ प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि इन्होंने स्वरूपसिंह नामक एक निर्धन व्यक्ति को धनवान बना दिया था। इनका स्वर्गवास सं० १८३५ में हुआ था। इनके सैकड़ो शिष्य-प्रशिष्य हुए जिनमें बिहारीदासजी मुख्य थे, यही इनके बाद इनकी गद्दी के अधिकारी हुए। इन्होंने बहुत सी फुटकर साखियाँ और पद बनाए तथा छोटे-छोटे ग्रन्थ लिखे जिनमें 'नीसाँणी इनकी सबसे प्रौढ रचना है। इसमें हठयोग, समाधि, प्राणायाम आदि की प्रक्रियाओं का वर्णन है। इनकी भाषा राजस्थानी और विचार उच्च हैं। उदाहरण देखिए—

हरिरामदास

रे नर सतगुरु सौदा कीजे।
इन सौदा में नफा बहुत है एक मना होय लीजै॥ टेर
मात पिता सुत भ्रात सनेही चौरासी लख हीजै॥१॥
जो कोई चाहै रामभक्ति कूँ गुरु की शरण गहीजै॥२॥
गुरू बिनु भरम न भाजै भव का कर्म न काल कटीजै॥३॥

गुरु गोविंद बिनु मुक्ति न जिव की कहियो वेद सुनीजे ॥४॥
जन हरिराम और सब कूकस राम शब्द सत बीजे ॥५॥

इनका जन्म सं० १७८३ में जोधपुर राज्य के सीकोकोर नामक ग्राम में हुआ था। ये जाति के मेघवाल थे। इनके पिता का नाम शार्दूलजी था।

रामदास

बाल्यावस्था में इन्होंने थोड़ा-सा विद्याभ्यास किया और बाद में विरक्त होकर किसी योग्य गुरु की खोज में इधर-उधर घूमने लगे। इन्होंने बारी-बारी से १२ गुरु किये पर किसी से भी सन्तोष न हुआ। अन्त में एक दिन एक सद्गृहस्थ के मुँह से हरिरामदासजी की वाणी सुनकर ये बहुत प्रभावित हुए और सिंहथल (बीकानेर) में जाकर उनसे भेंट की। सुयोग्य पात्र समझ कर उक्त स्वामीजी ने इन्हें राम मन्त्र का प्रभाव तथा रामस्नेही पन्थ के नियम बतलाए। इस पर सं० १८०६ में इन्होंने रामस्नेही पंथ को अंगीकार कर लिया और हरिरामदासजी के पास रहकर राम-नाम का जप करने लगे। सं० १८२१ तक ये सिंहथल में रह पर बाद में जोधपुर की ओर चले गए और वहाँ खेड़ापे में अपनी गद्दी स्थापित की। यहाँ इनके सैकड़ों शिष्य हुए, जिन्होंने आगे चलकर रामस्नेही पंथ के प्रचारार्थ बहुत काम किया। इनका गोलोकवास सं० १८५५ में ७२ वर्ष की आयु में खेड़ापे में हुआ।

रामदासजी ने गुरु महिमा, भक्तमाल, चेतावनी, जम फारगती, आदि ग्रन्थ तथा अगवद्ध अनुभव वाणी की रचना की जिसके दास, उदास, सभव और सुखवद ये चार भेद हैं। इनकी कविता का नमूना देखिए—

निरधन झूरै धन बिना, फल बिन नागरबेल।
रामा झूरै राम बिन, बिरही साले सेल ॥
कुंजर झूरै बन्न कूं, सूवा अम्बा काज।
बिरहिन झूरै पीव कूं, कबे मिलो महराज ॥

ये रामदासजी के पुत्र थे और उनके बाद खेड़ापे की गद्दी के अधिकारी हुए थे। इनका जन्म सं० १८१६ में और स्वर्गारोहण सं० १८८५ में हुआ था। ये बड़े अनुभवी और सच्चरित्र महात्मा थे। इनके

दयालदास

शिष्य पूरणदास ने अपनी बनाई हुई 'जन्म लीला' में इनकी बहुत प्रशंसा की है। कविता भी ये बहुत अच्छी करते थे। इनका बनाया हुआ 'करुणासागर' ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। इसके सिवा इनके रचे फुटकर पद भी बहुत से मिले हैं। इनकी कविता देखिए—

रामइया शरण की प्रतिपाल ।
अव लगि करी सोई अव कीजै अपने घर की चाल ।
जो सूरज परकासै नाहीं गत न कज विसाल ॥
ससि नहिं अमी द्रवे जो माधव तो निपजै कम रसाल ।
विरह कुमोदिनि जीवन सोई सव लाला सिर लाल ।
ख्याल वाल कै समरथ स्वामी रामदास किरपाल ॥

ये जोधपुर राज्य के जैतारण नगर के निवासी थे और सं० १७३३ में पैदा हुए थे। कुछ लोगों ने इन्हें जाति का मुसलमान (धुनिया) मान रखा है, जो निराधार है। क्योंकि न तो दरियावजी ने कहीं

दरियावजी

अपने ग्रन्थों में इस बात का उल्लेख किया है और न इनके समकालीन शिष्यों में से किसी ने इनका मुसलमान कुलोत्पन्न होना लिखा है। दरियावजी के अनुयायियों में से आज भी कोई यह नहीं कहता कि ये मुसलमान थे। अपने आचार्य की जाति का ठीक-ठीक पता वतलाने में दरियाव पथी अब असमर्थ हैं, पर वे मुसलमान नहीं थे यह कहने में सभी का मत एक है। हमारे खयाल से दरियावजी को मुसलमान लिखने की गलती सबसे पहले जोधपुर राज्य की मर्दुम रिपोर्ट (सन् १८९० ई०) तैयार करनेवालों ने की और उसी को सच मानकर लोगों ने इन्हें मुसलमान लिखना शुरू कर दिया है। इसके सिवा कुछ लोगों ने यह भी लिखा है कि दरियावजी की रुई पीजने की एक हाथली रेण में रखी हुई है, जिसके दर्शन करने के लिये साल में एक बार इनके अनुयायी बहुत बड़ी संख्या में वहाँ एकत्र होते हैं। परन्तु यह भी गलत है। रेण में कोई हाथली रखी हुई नहीं है। दरियावजी का एक चित्र रखा हुआ है जिसके दर्शनार्थ चैत्र सुदि पूर्णिमा को लोग वहाँ इकट्ठे होते हैं।

दरियावजी के पिता का नाम मानजी और माता का नाम गीगाँबाई था—

पिता मानजी जान गीगा महतारी।
त्रिविध मेटण ताप आप लियो अवतारी ॥

इनका जन्म-नाम दरियावजी था पर साधु होने के बाद से लोग इन्हें दरियासाजी कहने लग गए, जिसका आज कल दरिया साहब हो गया है। दरियावजी के गुरू का नाम पेमदास था जिनसे इन्होंने सं० १७६९ में दीक्षा ली थी। गुरु मन्त्र ग्रहण करने के कुछ वर्ष पश्चात् दरियावजी जैतारण से

रैण नामक गाँव मे चले गए और वहाँ पर अपनी गद्दी स्थापित की जो अभी तक विद्यमान है। मारवाड के सिवा राजस्थान की दूसरी रियासतो मे भी दरियावजी के रामस्नेहियो की सख्या काफी है। इनका स्वर्गवास स० १८०५ मे हुआ था।

दरियावजी को हिन्दी, सस्कृत, फारसी आदि भाषाओ का अच्छा ज्ञान था और काव्य रचना मे भी निपुण थे। कहते हैं कि इन्होने 'वाणी' नामक एक बहुत बडा ग्रन्थ लिखा था, जिसमे १०००० के लगभग पद, दोहा आदि थे। पर आजकल तो इनकी बहुत कम कविताएँ मिलती हैं। रामस्नेहियों मे यही एक ऐसे कवि हुए हैं जिनकी भाषा सुव्यवस्थित और रचना कवित्वपूर्ण कही जा सकती है। इनकी कविता के नमूने देखिए—

गुरु आए घन गरज करि, सबद किया परकास।
बीज पड़ा था भूमि मैं, भई फूल फल आस॥
जो काया कचन भई, रतनो जडिया चाम।
दरिया कहै किस काम का, जो मुख नाहीं नाम॥
विरहिन पिउ के कारने, ढूढन वन खॅड जाय।
निसि बीती पिउ ना मिला, दरद रहा लिपटाय॥
दरिया बगुला ऊजला, उज्जल ही है हस।
ये सरवर मोती चुगै, वाके मुख मे मस॥
सीखत ज्ञानी ज्ञान गम, करै ब्रह्म की बात।
दरिया बाहर चॉदना, भीतर काली रात॥
कचन कचन ही सदा, कॉच कॉच सो कॉच।
दरिया झूठ सो झूठ है, सॉच सॉच सो सॉच॥
साध पुरुष देखी कहै, सुनी कहै नहिं कोय।
कानो सुनी सो झूठ सब, देखी साँची होय॥

रामस्नेही पन्थ के कुछ और कवियों के नाम ये हैं जैमलदास (स० १७६०), सतदास (स० १६८६-स० १८०६), नारायणदास (स० १८०६-५३), परशराम (स० १८२४-६६), हरिदेवदास (स० १८३५-६४), पूरणदास (स० १८८५), अर्जुनदास (स० १८६२) और सेवगराम (स० १६००)।

बालकराम इनका विशेष वृत्त नहीं मिलता। अपनी रची भक्तमाल की टीका में इन्होने अपना थोड़ा-सा व्यक्तिगत परिचय दिया है जिससे मालूम होता है कि ये स्वामी रामानन्द की शिष्य परपरा में मीठाराम के चेले थे—

नारायण अग्रभग -दगाय धतिरान
ता की पद्धति मे रामानुज प्रतिकाम हैं।
नाम पद्धति में रामानन्द ता को पौत्र शिष्य
श्री पैहारी की प्रनाली मे भयो गतदास है ॥
ता "। को वालकदाम नाम प्रेम जा कौ खेम
खेम को प्रहलाददाम मिष्टराम ताम है।
मिष्टराम जू को शिष्य मौ बालकराम र्चा
टीका भक्तदाम गुण चित्रनी प्रकाम है ॥

इनका रचनाकाल स० १८०० २० है। ये रामस्नेही साधु बहुत उत्तम कोटि के विद्वान और कवि थे। इन्होने नाभाजी के भक्तमाल की टीका बनाई जिसका नाम 'भक्तदाम गुण चित्रनी टीका' है। यह नो मा मे अधिक पृष्ठों का एक भारी ग्रथ है। टीका यह कहने मात्र को है। वास्तव में यह एक स्वतत्र रचना है। इसमें दोहा, छप्पय आदि कई प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया है पर अधिकता चौपाइया छन्द की है। हिंदी के भक्त कवियों के विषय मे नाभादास ने अपने भक्तमाल मे जिन-जिन बातों पर प्रकाश डाला है उनके अलावा भी बहुत सी बाते इस मे नई बतलाई गई हैं। इसलिए इसका ऐतिहासिक मूल्य भी यथेष्ट है। इसकी भाषा मे ऐसा प्रवाह और वर्णन मे ऐसी धारावाहिकता है कि ग्रन्थ को हाथ मे लेने पर पूरा पढ़े बिना छोड़ने को जी नहीं चाहता। यदि ग्रन्थ प्रकाशित किया जाय तो इससे हिंदी की गौरव-वृद्धि निश्चित है। साथ ही सत-महात्माओं के अनेक तमाच्छन्न वृत्तों पर भी प्रकाश पड़ने की पूरी-पूरी आशा है। रचना का नमूना लीजिए—

अब कबीर की गाथा सुनियै आदि हु तें जौ होई।
बड आरूढ़ मता जिस हितकर पक्षपात नहिं कोई ॥
रामानन्दहि संवत एका बनिक तिया चित लाई।
नित दरसन स्वामी पै आवै सीधा ल्यावै वाई ॥
पै ताकै मन पुत्र कामना प्रगट न मुख सूँ गावै।
स्वामी अतरजामी जानी सौ ताकै मन भावै ॥
तब मन ही मैं कीन्ह विचारा दैहौं या कूँ पूता।
पै हरि पास हि आज्ञा लैऊँ यहु नारी अवसूता ॥

निरञ्जनी पथ

यह पथ हरिदास जी से चला है। इनके अनुयायी निरञ्जन निराकार की आराधना करते हैं। इनमें भी कुछ तो घरबारी और कुछ विरक्त हैं। घरबारी गृहस्थियों के से कपड़े पहिनते और रामानन्दी तिलक लगाते हैं। विरक्त खाकी रंग की गुदड़ी गले में डाले रहते हैं और मांगकर खाते हैं। कोई-कोई निरञ्जनी साधु गले में सेली भी बांधते हैं। पहले ये लोग मूर्ति पूजा नहीं करते थे, पर अब करने लग गए हैं। मारवाड़ राज्य में डीडवाने के पास गाढा नामक एक स्थान है जहां हर साल फाल्गुन सुदी १ से १२ तक मेला भरता है। इस अवसर पर इस पथ के बहुत से साधु यहां इकट्ठे होते हैं जिन्हें हरिदासजी की गुदड़ी के दर्शन कराए जाते हैं। गाढा निरञ्जनियों का प्रधान केन्द्र है। यहां इनके महंत और साधु रहते हैं। हरिदासजी के ५२ शिष्य थे जिनसे हरिदासोत, प्रह्लादासोत, अमरदासोत, नारायणदासोत आदि कई थामे स्थापित हुए। इनमें से बहुत से अभी तक विद्यमान हैं।

हरिदास

इनके जन्म, वंश, माता, पिता आदि का विवरण अंधकार में है। इनकी जाति के सम्बन्ध में भी मत की विभिन्नता है। कोई इन्हें बीदा राठौड़ और कोई जाट बतलाते हैं। परन्तु यह निश्चय है कि ये एक व्यक्तित्व सपन्न महात्मा और सहृदय कवि थे। इनके नीचे लिखे ग्रन्थों का पता है—

(१) भक्त बिरदावली (२) भरथरी सवाद (३) साखी (४) पद (५) नाम माला ग्रन्थ (६) नाम निरूपण ग्रन्थ (७) ब्याहलो (८) जोग ग्रन्थ और (९) टोडरमल जोग ग्रन्थ। इनका देहान्त सं० १७०२ के आसपास हुआ था। इनकी कविता का नमूना देखिए—

> भूख दूख सकट सहै, सहै बिडाणा मारे।
> हरीदास मौनी बळद, का सूँ करै पुकार॥
> घर आर्टे निरभै भई, डाव पड्यॉ यूँ होय।
> हरीदास ना मार कूँ, पासा लगै न कोय॥
> लोहा जल सूँ भीडए, तब लग काटी खाय।
> हरीदास पारस मिल्यॉ, मूँघे मोल बिकाय॥

छठवाँ प्रकरण

आधुनिक काल (पद्य)

राजस्थानी साहित्य का आधुनिक काल स्थूल रूप से सं० १६०० से प्रारंभ होता है। इस काल को मोटे ढंग से हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं, (१) परिवर्तन और (२) उत्तर परिवर्तन। प्रारंभ के २०-३० वर्षों का समय परिवर्तन और उसके बाद से आज तक का उत्तर परिवर्तन कहा जा सकता है।

परिवर्तन काल में सब से बड़े कवि बूँदी के सूरजमल हुए जिनको चारण लोग अपनी जाति का सर्वश्रेष्ठ कवि मानते हैं। निःसन्देह सूरजमल एक प्रतिभावान व्यक्ति थे। अपने युग के कवियों पर उनका इतना ही गहरा प्रभाव था जितना बंगाल के कवियों पर स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ ठाकुर का उनके समय में रहा। रवीन्द्रनाथ की तरह सूरजमल की प्रखर प्रतिभा ने भी राजस्थान के तत्कालीन कवियों की मौलिकता नष्ट कर दी और उन्हें न पनपने दिया। छोटे-मोटे सैकड़ों कवियों की मौलिक प्रतिभा इनकी काव्य-धारा के प्रचण्ड प्रवाह में बह गई। सूरजमल की कविता इतनी भावपूर्ण, इतनी सुन्दर और इतनी उच्च कोटि की होती थी कि कुछ कवियों ने तो इन्हीं के भावों को ला-लाकर अपनी रचनाओं में उतारना शुरू किया और कुछ स्वतंत्र कविता करना छोड़ इनकी कविताओं को सुना-सुनाकर कीर्तिलाभ लेने लगे। छोटे-छोटे कई सूरजमल उस समय पैदा हो गये थे। कवि-गोष्ठियों में, राज दरबारों में, साहित्य-सभाओं में जहाँ देखो वहाँ सूरजमल का नाम सुनाई पड़ता था।

उत्तर परिवर्तन काल में सूरजमल का प्रभाव कुछ कम हुआ और यहाँ के कवियों ने अपना रंग-ढंग बदला। हिन्दी संसार में यह समय भारतेन्दु हरिश्चंद्र का था। भारतेन्दु जितने देशाभिमानी थे उनसे कहीं अधिक ब्रजभाषा-प्रेमी थे। इनके प्रभाव से राजस्थान में ब्रजभाषा का प्रचार बहुत बढ़ गया। ब्रजभाषा में कविता यहाँ के कवि बहुत पहले से करते आ रहे थे, पर तब राजस्थानी और ब्रजभाषा दोनों साथ-साथ चलती थीं। कुछ कवि ब्रजभाषा में और कुछ राजस्थानी में रचना करते थे और कुछ को इन दोनों में लिखने का अभ्यास था। परन्तु इस समय से राजस्थान के कवि अपनी

को एक तरह से भूल ही गए। यहाँ तक कि चारण जाति के कवि भी जो राजस्थानी में कविता करना अपना एकाधिकार समझते थे, इसे छोड़ बैठे। परन्तु भारतेन्दु का यह प्रभाव केवल भाषा तक ही सीमित रहा विषय-वस्तु पर उनका प्रभाव कुछ भी न पड़ा। उनकी राष्ट्रीय भाव-भावनाओं को रियासती वातावरण में पले हुए यहाँ के कवि ग्रहण न कर सके अधिकांश प्रेम, विरह, शृंगार, वसंत, होरी, भक्ति, वैराग्य, छंद, अलंकार मदिरा तम्बाखू की हानियाँ इत्यादि कुछ निश्चित विषयों पर ही अपनी शक्ति खर्च करते रहे। इसलिए कविता बिलकुल निष्प्राण हो गई। उसमें न भाषा की नवीनता रही, न भावों की।

कालान्तर में जब ब्रजभाषा का जोर कुछ कम हुआ तब खड़ी बोली ने जोर पकड़ा। साथ ही राजस्थानी का भी पुनरुत्थान होना शुरू हुआ। फलत: राजस्थान के कवि इस समय ब्रजभाषा, खड़ी बोली, और राजस्थानी तीनों में रचना कर रहे हैं। इनमें से कुछ विशिष्ट कवियों का परिचय यहाँ दिया जाता है।

राजस्थान के चारण कवियों में कविराजा सूरजमल की बहुत प्रसिद्धि है। ये चंडीदान के बेटे थे। इनका जन्म सं० १८७२ में बूँदी में हुआ था। इनके छह स्त्रियाँ थीं पर किसी से कोई पुत्र पैदा नहीं हुआ, इसलिए इन्होंने मुरारिदान को गोद लिया था। 'वंशभास्कर' में सूरजमल ने अपनी स्त्रियों के नाम ये बतलाए हैं—

सूरजमल

> ढोला सुरजा विजयिका, जसा रु पुष्पा नाम।
> नि गोविंदा षट प्रिया, अर्कमल्ल कवि वाम॥

सूरजमल बहुत स्पष्टभाषी एवं स्वतंत्र प्रकृति के पुरुष थे। स्वभाव इनका इतना रूखा था कि लोग इनसे मिलना भी पसंद नहीं करते थे। शराब भी ये बहुत पीते थे। परन्तु नशे में इतने गाफिल नहीं हो जाते थे कि शरीर की सुध बुध ही न रहे। कहते हैं कि नशे की हालत में इनकी कल्पना-शक्ति और भी तीव्र हो उठती थी और दो आदमी जो इनके दाहिने बाएँ बैठे रहते बड़ी कठिनता से उस समय की कविताओं को लिख पाते थे। इनकी मृत्यु सं० १९२० में हुई थी।

ये स्वभाव-सिद्ध कवि एवं षट्भाषा-ज्ञानी थे और न्याय, व्याकरण आदि अनेक विषयों में पारंगत थे—

देखो चंडीदान रा, सुत रो सुजस सुजाण।
दोहा सुर माहे दुरस, वदियो अवे वखाण॥
चउदह विद्या चातुरी चौसट कळा चवात।
मिमासा माम्मट वळ, पातंजल हि पटात॥
न्याय उदाँत्र खेवट निरख, वेयाकरण विसेस।
पालकाप्य नाकुल प्रभण, साकुन सास्त्र असेस[1]॥

इन्होंने बहुत-सी फुटकर कविताएँ लिखीं और चार ग्रंथ बनाए जिनके नाम ये हैं.—

(१) वंशभास्कर
(२) वीर सतसई (अपूर्ण)
(३) बलवंत विलास
(४) छंदो मयूख

इनमें वंशभास्कर इनका सबसे बड़ा और प्रसिद्ध ग्रंथ है। यह बूँदी राज्य का पद्यात्मक इतिहास है और दो बार प्रकाशित भी हो चुका है। भाषा इसकी पिंगल है। अपने पांडित्य तथा शब्द-भंडार प्रदर्शन के हेतु सूरजमल ने इसमें कई नये शब्द गढ़कर रख दिए हैं और अनेक स्थानों पर संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश आदि भाषाओं के अप्रचलित एवं कर्णकटु शब्दों का प्रयोग किया है जिससे भाषा में कृत्रिमता और दुरूहता आ गई है। नमूना लीजिए —

कटिल्ल कर्णिकावली भटा हृदावली भये।
अरिष्ठ के अपष्ठ वृन्द लाम कन्द उन्नये॥
बनै अरी पलास कान अन्द नाग वल्लरी।
कलेज पांशु पर्णिका कसेरु तोरइ करी॥

परन्तु वंशभास्कर का ऐतिहासिक मूल्य यथेष्ट है। इसमें वर्णित घटनाएँ और विवरण बहुत कुछ सत्यता और वास्तविकता लिए हुए हैं।

इनका दूसरा महत्वपूर्ण ग्रंथ वीर-सतसई है जो अपूर्ण है। यह डिंगल भाषा में है। जब गोठडा के महाराज भीमसिंह बूँदी से युद्ध करने पर उतारू हो गए और बहुत समझाने-बुझाने पर भी न माने तो सूरजमल ने उनसे कहा कि खूब लड़ना, भागना मत। यदि बहादुर की तरह लड़ते हुए काम आए तो तुम्हारा नाम अमर कर दूँगा। फिर वीर-सतसई बनाना प्रारंभ

[1] मुरारिदान, डिंगल कोश, पृष्ठ १९

किया। कोई ३०० दोहे बना पाए थे कि भीमसिंह युद्ध-स्थली को छोड भागे इस पर सूरजमल ने वीर सतसई बनाना छोड दिया। कवि के नाते सूरजमल की कीर्ति को अक्षुण्ण रखनेवाली यह एक अपूर्व रचना है। वंशभास्कर से सूरजमल के ऐतिहासिक ज्ञान, उनके पांडित्य और उनकी अद्भुत वर्णन-शक्ति का पता लगता है। परन्तु उनकी असाधारण काव्य-शक्ति के अमर स्मारक वीर-सतसई के दोहे हैं। इन दोहों में किसी व्यक्ति विशेष का वर्णन नहीं है। वीरभाव की उपासना और उसकी पुष्टि इनका मुख्य मंतव्य है। इनमें सूरजमल का हृदय बोलता-सा प्रतीत होता है। इनकी भाषा भी सहज और प्राणवान है। दोहों का राजस्थान में बहुत प्रचार है। विशेष कर चारण कवियों पर इनका बहुत गहरा प्रभाव देखने में आता है।

इनके तीसरे ग्रन्थ 'बलवत-विलास' में रतलाम के महाराजा बलवतसिंह का चरित-वर्णन है और चौथा 'छंदो मयूख' छंद शास्त्र का एक बहुत सामान्य कोटि की रचना है।

सूरजमल वीर रस के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। डिंगल भाषा के वीर रस के कवियों में इनकी टक्कर का दूसरा कवि कोई नहीं हुआ। इनकी कविता की लोकप्रियता का कारण इनकी अनुभूति की सत्यता और भाव की गंभीरता है। युद्ध का, रणभूमि का, सतियों का, वीरोन्माद का, वीर-वीरांगनाओं के हृदयस्थ भावों का इन्होंने ऐसा सजीव, मार्मिक और नैसर्गिक वर्णन किया है कि पढ़कर दिल दहल जाता है। वस्तुतः सूरजमल उस कोटि के कवियों में से हैं जो शताब्दियों में पैदा होते हैं। इनकी वीर रस की कविता के कुछ नमूने हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

दुर्मिला

दुव सेन उदग्गन खग्ग समग्गन अग्ग तुरग्गन वग्ग लई ॥
मचि रंग उतंगन दंग मतंगन सज्जि रनंगन जंग जई ॥
लगि कंप लजाकन भीरु भगाकन बाक कजाकन हाक बढी ॥
जिम मेह ससब्बर यों लगि अंबर चंड अडंबर खेह चढी ॥१॥

(उदग्र खड्ग लेकर दोनों सेनाओं के सब लोगों ने घोड़ों की बागें उठाई। उस युद्ध में युद्ध जीतनेवाले सजे हुए ऊँचे हाथियों का युद्ध हुआ। लज्जित होनेवाले और भागनेवाले कायरों को कपकँपी लग गई। युद्ध करनेवाले

वाग के वचनो की हाक भरी और सजल मेघ के समान भयकर आडबर से आकाश मे धूल भरी ॥१॥

फहरक्कि दिसान दिसान बडे वहरक्कि निसान उडे वियरे ॥
रसना अहिनायक की निकसी कि परा झल होरिय की प्रसरे ॥
गजघट्ट टनक्किय भेरि भनक्किय रग रनक्किय कोच करी ॥
पखरान झनक्किय वान सनक्किय चाप तनक्किय ताप परी ॥२॥

(बडी और छोटी ध्वजाएँ फरककर दिशा दिशा मे उडकर फैल गई, मानो शेप नाग की जिह्वा निकली है अथवा होली की ज्वाला फैलती है। हाथियो की घटा, रणभेरी और कवचो की कडियाँ बजी। घोडो की पाखरो की झकार वाणो की झकार और धनुपो के खिचने मे भय हुआ ॥२॥

धमचक्क रचक्कन लग्गि लचक्कन कोल मचक्कन ताल कढ्यो ॥
पखरालन भार खुभी खुरतालन व्याल कपालन साल वढ्यो ॥
डगमग्गि सिलोचय शृ ग डुले झगमग्गि कृपानन अग्गि झरी ॥
वनि खल्ल तवल्लन हल्ल उझल्लन भुम्मि हमल्लन घुम्मि भरी ॥३॥

(युद्ध मे टक्कर लगने से भूमि मे लचक लगकर भूमि को धारण करने वाले वाराह के झुकने का ताल कटा। पाखरोवाले घोडो के भार से चुभी खुरतालो से शेपनाग के कपाल मे साल बढा। पवन हिलकर उनके शिखर डुलने लगे और तरवारो से चमकी हुई आग गिरी। उग हल्ले के बढाव मे खाल के ऊपर तवले (कुठार विशेप) बजकर भूमि हमल्लो से घूमने लगी ॥३॥,

मचि धारन ढोर दुआर मसीरन जोर उमीरन घोर जम्यो ॥
अभमल्ल उछाहन हड्ड हठी कछवाहन गाहन चाह क्रम्यो ॥
सुव जैत इतै भट देव सही करि स्वामि मही हित साग सज्यो ॥
दुहु ओर कुलाहक तोप दगी लगि भद्द वलाहक नद्द लज्यो ॥४॥

(घोडो की दौड से दोनो ओर का पवन चलकर अमीरो (सरदारो) का भयकर बल जमा। उस समय हठी हाडा अभयसिंह कछवाहो को मारने की इच्छा से चला। इधर जैतसिंह का पुत्र देवसिंह निश्चय ही अपने स्वामी (बुधसिंह) की भूमि के अर्थ सज्जित हुआ। दोनो ओर कोलाहल करनेवाली तोपें चलीं जिनसे भादौ के मेघ की गर्जना लज्जित हुई ॥४॥

उततैं कछवाहन उग्र उछाहन बेग सु वाहन वग्ग लई ॥
बनि बुंदिय बालम जग सु जालम सग हि सालम दौर दई ॥
परि रिद्धि कृपानन चड चुहानन गिद्धि उडानन गूद गहैं ॥
गन बीर गुमानन पीर प्रमानन बीर कमानन तीर बहैं ॥५॥

(उधर से बडे उत्साहवाले कछवाहों ने शीघ्र घोडों की बागें उठाई और उनके साथ ही युद्ध में जुल्म करनेवाला सालमसिंह बूँदी का पति बनकर दोडा। भयकर चौहाणों के खड्गों के निरतर प्रहारों से उड़ते हुए गीधों ने गूदा ग्रहण किया। वीर पुरुषों के समूह के गुमान की पीड़ा का प्रमाण करने के लिए वीरों की कमानों से तीर चलते हैं ॥५॥,

कढि बुत्थिन बुत्थि छई वसुधा लगि लुत्थिन लुत्थि परैं प्रजरैं ॥
भट सेल धमाकन रग रमाकन हड्डु सु हाकन होम हरैं ॥
लखि खग्ग उदग्गन मग्ग लगी जुरि अच्छुरि जग्ग प्रजापति ज्यों ॥
गल बाह करैं करि वीर वरैं गमने गन गैवर की गति ज्यों ॥६॥

(मॉस के टुकडे कटकर भूमि भर गई और लोथ पर लोथ गिरकर जलने लगी। युद्ध में क्रीडा करनेवाले वीरों के शरीरों पर भालों के धमाके होकर हाडा क्षत्रियों की हाक उनकी चाहना मिटाते हैं। उदग्र तलवारों को देखकर अप्सराएँ जिस प्रकार दक्ष प्रजापति के यज्ञ में गई उसी प्रकार इस युद्ध के मार्ग में लगी। वे गलबाँही करके वीरों को वरती हैं और उनका समूह हाथियों की चाल से चलता है ॥६॥)

दोहे

घोडां घर ढालाँ पटळ, भालाँ थभ बणाय।
जो ठाकर भोगै जमी, और किसूँ अपणाय ॥

(जो ठाकुर घोड़ों को अपना घर, ढालों को छत और भालों को खमे बनाता है, वह जमीन का उपभोग करता है। उसे दूसरा कौन अपना सकता है ?)

भाभी देवर नींद बस, बोलीजै न उताळ।
चवताँ घावाँ चूँकसी, जै सुणसी त्रबाळ ॥

(हे भाभी ! तुम्हारा देवर सोया हुआ है। जोर से मत बोलो। यदि वह नगाडों की आवाज सुन लेगा तो चूते हुए घावों से भी चौंक पड़ेगा।)

नीला मौं पहला पड़ूँ, कीवी उतावळ काय।
गाल्हा कवळा पाळियो, पड़तौ मूझ पुगाय॥

(हे अश्व! मेरे गिरने के पहले ही तूने जल्दी क्यों की? मैंने तुझे प्रेम से ग्रास खिलाकर पाला था। मुझे पहुँचा कर तो मरता।)

भाभी हूँ डाढी खड़ी, लीधा खेटक रूक।
थे मनुहारौ पावणा, मेडी झाल बँदूक॥

(हे भाभी! मैं ढाल-तलवार लेकर ड्योढ़ी पर खड़ी हूँ। तुम बँदूक लेकर मेड़ी पर जाओ और मेहमानों (शत्रुओं) का स्वागत करो।)

सुत धारा रज-रज थियौ, वहू वळेवा जाय।
लखिया डूँगर लाज रा, सासू उर न समाय।

(बेटा तलवारों से कटकर रज-रज हो गया और बहू सती होने को जा रही है। लज्जारूपी पहाड़ सासू के हृदय में नहीं समाता है। अर्थात् उसे इस बात पर लज्जा हो रही है कि उसका बेटा और बहू तो वीर गति को प्राप्त हो गये और वह अभी तक बची है।)

हावँ घर घर हाय रे, रोवै बरबर नार।
भाभी देवर नूँ कहौ, अब तो रोस उतार॥

(हे भाभी! घर-घर में हाय तोबा मची हुई है, स्त्रियाँ धाड़ मारकर रो रही हैं। देवर से कह दो कि वह अपने क्रोध को अब शान्त कर दे।)

ठकुराणी सतियाँ भणै, चून समाप्यौ सेर।
चूड़ो जिण दिन चाहसी, उण दिन केथ अबेर॥

(सती नारियाँ कहती हैं कि हे ठकुरानी! सेर भर आटा दे दो। जिस दिन सुहाग (युद्ध में लड़ने के लिए उनके पतियों की) की आवश्यकता होगी देरी नहीं लगेगी।)

पहर चउत्थै पाढियौ, गिणतौ फौज गरीब।
दोय घड़ी जक जीभ नूँ, वैरी आगा नकीब॥

(हे ढोली! मेरा पति फौज को काटते-काटते अब इस चौथे पहर में थोड़ा सा आराम ले रहा है। हे वैरी! दो घड़ी तो अपनी जीभ को रोक।)

दिन दिन मोळौ दोसतौ, सदा गरीबाँ सूत।
काकी कुंजर काटता, जाणवियौ 'जेठूत।

(हे काकी ! जेठ दिन-रिन भोंते और हमेशा गरीब दिखाई देते थे। आज तब हाथियों को काट रहे थे तब उनके असली रूप को पहचाना।)

और मुवा सुण आहडै, बरसाँ पाँच विचाळ।
घर में मायट घातियौ, बटकै पूँचा वाळ॥

(दूसरों की मृत्यु की सूचना पाकर माँ ने अपने एक पचवर्षीय बालक को युद्ध में जाने से रोक दिया। इस पर उसने अपने दाँतों से पहुँचों को काट-काट कर घर ही पर आत्म-हत्या कर ली।)

स्वरूपदास

ये देथा चारण मिश्रीदान के पुत्र थे। इनके जन्म-समय का ठीक-ठीक पता नहीं है। मृत्यु-संवत् १६२० है। इनके पूर्वज ऊमरकोट के रहनेवाले थे जहाँ से आकर इनके पिता अजमेर इलाके के बडली गाँव में बस गये थे। इनका बचपन का नाम शंकरदान था। इनको शिक्षा इनके चचा परमानन्द से मिली थी। परन्तु शिक्षा ग्रहण करते ही ये दादू पंथी साधु बन गये। इससे इनके चचा को बडी निराशा हुई। क्योंकि अच्छा विद्वान बनाकर वे इनके जरिये कहीं से अच्छी जीविका प्राप्त करना चाहते थे। इस बात पर दुख प्रकट करते हुए उन्होंने इन्हें एक पत्र में लिखा—

कीधौ थो कुण कौल, कह पाछौ कासूँ कियो।
बेटा थारो बोल, सालै निसदिन संकरा॥

ये संस्कृत, पिंगल, डिंगल आदि भाषाओं के अच्छे विद्वान और हिंदू धर्म-सिद्धान्तों के ज्ञाता थे। रतलाम, सीतामऊ आदि के राजदरबारों में इनका बडा मान-सम्मान था। सीतामऊ के तत्कालीन नरेश राजसिंह के पुत्र महाराज कुमार रत्नसिंह की तो इनके प्रति इतनी गहरी भक्ति थी कि उन्होंने अपने ग्रंथ 'नटनागर विनोद' के प्रारंभ में ईश्वर की वंदना न कर पहले इन्हीं की वंदना की है।

इन्होंने हृत्रयनाजन, उक्ति चंद्रिका, वृत्तिबोध इत्यादि छह ग्रंथ बनाए जिनमें पांडव यशेन्दु-चंद्रिका इनका सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ माना जाता है। इसमें महाभारत की कथा का सारांश है और सोलह अध्यायों में समाप्त हुआ है। ग्रंथारंभ में रस, अलंकार, छंद, आदि काव्यांगों पर भी संक्षेप में प्रकाश डाला गया है। भाषा पिंगल है। राजस्थान में इस ग्रंथ का पहले बहुत प्रचार

या पर अब उतना नहीं है। इसकी कविता बहुत सरल एव परिमार्जित है और हृदयस्पर्शी भाव-सौष्ठव तथा विषयगत लालित्य का इसमें अच्छा सयोग हुआ है। उदाहरण—

भीम को दियौ हौ विष ता दिन बयौ हौ बीज
लाखा-गृह आग ताको अकुर लखायो है।
बन - क्रीडा आदि विस्तार पाइ बडो भयौ
द्रौपदी-हरन भाग मजरि सौं छायौ है ॥
मत्स्य गाय घेरी जब पुष्प-फल-भार भरयौ
तैनै ही कुमन्त्र-जल सीचि के बढायौ है
विदुर के बचन-कुठार तै न कट्यौ वृच्छ
वा कौ फल पाकौ भूप ! तेरी भेट आयौ है ॥१॥

काली को सो चक्र कै फनाली को सो फूतकार
लोचन कपाली को सो भय कैसो है उदोति।
आयुध सुरेस को सो मानहु प्रलै को भानु
कोप को कृसानु किधौं मीचहू की मानौं सोति ॥
सुयोधन दुसासन दुर्मुख दुहृदगन
दाहिवो प्रमानि दीसि दूनी हुतै दूनी होति।
जेठ-ज्वाल-काल है कि जिह्वा जमराज की सी
जहर हलाहल कै भीम की गदा की जोति ॥२॥

नटनागर

ये सीतामऊ-नरेश राजसिंह के पुत्र थे। इनका जन्म स० १८६५ में हुआ था। बडे बलवान पुरुष थे और चित्र-कला, काव्य-कला एव सगीत-कला के प्रेमी थे। कवि कोविदो का इनके यहाँ ताँता लगा रहता था। स्वय भी अच्छी कविता करते थे और कविता में अपना नाम 'नट-नागर' लिखते थे। इनकी कविताओं के एक सग्रह, नट-नागर-विनोद, के तीन सस्करण निकल चुके हैं। अन्तिम सस्करण का सपादन प० कृष्णबिहारी मिश्र द्वारा हुआ है। यह सब से अच्छा है। नटनागर का देहान्त स० १९२० में अपने पिता के जीवन-काल ही मे हुआ। उस समय इनकी अवस्था ५५ वर्ष की थी।

ये डिंगल और पिंगल दोनों मे कविता करते थे। नट-नागर-विनोद मे इनकी दोनों भाषाओं की कविताएँ सग्रहीत हैं। परन्तु डिंगल की अपेक्षा

इन्होंने पिंगल में अधिक लिखा है। इनकी रचना में भक्ति-शृंगार का प्राधान्य है। कवि के भावुक हृदय का भाव इसमें उज्ज्वल रूप में प्रस्फुटित हो उठा है। भाषा भी सरल और स्वाभाविक है। उदाहरण—

> पहले तो प्रीति के पयोधि में पगाय दीन्हीं,
> अब तौ चुरायें नैन हाय या दहा करौ।
> ता पै ना सुनावत हौ रूखे मुख ऐसी बात,
> सुख जो चाहा तौ नेक दुख हू सहा करौ॥
> या ब्रज बुराई देत देर न लगैगी देखो,
> नीति यों सुनाओ नेह गैळ की गहा करौ।
> हमको न भाई नटनागर जगाई आप,
> प्यारे जो कहायें तौ न्यारे न रहा करौ॥

जीवनलाल

ये बूँदी-निवासी नागर ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १८७० में हुआ था। इनके पिता का नाम तुलाराम था। जीवनलाल बूँदी के महाराव राजा रामसिंह के प्रीति-पात्र थे। कई वर्षों तक बूँदी के प्रधान मंत्री रहे और अपनी कार्य-कुशलता तथा ईमानदारी से राज्य को बहुत लाभ पहुँचाया। सं० १९१४ के गदर में इन्होंने बूँदी राज्य का बहुत ही चतुराई से प्रबंध किया जिससे प्रसन्न होकर उक्त महाराव राजा ने इन्हें ताजीम, कटार, हाथी आदि प्रदान कर गौरवान्वित किया। इनका देहान्त सं० १९२६ में हुआ।

ये संस्कृत, हिंदी तथा फारसी के प्रौढ़ विद्वान थे। सोलह वर्ष की अवस्था में इन्होंने बारह हजार श्लोकों का 'कृष्ण खंड' नामक एक ग्रंथ बनाया था। इसके बाद इन्होंने संस्कृत-हिंदी के सात ग्रंथ और भी रचे थे ऊषा-हरण, दुर्गाचरित्र, भागवत भाषा, रामायण, गंगा शतक, अवतार-माला और संहिता भाष्य।

इनकी रचना में भक्ति तथा शृंगार की प्रधानता है। भाषा सरल एवं कविता रोचक और मधुर है। उदाहरण—

> निरखि निरखि नैन सुनि सुनि गान बैन
> हरखि हरखि मैन सैन रचिबौ करैं।
> फिरि फिरि फेरि ले ले इत उत आतु जातु
> उठि उठि बैठि बैठि अति पचिबौ करैं॥

सुनहु सुजान प्यारी आँखे अनियारी वारी
रोकै हू कहाँ लगि यो ता पै बचिवौ करै ।
उमगि अनंग रंग-रंग मधु भृंग भयो
तेरे संग-संग मन मेरो नचिवौ करै ॥

बख्तावरजी

ये टाक शाखा के राव थे । इनका जन्म सं० १८७० में मेवाड़ राज्य के बसी नामक गाँव में हुआ था । इनके पिता का नाम सुखराम था । जब ये बहुत छोटे थे तब सुखराम की मृत्यु हो गई जिससे बसी के ठाकुर अर्जुनसिंह ने इनकी देख-रेख की और पढ़ा लिखा कर होशियार किया । सं० १९०६ में किसी घरेलू झगड़े के सिलसिले में ये उदयपुर आए । उस अवसर पर इनकी महाराणा स्वरूपसिंह से भेंट हुई । प्रतिभादान देखकर उन्होंने इन्हें अपने पास रख लिया और कालान्तर में सिहारी तथा डागरी नामक दो गाँव, बैठक, पाँव में सोना और रहने के लिए मकान देकर इनका मान बढ़ाया । महाराणा स्वरूपसिंह के बाद के तीन महाराणाओं के समय में भी इनकी प्रतिष्ठा पूर्ववत् बनी रही । इनका देहांत सं० १९५१ में हुआ । उदयपुर के राजकीय दग्ध-स्थान, महासतिया में, महाराणा अमरसिंह (प्रथम) की छतरी के सामने इनकी भी छतरी बनी हुई है ।

बख्तावरजी ब्रजभाषा और राजस्थानी दोनों में कविता करते थे और काव्य-कला में निपुण थे । इन्होंने ग्यारह ग्रंथ बनाए जिनके नाम ये हैं—

केहर-प्रकाश, रसोत्पति, स्वरूप-यश-प्रकाश, शम्भु-यश-प्रकाश, सज्जन-यश-प्रकाश, फतह-यश-प्रकाश, सज्जन-चित्र-चन्द्रिका, रत्नार्णव, अन्योक्ति-प्रकाश, सामंत-यश-प्रकाश, और रागनियों की पुस्तक ।

इनमें 'केहर-प्रकाश' इनका सबसे बड़ा और सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है जो प्रकाशित भी हो चुका है । यह सं० १९३६ में लिखा गया था । इसमें कमल प्रसन्न नामक एक वेश्या और उसके प्रेमी केसरीसिंह की प्रेम कथा का वर्णन है । इसमें दस प्रकरण हैं और १४८६ छंद । भाषा राजस्थानी है । कहानी रोचक और कलापूर्ण है । इसकी प्रशंसा में कही हुई किसी सहृदय पाठक की यह उक्ति उल्लेखनीय है—

श्रवण नाहिं सुणीह, निज नैणा दीठी नहीं ।
वार्ता मुकुट वणीह, राव बखत रचना सरस ॥

बख्तावरजी का एक फुटकर कवित्त हम यहाँ देते हैं—

जुरेई जँजीरन मे द्वार को उदारता दे,
हले निज दल के सिंगार व्हीजियतु है।
विकट जु बाटन पै महानद घाटन पै,
भुरन कपाटन पै हूल दीजियतु है॥
'बख्तत' भनत भूमि पालन की रीति ये ही,
रौद्रता प्रचण्ड सो सदा ही रीझियतु है।
येक मतवारा हाय अंकुश न माने तो का,
द्विर्द दरवार दूजे दूर कीजियतु है॥

इनका जन्म स० १८७३ के लगभग जोधपुर राज्य के जाखण-ग्राम के एक सुप्रसिद्ध भाटी परिवार मे हुआ था। इनके पिता का नाम गोयददास था। सोलह वर्ष की उम्र मे इनका विवाह जोधपुर के

प्रताप कुँवरि बाई महाराजा मानसिंह के साथ हुआ। वैसे ईश्वर-भक्ति की ओर इनका झुकाव बाल्यावस्था ही से था, पर पति की मृत्यु (स० १९००) के बाद से इनका मन सासारिक कार्यों से बिलकुल उचट गया और अपना अधिक समय भगवद् भजन और पूजा-पाठ मे व्यतीत करने लगी। इनकी रहन-सहन सादी और प्रकृति सरल थी। राज्य की ओर से इन्हे कई गॉव मिले हुए थे जिनकी आय का अधिकाश ये दान-पुण्य तथा साधु-सेवा मे खर्च किया करती थी। कवियो, विद्वानो और चारण-भाटो को भी इन्होने प्रचुर धन-दान दिया। इनका देहान्त स० १९४९ मे हुआ था।

प्रतापकुँवरि बाई ने कुल मिलाकर चौदह ग्रथो का निर्माण किया जिनके नाम ये हैं—

(१) ज्ञान सागर (२) ज्ञान प्रकाश (३) प्रताप पच्चीसी (४) प्रेम सागर (५) रामचद्र नाम महिमा (६) राम गुण सागर (७) रघुवर स्नेह लीला (८) राम प्रेम सुख सागर (९) राम सुजस पच्चीसी (१०) रघुनाथजी के कवित्त (११) भजन पद हरजस (१२) प्रताप विनय (१३) श्री रामचद्र विनय (१४) हरिजस, गायन आदि।

इनकी भाषा पिंगल है जिसमे मँजे हुए और प्रति दिन उपयोग मे आने वाले उर्दू-फारसी के शब्द स्वतत्रता के साथ प्रयुक्त हुए हैं। कविता इनकी राम-भक्ति-पूर्ण और प्रसाद गुण से ओत-प्रोत है। उदाहरण—

अवधपुर घुमडि घटा रहि छाय ॥टेक॥
चलत सुमंद पवन पुरवाई नभ घनघोर मचाय ॥१॥
दादुर मोर पपीहा बोलत दामिनि दमकि दुराय ॥२॥
भूमि निकुंज सघन तरुवर में लता रही लिपटाय ॥३॥
सरजू उमगत लेत हिलोरैं निरखत सिय रघुराय ॥४॥
कहत प्रताप कुवरि हरि ऊपर वार वार वलि जाय ॥५॥

ये पदमजी चारण के पुत्र स० १८८३ में जोधपुर राज्य के चारवास गाँव में पैदा हुए थे। इनका जन्म-नाम गुलजी था। ऐसी प्रसिद्धि है कि 'वंशभास्कर' के रचयिता कविराजा सूरजमल का नाम सुनकर ये उनसे मिलने के लिए एक बार बूँदी गये। जिस समय ये उनके

गणेशपुरी

घर पहुँचे उस समय उनका एक नौकर द्वार पर बैठा हुआ था। उसने जाकर सूरजमल को सूचना दी कि एक चारण दरवाजे पर खड़ा है और आप से मिलना चाहता है। सूरजमल अपढ व्यक्तियों से प्राय. कम मिलते थे। उन्होंने नौकर से कहा—'जाकर पूछो कि वह पढा हुआ है या नहीं'। नौकर लपका हुआ बाहर आया और वही प्रश्न गुलजी से किया। सुनकर वे सुन्न रह गए, कुछ क्षण तक प्रस्तर-मूर्ति की तरह खडे रहे। फिर गर्दन हिलाकर बोले—'नहा'। इस 'नहीं' की ध्वनि अंदर बैठे हुए कविराजा के कानों में पड़ी। वहीं से चिल्लाकर उन्होंने कहा—'सूरजमल अपढ चारण का मुँह देखना नहीं चाहता। तुम यहाँ से चले जाओ'। ये शब्द गुलजी को घाव कर गय। उन्हें लज्जा भी आई। फौरन वहा से लौट पड़े। यह घटना उस समय की है जब इनकी उम्र २७ वर्ष की थी। यहीं से इनके जीवन का नया अध्याय शुरू हुआ। ये साधु हो गए और अपना नाम बदलकर गणेशपुरी रख लिया। फिर काशी पहुँचे और लगभग दस वर्ष तक वहाँ रहकर हिन्दी-सस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया।

काशी से लौटने के पश्चात् गणेशपुरी कुछ वर्षों तक राजस्थान में इधर-उधर घूमते रहे और अंत में मेवाड के गुण ग्राही महाराणा सज्जनसिंह के आग्रह से मेवाड को स्थायी रूप से अपना निवास स्थान बना लिया। गणेशपुरी एक सुयोग्य साहित्य-सेवी और काव्य-कुशल व्यक्ति थे। इनके सपर्क से महाराणा सज्जनसिंह भी अच्छी कविता करने लग गए थे। सस्कृत, ब्रजभाषा एव डिंगल का उच्चारण गणेशपुरी का बहुत शुद्ध तथा स्पष्ट होता था और

ये बूँदी के दरबारी कवि थे। इनका जन्म सं० १८८७ में अलवर राज्यान्तर्गत राजगढ़ में हुआ था। जाति के राव थे। जब ये ४१ वर्ष के थे तब अलवर से बूँदी चले गए और आजीवन वहीं रहे।

गुलाबजी

बूँदी के महाराव राजा रामसिंह ने इन्हें दो गाँव प्रदान किए थे और दुशाला हाथी तालीम इत्यादि देकर इनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई थी। ये बूँदी स्टेट कौंसिल तथा वाल्टर कृत राजपूत-हितकारिणी सभा के सदस्य थे और महकमा रजिस्टरी के भी हाकिम थे। इनका देहान्त सं० १९५८ में हुआ था।

गुलाबजी सिद्धहस्त कवि और काव्य-मर्मज्ञ थे। इनके संसर्ग से कई लोग अच्छी कविता करना सीख गए थे, जिनमें विड़दसिंह और चंद्रकला बाई के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनकी कविताएँ सामयिक पत्र पत्रिकाओं में छपा करती थीं जिससे राजस्थान के बाहर के लोग भी इन्हें जानते थे। कानपुर की 'रसिक-सभा' ने तो इन्हें 'साहित्य-भूषण' की उपाधि से विभूषित किया था।

इनका ब्रजभाषा और डिंगल दोनों भाषाओं पर समतुल्य अधिकार था। परन्तु अधिकतर ब्रजभाषा में लिखा करते थे। इनके रचे ग्रन्थों के नाम ये हैं--

(१) रुद्राष्टक (२) रामाष्टक (३) गंगाष्टक (४) बालाष्टक (५) पावस पचीसी (६) प्रेम पचीसी (७) रस पचीसी (८) समस्या पचीसी (९) गुलाब-कोष (१०) नाम चंद्रिका (११) नामसिंधु कोष (१२) व्यंग्यार्थ चंद्रिका (१३) बृहद् व्यंग्यार्थ चंद्रिका (१४) भूषण चंद्रिका (१५) ललित कौमुदी (१६) नीति-सिंधु (१७) नीति-मंजरी (१८) नीति-चंद्र (१९) काव्य-नियम (२०) बनिता-भूषण (२१) बृहद् बनिता-भूषण (२२) चिंता-तंत्र (२३) मूर्ख-शतक (२४) ध्यान रूप सवतिका-बद्ध कृष्ण चरित्र (२५) आदित्य हृदय (२६) कृष्णलीला (२७) रामलीला (२८) सुलोचना लीला (२९) विभीषण लीला (३०) दुर्गास्तुति (३१) लक्षण कौमुदी (३२) कृष्ण चरित्र (३३) शारदाष्टक और (३४) कृष्ण चरित्र सूची।

गुलाबजी की रचना भाषा और कविता दोनों ही दृष्टियों से प्रशंसनीय है। इनकी भाषा बहुत सरल, कोमल और विशुद्ध ब्रजभाषा है। कविता कर्णप्रिय, सुरुचिपूर्ण और प्रभावोत्पादक है। और कला उसमें अपने प्रकृत सौन्दर्य के साथ बिहार कर रही है। दो नमूने यहाँ दिए जाते हैं—

मृग में मगेरदार खंजन में दौर दार
चंचल चकोरन में चित्त चोर पाके हैं।
मीनन मलीनकार जलजन दीनकार
भवरन खीनकार अमित प्रभा के हैं॥
सुकवि गुलाब मैन चिक्कन विशाल लाल
श्याम के सनेह सने अति मद छाके हैं।
बरुनी विशेष धारे तिरछी चितौनी वारे
मैन बानहू तैं पैने नैन राधिका के हैं॥

छेहैं बक मडली उमडि नभ मडल में
जुगनू चमक ब्रजनारिन जरै हैं री।
दादुर मयूर झीने झींगर मचै हैं सोर,
दौरि दौरि दामिनी दिमान दुख दै हैं री॥
सुकवि गुलाब ह्वै हैं किरचैं करेजन की
चौंकि चौंकि चोपन सौ चातक चिचै है री।
हमन ले हम उडि जै हैं ऋतु पावस में
ऐ हैं घनश्याम घनश्याम जो न ऐ हैं री॥

ये बूंदी के सुप्रसिद्ध कवि सूरजमल के दत्तक पुत्र थे। इनका जन्म सं० १८९५ में और देहांत सं० १९६४ में हुआ था। अपने पिता सूरजमल की तरह ये भी षट्भाषा-प्रवीण और प्रतिभावान कवि थे।

मुरारिदान "वंशभास्कर" लिखते समय जब सूरजमल ने रावराजा रामसिंह के गुण दोषों का विवेचन करना प्रारम्भ किया तब रावराजा उनसे सहमत न हुए और विवश होकर उन्हें अपना ग्रंथ अधूरा छोडना पडा। इसे सूरजमल की मृत्यु के बाद मुरारिदान ने पूरा किया। इनके अतिरिक्त इन्होंने दो ग्रंथ और भी बनाए थे डिंगल-कोष और वंश समुच्चय। ये डिंगल और पिंगल दोनों में रचना करते थे। कविता इनकी गंभीर और सानुप्रास होती थी। उदाहरण—

मोहनम प्रबल निकन्दन प्रकाम रूप
बिघन बिदारन को अंतक स्वरूप जाउ।
पालन में तत्पर कृपालु बिनु कारन ही
आसुतोम बरद अनादि काल ही तैं दोउ॥
जा की कृपा वाक्य द्वारा मन को प्रकासैं भेद

सेवक मुरारि के हिये मे पग धारे सोइ ।
गुरु को गनाधिप को पितु रविमल्ल तु को
सिव को सिवा को वानी गनी को प्रनाम होइ ॥

ये चौहान राजपूत अलवर राज्य के किशनपुर गांव के जागीरदार थे। इनका जन्म सं० १८६७ में हुआ था। कविता करना इन्होंने वहीं के राव गुलाबजी से सीखा था। ये बहुत अच्छे कवि एवं गुणग्राही पुरुष थे। इनके यहाँ कवि कोविदों का जमघट लगा रहता था। ग्रन्थ तो इन्होंने कोई नहीं लिखा पर फुटकर कवित्त सवैये सैकड़ों की संख्या में रचे हैं। कविता में ये अपना नाम 'माधव' लिखा करते थे। इनकी कविता शृङ्गाररस प्रधान है और उसमें कला पक्ष का निर्वाह खूब हुआ है। उदाहरण —

बिडदसिंह

नहिं गाजत बाजत दुंदुभि है चपला न कढ़ी तरवारि अली।
धुरवा न तुरंग ये माधव चातक मोरन बोलन वीर बली॥
जलधार न जोर शिली मुख कौ घन है न मतंगन की अवली।
बरखा न विचारि भटू शिव पे सजि मान मनोज की फौज चली॥

चंद्रकला बाई उपरोक्त राव गुलाबजी के घर की दासी थीं। इनका जन्म सं० १९२३ में और देहावसान सं० १९६५ के लगभग हुआ था। यह विशेष पढ़ी लिखी नहीं थीं, पर कविता के मर्म को खूब समझती थीं। उनकी स्मरण-शक्ति बहुत तीव्र थी जिससे इन्होंने सैकड़ों कवित्त-सवैये मुखाग्र कर लिए थे। राव गुलाबजी की तो प्रायः सभी अच्छी-अच्छी कविताएँ इन्हें कंठस्थ थीं। इन्होंने गुलाबजी से कविता करना भी सीख लिया था। समस्या-पूर्ति का इन्हें विशेष शौक था। और इस कला में थीं भी बहुत निपुण। एक समस्या की पूर्ति कई तरह से, कई रसों में कर सकती थीं और काव्य-चमत्कार सभी में एक-सा पाया जाता था। हिंदी के 'रसिक मित्र,' 'काव्य सुधाकर' इत्यादि पत्रों में उनकी कविताएँ प्रायः छपा करती थीं। इनकी रचनाओं से मुग्ध होकर सीतापुर जिले के बिसवाँ ग्राम के कवि-मंडल ने इन्हें 'वसुन्धरा-रत्न' की उपाधि प्रदान की थी।

चन्द्रकला

इन्होंने करुणाशतक, पदवी प्रकाश, रामचरित्र, महोत्सव प्रकाश इत्यादि पाँच-सात ग्रंथ बनाए थे, परन्तु इनकी कीर्ति शृंगार रसात्मक फुटकर कवित्त-सवैयों के कारण विशेष है। इनकी भाषा सालंकार, सरस तथा व्यवस्थित है।

वस्तुतः हिंदी की कवयित्रियों में कला की दृष्टि से इतनी अधिक श्रेष्ठता किसी ने प्रदर्शित नहीं की जितनी इन्होंने की है। यह करुण रस के लिखने में भी सिद्धहस्त थीं। विषाद की एक हृदय-वेधक रेखा इनके करुणा-शतक में चित्रित देख पड़ती है। इनके दो सवैये यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

नख से सिख लौं सब साजि सिंगार छटा छवि की कहि जात नहीं।
सग लाय अली न लली ललचाय चली पिय पास महा उमही॥
रहि 'चद्रकला' सग आवत ही लखि दौरि तिया पिय बाह गही।
नहिं बोल सकी सरमाय लली हरषाय हिये मुसकाय चली॥

बाजत ताल मृदग उमग उमग भरी सखिया रँग बोरी।
साथ लिए पिचकी कर माहि फिरै चहुँघा भरि केसर घोरी॥
'चद्रकला' छिरकैं रँग अगन आपस माहि करै चित चोरी।
श्री वृषभानु महीपति-मदिर लाल-लली मिलि खेलत होरी॥

ये आशिया शाखा के चारण जोधपुर-नरेश महाराजा जसवन्तसिंह (द्वितीय) के आश्रित थे। इनका रचना-काल स० १६४० है। इनके पिता का नाम भारतीदान था। डिंगल भाषा के सुप्रसिद्ध कवि

मुरारिदान

बाकीदास इनके पितामह थे। इन्होंने 'जसवत जसोभूषण' बनाया जो हिंदी के अलकार-ग्रन्थों में सबसे बड़ा है। इस पर इन्हें 'कविराजा' की पदवी के साथ लाखपसाव मिला था।

'जसवन्त जसोभूषण' ८५२ पृष्ठों का एक भारी ग्रन्थ है। इसका लघु रूप 'जसवत भूषण' है जो ३५१ पृष्ठों में समाप्त हुआ है। ये दोनों ग्रथ मारवाड स्टेट प्रेस, जोधपुर की ओर से प्रकाशित हुए हैं। 'जसवन्त जसो भूषण' में मुरारिदान ने अलकारों के नामों को ही उनका लक्षण माना है और उदाहरण में अपने आश्रयदाता महाराजा जसवन्तसिंह का यशोगान किया है। इसमें सदेह नहीं कि इसके लिखने में इन्होंने हिन्दी-सस्कृत के बहुत से प्राचीन ग्रथों से सहायता ली है। परन्तु नाम में ही लक्षण की कल्पना करने से अनेक स्थानों पर खींचातानी का आश्रय लेना पड़ा है और ऐसे उद्योग में सर्वत्र सफलता भी नहीं हुई है। इन्होंने अतुल्य योगिता, अनवसर तथा अपूर्वरूप ये तीन नये अलकार बनाए हैं और प्रमाण को अलकार ही नहीं माना है।

ग्रन्थ की रचना-शैली और विषय-विवेचना कलापूर्ण एव हृदयग्राही है और इससे मुरारिदान के साहित्य विषयक ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है। उदाहरण—

गोकुल जनम लीन्हों, जल जमुना का पीन्हों,
सुबल सुमित्र कीन्हों, ऐसो जस-जाप है।
भनत 'मुरार' जाके जननी जसोदा जैसी,
उद्धव! निहार नद तैसो तिह बाप है॥
काम-वाम ते अनूप तज बृज-चद-मुखी,
रीझे वह कूबरी कुरूप मौ अमाप हैं।
पचतीर-भय को न वीर नेह-नय को न
बय को न, पूतना के पय को प्रताप है॥

सुर-धुनि-धार घनसार पारबती-पति,
या बिधि अपार उपमा को थौभियतु है।
भनत 'मुरार' ते विचार सौ विहीन कवि,
आपने गॅवारपन सौ न छौभियतु है॥
भूप-अवतस, जसवत! जस रावरो तो,
अमल अतत तीनो लोक लोभियतु है।
सरद पून्यौं-निसि जाए हस का है बधु,
छीर-सिंधु-मुकता समान सौभियतु है॥

ये जोधपुर राज्य के ढाढरवाडा ग्राम मे स० १६०६ मे पदा हुए थे और जाति के चारण थे। इनके पिता का नाम बख्शीराम और दादा का मेघराज था। ये तीन भाई थे नवलदान, ऊमरदान और शोभादान। बाल्यावस्था मे माता-पिता का देहान्त हो जाने से घर पर इनकी ठीक तरह से देख-रेख करनेवाला कोई नहीं रह गया था जिससे ये बहुत उदड हो गए और मौजीराम नामक एक रामसनेही साधु के बहकाने मे आकर रामसनेही पथ का अगीकार कर लिया। कोई १६ वर्ष की उम्र तक ये रामसनेहियो की मडली मे रहे। बाद मे उनका साथ छोडकर वापस गृहस्थ बन गए और रामसनेही पथ का छिद्रोद्घाटन करने लगे।

ऊमरदान

ऊमरदान बहुत सरल प्रकृति के पुरुष थे और वेश-भूषा से पूरे किसान दिखाई पडते थे। ये खूब प्रसन्न रहते और सबसे हँसकर मिलते-जुलते थे। यदि कोई इन्हे पूछता कि तुम्हारा मकान कहाँ है तो ये कहते—

दुकान है दुकान मा, मकान ना मकान मा।
उठाय लट्ट अट्ठ जाम, मैं फिरा घमा-घमा॥

ऊमरदान अच्छे कवि थे। इसलिए जोधपुर, उदयपुर आदि राज्यों के राज दरबारों में इनका अच्छा आदर होता था। इनका देहान्त सं० १९६० में हुआ था।

इनकी रचनाओं का सग्रह 'ऊमर-काव्य' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। इनमें 'भजन का महिमा' 'अमल रा आगण' 'दारू रा दोस' इत्यादि ४० से अधिक फुटकर प्रसग हैं। भाषा बोल चाल की राजस्थानी है। बाल्यावस्था में जब कि मनुष्य के सस्कार बनते और दृढ होते हैं ऊमरदान रामसनेहियों के साथ रहे। इसलिए क्या इनकी भाषा, क्या रचना-शैली और क्या विषय-सामग्री सभी पर रामसनेही पथ का रग है। रचना इनकी बुरी तो नहीं है, पर थोडी-सी फूहडता उसमें है। और यही कारण है कि शिक्षित समुदाय की अपेक्षा निम्न वर्ग के लोगों में उसका प्रचार अधिक है। उदाहरण—

पद

वणिया नहीं आछौ काम, वीर युंही बीती बेहडली॥
फन्दा में मोडा रे फॅसगो, रुळगो रेहडली।
भेक धारता कीदी भूंडी, कुबधा केहडली॥१॥
मात पिता की छोड़ी मोबत मोजाँ मेहडली।
सात जात मोडा सू माथी, नाहक नेहडली॥२॥
दूध दही खाया दूजा रा, दीपी देहडली।
मरिया सूॅ सूनी मिल जासी, खूनी खेहड़ली॥३॥
ग्यान बिना थे युंही गमाई, ऊमर ओहडली।
छल सूॅ बाजी हारयौ छी छी, छेला छेहडली[१]॥४॥

कुडलिया

भेख बिगाड़ै जगत नें, जगत बिगाडै भेख।
ओ लै बाबा अमलड़ा, दुनिया में सुख देख॥

---

१. बेहडली = आयु। मोडारे = रामस्नेही साधुओं के। भक = भेष, साधु होना। कुबधां = बदमाशिया। केहडला = बुरी। मेहडली = भोगो। देहडला = काया। खेहडला = धूल। ओहडली = व्यर्थ। छेहडली = अतिम

दुनिया में सुख देख नार आवला तोर्ग।।
सतगुरु का परसाद सुवामद घटन मीर्खा ॥
माफी सबद सुणाय चार रग देन चिगाड़ै।
बेरागी नें जगत नगत नें भेग बिगाड़ ¹॥

ये सिंढायच कुलोत्पन्न जाति के चारण थे। इनके जन्म मृत्यु संवत का ठीक-ठीक पता नहीं है। रचनाकाल सं० १६६५ है। ये डूंगरपुर के महारावळ उदयसिंह के आश्रित थे। उनके कहने से इन्होंने एक ग्रंथ बनाया जिसका नाम 'उदय प्रकाश' है—

किशनजी

किये तान बेग हुकम, उदयसिंह नृप एह।
कविता छन्द प्रबन्ध क्रम, किसना ग्रन्थ करेह ॥७॥
सुधा रूप यह वचन सुन, हित धरि हृदय हुलास
कर्‌यौ ग्रन्थ भाषा किसन, प्रगट सु उदय प्रकास ॥८॥

उदय-प्रकास ऐतिहासिक काव्य है जो चारण-भाटों की प्रथा-बद्ध रीति पर लिखा गया है। दोहा, कवित्त, पद्धरी, त्रोटक आदि सब मिलाकर ४५५ छन्दों में यह समाप्त हुआ है। इसमें महारावळ उदयसिंह का जीवन चरित वर्णित है। इसकी भाषा पिंगल है। ग्रन्थ इतिहास का है और इतिहास ही की दृष्टि से लिखा गया है, पर साहित्यिक छटा भी इसमें स्थान-स्थान पर अच्छी दिखाई देती है। उदाहरण—

चंपक कदंब अंब जंबु बो गुलाब वृन्द
केतकी रु केवरे चमेली पुष्प छाये हैं।
दाडिम अनार दाख संवती जसूल केते
मोगरे नरगी नींबू ग्राम के निभावे हैं।
संकुलित नाना वृक्ष कोकिल मयूर पुंज
डम्मर सुगंधी ते भार छके नाव हैं।
अष्टोत्तर तीरथ को प्रगट प्रभाव लिये
अरबुद की शोभा कैलाश सी दिखावे हैं॥

मेवाड के महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) के चार पुत्र थे—जगतसिंह, नाथसिंह, बाघसिंह और अर्जुनसिंह। ज्येष्ठ पुत्र होने से संग्रामसिंह के बाद

¹. भख=भेष, साधु होना। अ[illegible]टी=अ[illegible] । नार=नशा।

चतुरसिंह

जगतसिंह मेवाड की गद्दी पर बैठे और शेष तीन भाइयो को क्रमशः बागार, करजाली तथा शिवरती की जागीर और 'महाराज' की उपाधि मिली। महाराज चतुरसिंह करजाली के स्वामी महाराज बाघसिंह के वशज थे और उनसे छठवी पीढी मे हुए थ। इनका जन्म स० १९३३ म हुआ था। इनके पिता का नाम सूरतसिंह और दादा का अनूपसिंह था। अपने पिता के चार पुत्रो मे ये सब से छोटे थे।

इनका विवाह अठारह वर्ष की आयु मे हुआ था जिसस इनके दो कन्याएँ हुई। परन्तु दस वर्ष बाद इनकी धर्मपत्नी का देहान्त हो गया। इससे इन्हे विरक्ति हो गई और दूसरा विवाह करने का विचार छोड अपना अधिक समय योगाभ्यास, ईश-भजन, शास्त्राध्ययन इत्यादि मे व्यतीत करने लगे। घर म रहने से स्वाध्याय के कार्य मे विक्षेप होता था इसलिए इन्होने घर भी छोड दिया और उदयपुर शहर के बाहर सुकेर नामक गाव के पास एक टेकरी पर कुटिया बनाकर रहने लगे।

इस कुटिया मे महाराज साहब कई वर्षों तक रहे। प्रकृति के दीर्घ-कालीन मनन ने इनके जीवन को भी प्रकृतिमय बना रखा था। ये बहुत सरल हृदय एव साधु प्रकृति के पुरुष थे। इनके अग-प्रत्यग से, इनकी वेष-भूषा से, इनके वार्तालाप और व्यवहार से जहा देखो वहा से सादगी प्रस्फुटित होती थी। बातचीत करते समय ये ऐसी सरल और मधुर भाषा का प्रयोग करते थे कि देखते ही बनता था। कैसा भी कठिन विषय क्यो न होता महाराज साहब की प्रतिभा-खराद पर चढकर नवीन रूप धारण कर लेता था और उसकी दुरूहता हवा हो जाती थी।

स० १९८६ मे महाराज साहब को मालिश की तकलीफ हुई और करीब दस दिन की बीमारी के बाद इनके जीवन का अन्तिम अभिनय हो गया।

महाराज चतुरसिंह बहुभाषा-ज्ञानी और सहृदय कवि थे। इनकी कविताओ का मेवाड़ के घर-घर मे प्रचार है। मीरा के बाद मेवाड मे यही इतने लोक-प्रिय कवि हुए हैं। इनके रचे ग्रथो के नाम ये हैं—

(१) भगवद् गीता की गगाजली टीका (२) परमार्थ विचार (३) योग सूत्र की टीका (४) साख्य तत्व समाज की टीका (५) साख्य कारिका की टीका (६) मानवमित्र रामचरित्र (७) शेष चरित्र (८) अलख पचीसी (९) तुही अष्टक (१०) अनुभव प्रकाश (२१) चतुर चिंतामणि (१२) महिम्नस्तोत्र

(१३) चन्द्रशेखराष्टक (१४) हनुमान पञ्चक (१५) समान बत्तीसी और (१६) चतुरप्रकाश।

महाराज साहब ने राजस्थानी और व्रजभाषा दोनों में कविता की है। उनकी भाषा बहुत सरल, मधुर और भावोपयोगी है। उन्होंने जो कुछ लिखा है वह दूसरों से लेकर नहीं, बल्कि अपने अनुभव के आधार पर लिखा है। इसलिए उनके काव्य में सचाई और स्वाभाविकता है। एक बहुत बड़ी विशेषता जो महाराज साहब की कविता में हम देख पड़ती है वह यह है। अत्यन्त भावमयी एवं मौलिकतापूर्ण होने के साथ-ही-साथ वह सदुपदेशों से ओतप्रोत है और मनुष्यों को उच्चादर्शों के दर्शन कराती है। ऐसे सत्य, शिव और सुन्दर साहित्य के रचयिता बहुत कम पैदा होते हैं। कविता का नमूना देखिए—

पद

रे मन छन ही में उठ जाणो
ई रा नी है ठोड ठिकाणो, अरे मन छन ही में उठ जाणो॥
साथे कई न लायो पेली, नी साथे अब आणो।
नी नी आय मलेगा आगे, जो जी करम कमाणो॥१॥
सा सो जतन करे ई तन रा, आखर नी आपाणो।
करणो वे सो भट पट कर लें, पछे पड़ पछताणो॥२॥
दो दन रा जीवा रे खातर, क्यू अनरा ऐंटाणो।
हाथा में तो कई न आयो, वाता में बेकाणो॥३॥
करणी सीस पे गाम बसावै, करणी नीम कमठाणो।
ई तो पवन पुरुष रा मेळा, "चातुर" भेद पछाणो॥४॥

दोहे

रहँट फरे चरख्यो फरै, पण फरवा में फेर।
हेक वाड़ ह्यौ करै, हिक छता रा ढेर॥
वाल्हा विचै विरोध जो, करै फकह्यॉ चाड।
वा सूं तो भाठा भला, रूप नै मेटे राड॥
भावै जी भुगताय, दूजा दुख दीजै सभी।
खोळा सूं खिसकाय, मत दीजै मातेसरी॥
कारड तो कहतो फरै, हर कीनै हकनाक।
जा री है व्हीनै कहै, हियै लिफाफौ राख॥

(रहँट फिरता है और कोल्हू भी । लेकिन दोनों के फिरने मे अन्तर है ; एक (रहँट) तो गन्ने के खेत को हरा भरा करता है और एक (कोल्हू) छोई का ढेर लगाता है) ॥१॥ उन लोगों से, जो दो प्रेमियों को उकसाकर आपस में मनोमालिन्य पैदा कर देते हैं तो वे पत्थर अच्छे हैं जो दो सीमाओं के बीच में गड़कर झगड़े का निपटारा कर देते हैं ॥२॥ हे मातेश्वरी ! तेरी इच्छा हो वे दुख तू मुझे देना । पर तेरी गोद से मुझे मत खिसकाना ॥३॥ कोई व्यर्थ ही अपनी बात हर किसी से कहता फिरता है । पर लिफाफा बात को अपने हृदय में रखता है और जो बात जिसे कहने की होती है उसी से कहता है ॥४॥

बालाबख्श

बारहठ बालाबख्श जयपुर राज्य के हणूतिया ग्राम के निवासी थे। इनका जन्म सं० १९१२ में हुआ था। ये पालावत शाखा के चारण थे। इनके पिता का नाम निरमलदास और दादा का हुकमराज था। बारहठजी बहुत मिलनसार एवं गंभीर प्रकृति के पुरुष थे और सभा चतुर भी पूरे थे। इतिहास का इन्हें विशेष शौक था। इन्होंने नागरी प्रचारिणी सभा, काशी को ७०००) का दान दिया था जिसके सूद से "बालाबख्श-राजपूत-चारण-पुस्तक माला" में राजपूत-चारणों के रचे हुए इतिहास व कविता विषयक ग्रन्थों का प्रकाशन होता है। इनकी मृत्यु सं० १९८८ में हुई थी।

बारहठजी को डिंगल और पिंगल दोनों में कविता करने का अभ्यास था। इनके रचे ग्रंथों के नाम निम्न हैं। एक दो को छोड़कर ये सभी अप्रकाशित हैं—

(१) अश्व विधान सूचना (२) भूपाल-सुजस-वर्णन (३) आसीस-विगतावली (४) आसीस-अष्टक (५) आसीस-पचीसी (६) षट् शास्त्र-साराश (७) खंडेला पाना खुर्द की वंशावली (८) शास्त्र विधान सूचना (९) शास्त्र-प्रकाश (१०) शास्त्र-सार (११) सन्ध्योपासना उत्थानिका (१२) क्षत्रिय-शिक्षा-पचाशिका, (१३) छंद देवियों के (१४) छंद राजाओं के (१५) राव राजा माधवसिंह सीकरवालों का स्मारक काव्य (१६) मान महोत्सव महिमा (१७) मरसिया ठाकुर जोरावरसिंह का (१८) शीक शतक (१९) कछावों की खाँपें और ठिकाने।

बालाबख्श ने बड़ी सरस और भावपूर्ण रचना की है। इनकी रचना को

देखने से ज्ञात होता है कि भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार था। उक्ति-चमत्कार भी उसमें खासा दिखाई देता है। इनका एक कमाल यहाँ दिया जाता है—

आछो बोल्यो कूकड़ो, सिगरे फजर री बार।
चेत अचेती मानख्यां, जोग सुमर करतार॥
काय सुमर करतार, बिहूणा रजनी।
पल-पल बीती जाय, बखन्नी ज्यूँ घड़ी॥
कालि चले कै आज, पयाणो ढूकड़ौ।
'केहरि' हरि चीतारि कहै इम कूकड़ौ

इनका जन्म सं० १९२७ में मेवाड़ राज्य के [illegible] नामक गाँव में हुआ। ये सोदा बारहठ कुलोत्पन्न जाति के चारण हैं। इनके पिता का नाम खेमराज था। आदि में इनके पूर्वज गुजरात के रहनेवाले थे। कोई ६०० वर्ष हुए तब वे वहाँ से मेवाड़ में आकर बस गए थे।

केसरीसिंह

केसरीसिंह बहुश्रुत विद्वान, इतिहास प्रेमी एवं आशुकवि हैं। राजस्थान के चारणों में इनकी जोड़ का दूसरा कवि इस समय नहीं है। इन्होंने प्रताप-चरित्र, राजसिंह-चरित्र, दुर्गादास-चरित्र, [illegible]सिंह-चरित्र और रूठी रानी नामक पाँच ग्रंथों की रचना की है। इनमें प्रताप चरित्र को छोड़कर शेष सभी ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित हैं।

बारहठजी पिंगल भाषा के कवि हैं और वीर रस की कविता करने में निपुण हैं। छंदों में घनाक्षरी इनको बहुत प्रिय है। इनकी भाषा भावों के साथ चलती है और अभिव्यंजना-शैली भी अनूठी होती है। भाव की सच्चाई, कल्पना की मौलिकता और पुरुषोचित शक्ति इनकी कविता के प्रधान गुण हैं। ये करुण रस की कविता भी अच्छी लिखते हैं। उदाहरण—

बोली वीर भगिनी मैं तो पै बलिहारी वीर
जग्गावत शूर और जरी मस जी की है।
जननी हमारी जन्म भूमि हेत जावत तू
कीरति अपार कहो केती या घरी की है॥
कै तो जीत ऐहू, कै पयान कर देहू प्रान
सुनत अथाह चतुरंगिनी अरी की है।
मो कौं मरमावै मत, मासरे समाज बीच
तेरे भुज भाई आज लाज चूँदरी की है॥

मै तो अधीन सब भाँति सों तुम्हारे सदा
ता पै कहा फेर जय मत्त है नगारो दे।
कर्नो तू चाहै कछु और नुकसान कर
धर्मराज मेरे घर रतो मत धारो दे॥
दीन होइ बोलत हूँ पीछो जियदान देहु
करुना निधान नाथ अब के तो टारो दे।
बार बार कहत प्रताप मेरे चेटक का
ऐ रे करतार! एक बार तो उधारो दे॥

सीतामऊ के वर्तमान वयोवृद्ध नरेश राजा रामसिंह जी का जन्म सं०-१६३६ में हुआ। इनके पिता का नाम दलेलसिंह था जो बड़े धार्मिक और सत्यप्रिय क्षत्रिय थे। राजा साहब बड़े विद्या-प्रेमी एव सात्विक वृत्तियों के पुरुष हैं। इन्होंने तत्वज्ञान, प्राकृतिक विज्ञान, वेदात, न्याय, ज्योतिष तथा काव्य-शास्त्र पर बहुत परिश्रम किया है और इनमें इनकी अच्छी गति है। सस्कृत भाषा का इन्हें भारी ज्ञान है। इसके सिवा काव्य-रचना में भी ये परम प्रवीण हैं। इनकी कविताओं का एक सग्रह, 'मोहन-विनोद' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। इस में लगभग चार सौ छद हैं। इनकी भाषा ब्रजभाषा है। कविता कलापूर्ण और मार्मिक है। वर्णन-सौन्दर्य भी उसमें खासा दिखाई देता है। उदाहरण—

रामसिंह

ना उत बौरत अब कहा, कहा मजुल गान विहग न गावत?
मोहन सीतल मद सुगधित, पौन कहा न तहाँ सरसावत?
का मदमाते मिलिंद उते बन-बागन मे रव नाहिं सुनावत?
आयो न कत-सदेस अजौं सखि का उहि देस बसत न छावत?

प० गिरधर शर्म्मा का जन्म स० १६३८ में झालवाड में हुआ। ये जाति के प्रश्नोरा नागर हैं। गोत्र भारद्वाज है। संस्कृत-हिंदी के उत्कृष्ट विद्वान, उत्तम वक्ता और साहित्यकार हैं। प्राकृत, बगला, गुजराती मराठी आदि भाषाओं का भी इन्हें अच्छा ज्ञान है। इनकी योग्यता और प्रतिभा पर मुग्ध होकर इनको काशी के विद्वत्समाज ने "नवरत्न" की, भारतधर्म महामडल ने 'महोपदेशक' की, चतु. सम्प्रदाय श्री वैष्णव-महासभा ने 'व्याख्यान भास्कर' की उपाधियाँ प्रदान की हैं।

गिरधर शर्म्मा

इन्होंने तीस ग्रथ लिखे हैं जिन मे १४ सस्कृत के, १२ हिंदी के और ३ गुजराती के हैं। इनके हिंदी-ग्रथों के नाम ये हैं:—

(१) जया जयन्त (२) राई का पवत (३) प्रेम कुज (४) युग पलटा (५) महा सुदर्शन (६) हिंदी माव उपा (७) चित्रागद (८) भाष्मप्रतिज्ञा (९) बाग-वान (१०) गीताजलि (११) फल सचय और (१२) गुरु-महिमा।

पडितजी हिंदी के बहुत पुराने हिमायती और अधिकारी लेखक हैं। ये गद्य और पद्य दोनों लिखते हैं और बहुत उत्तम लिखते हैं। रस, अलकार, छद आदि काव्यांगों का इन्हें पुख्ता ज्ञान है। इसलिए इनकी कविता साहित्यिक दृष्टि से निर्दोष होती है। इनकी भाषा ललित और कविता प्राणवान् होती है। उदाहरण—

गिरता नभस्थल की उच्चता से स्वाति बिन्दु
चुपचाप चातक की प्यास को शमाता है।
दुगम, गहन गिरि कन्दरा का सोता स्वच्छ
हारे थके पथिकों के श्रम को मिटाता है॥
हेय है न किसी भाँति छोटापन नवरत्न
लोक में निजार्पण के भाव को जगाता है।
विश्व को समर्पता स्वजीवन, सुरभि देता
स्वल्प सा सुमन महादर्श छोड़ जाता है॥

छन्द की सुछन्दता का कुछ भी न ज्ञान स्वच्छ
मात्रा, वर्ण, गण, लय का न तत्व भाता है।
अनुभूति होती क्या है नाम का भी पता नहीं
छाया के ग्रहण का भी बोध न लखाता है॥
'नवरत्न' रमणीय अर्थ की क्या बात कहें?
काव्य रीति का न जहाँ कक्का तक आता है।
देख के कवित्त चित्त आज के कवीश्वरों का
कला छोनी पीटती है भाव रोता जाता है।

ठाकुर नाथूदान महियारिया गोत्र के चारण केसरीसिंह के पुत्र हैं। इनका जन्म स० १९४८ में हुआ। ये डिंगल भाषा के सुज्ञाता एव उत्कृष्ट कवि हैं। इन्होंने डिंगल भाषा की अनेक फुटकर कविताएँ तथा 'वीर सतसई' नामक एक ग्रथ लिखा है जो अप्रकाशित है। इनकी रचना प्राचीन चारण काव्य-

नाथूदान

परपरा से प्रभावित है। ये बहुत सीधी-सादी एव कर्णमधुर भाषा लिखते हैं और वीर रस की कविता करने मे सिद्धहस्त है। भाव की कोमलता, वर्णन की चित्रोपमता और अनुभूति की सच्चाई इनकी कविता के प्रधान गुण हैं। इनकी देशभक्ति विषयक कविता भी बहुत सुन्दर बन पड़ी है। इनके कुछ दोहे यहाँ दिये जाते हैं :—

> जा करणी उण री हुमी आमी विण नूतीह[1]।
> या नहँ किण रा बाप री भगती रजपूतीह ॥
> पिव केसरियाँ पटकिया हूँ केसरियाँ चीर।
> नाहक लाया चूँदड़ी बळती वेळाँ वीर ॥
> बाप मुओ जिण ठौड हूँ बेटा नहँ हटियाह।
> पेच कसूमल पाग रा सिर माथे कटियाह ॥
> ओषद जाणै मोकळा पीड न जाणै लोग।
> पिउ केसरियाँ नहँ किया हूँ पीळी उण रोग ॥
> सुत मरियो हित देसरे हरख्यौ बधु समाज।
> माँ नहँ हरखी जनमदे जतरी हरखी आज ॥
> हिरण हुवै बे सींग रा साह हुवे बेसींग।
> मदझर टाळाँ माचणो हाथळ वाळौ धींग ॥

अमृतलाल

श्री अमृतलाल माथुर का जन्म जोधपुर राज्य के कुचेरा ग्राम मे स० १६५५ मे हुआ। इनके पिता का नाम गोपाललाल था जो भक्त और कवि थे। ये ब्रजभाषा, राजस्थानी और खड़ी बोली तीनो मे कविता करते हैं। ब्रजभाषा मे कविता करनेवाले राजस्थान के आधुनिक कवियो में इनका स्थान सर्वोच्च है। समूचे हिंदी-क्षेत्र मे भी इनकी टक्कर के एक-दो से अधिक नहीं हैं। इनके रचे ग्रथो के नाम ये हैं—

१बिणनूतीह=बिना बुलाए। पिव [illegible] किया=पति ने केसरिया बागा पहन लिया है। बलती वेला=जलने समय, सती होने के वक्त। कसूमल=लाल। पाग=पग। सींग रा=दो सींग वाला। बेसींग=बिना सींग का। मदझर=हाथी। टोला=झुंड। हाथल=पंजा। धींग=जबरदस्त।

(१) राघव यश (२) अमृत-सतसई (३) गीत रामायण (४) यमक रामायण (५) श्री रामाम्ब (६) गगालहरी (७) राम प्रेमामृत (८) श्री राम सुधारस (९) श्री शकर शतक और (१०) श्री प्रेम रामायण।

माथुरजी की रचना का मुख्य विषय रामभक्ति है और उसमें भाषा और भाव का सौन्दर्य्य है। इनके शब्द-चयन में शक्ति और शैली में सचाई निहित है। इनको यमक अलकार बहुत प्रिय है जिसकी बड़ी सुन्दर छटा इनकी कविता में स्थान-स्थान पर देख पड़ती है। छन्दों में 'दोहा' का प्रयोग इन्होंने विशेष किया है। इनकी कविता में इनके भक्त-हृदय की विह्वल भावनाओं की बहुत ही सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। काव्य-चमत्कार से भी अधिक महत्वपूर्ण उसमें की वह अटल श्रद्धा है जिससे उसकी प्रत्येक पक्ति ओत-प्रोत है। उदाहरण—

प्रेम-वर्णन

राम सनेही भजन की, यह गति जानि परै न।
उर में भरे अनन्द रस, नैन झरें दिन रैन॥
प्रति दिन में प्रति पहर में, प्रति पल राम हि चाहि।
लगी रहे मेरी लगन, रगी प्रेम-रग माहि॥
राम-विरह-रस दृग बहैं, हे नर! अँसुआ है न।
निरखि नेह-करि नैन भरि, नेह-त्रिवेनी नैन॥
मुकता-मनि अँसुआ अमल, कत ढरकत दिन रैन।
हरि-उर-पहरावन अहो! हार बनावत नैन॥
हरि-सनेह-हित सब तजे, अजन रजन चैन।
अँसुआ-कन मुकतान को, दान करत नित नैन॥
भजन सुभूधर विरह अहि, मिलन-अमरता लैन।
मन-पयोधि मथि राम-रस, सुधा निकारत नैन।

(बाल-चरित)

हर विरचि हु पावत पार ना।
जननि ताहि झुलावत पारना॥

सुख किए तुम हो पलनान में।
लखत नैनन पै पल ना नमे॥

छबि कही कछु वैनन जात ना ।
हरत हेरत ही मन-जातना ॥
जिन लिए हित सो गहि वारना ।
तुम उधारत की तिहि वार ना ॥

सिसु चरित्र किए भुवि सार है ।
सुन भुसडि हु सम्भु विसार है ॥
छबि छके पुर के नर ती रहैं ।
धन लही भव सागर-तीर है ॥

रमत औध-तरगनि-तीर हौ ।
धरत चाप निखगनि तीर हौ ॥
गवर सॉवर दो वर जोर हैं ।
मन लगै हठि ना वरजो रहै ॥

मोहनसिह

ये राजस्थान के सुप्रसिद्ध कवि राव बख्तावरजी के प्रपौत्र हैं। इनका जन्म स० १९५६ मे मेवाड़ राज्य के बसी नामक गॉव मे हुआ। सुकवि एव अध्ययनशील विद्वान हैं और डिंगल-पिंगल दोना में कविता करते हैं। इसके अलावा पद्यानुवाद करने मे भी ये परम प्रवीण हैं। इन्होंने बिहारीलाल के कतिपय दोहों और सूरदास-रसखान के पद-सवैयों का डिगल भाषा मे बडा सुन्दर अनुवाद किया है। इनके रचे ग्रन्थों के नाम ये हैं—

(१) प्रताप-यश-चद्रोदय (२) भूपाल भूषण (३) कुभा कीर्ति प्रकाश (४) कूर्म-यश-कलानिधि (५) व्यग्यार्थ प्रकाश (६) कुडलिया-शतक (७) नीति शतक (८) मोहन सतसई (९) मृगया-बावनी (१०) महाराणा चरितामृत (११) राग बहार (१२) रघुवश चरित (१३) मान पचीसी (१४) वणिक बहत्तरी (१५) प्रपच-पचीसी (१६), जैमल पचीसी और (१७) रामदास पचीसी।

मोहनसिहजी बहुत प्रौढ और मर्यादित भाषा लिखते हैं जो रस और विषय के अनुकूल रहकर चलती है। शब्द-भाडार पर भी इनका अच्छा अधिकार है। इनकी कविता सरस, प्रभावोत्पादक और सालकार होती है। उदाहरण—

टोपन कौ फारि दीनै कवचन तौरि दीनै,
इवद विथोरि दीनैं धधकि धकायो है।

म्लेछन कौं मारि दीनै हाथिन पछारि दीनै,
तुरग उथारि दीने फुङ्कि विफरायो है ॥
गिरिन हलाय दीनै दिग्गज हुलाय दीनैं,
अचल चलाय दिग्व पौरुष दिग्वायो है।
वीर जयमल रन ठेलि कै दुरग काज,
ऐसो खग-खेल खेल सुरग सिधायो है ॥

पतराम गौड

गौडजी का जन्म स० १६७० मे पिलाणी मे हुआ। ये हिन्दी-सस्कृत दोनों के एम० ए० हैं। इन्होंने अग्रेजी मे भी एम० ए० की प्रीविअस परीक्षा पास की है। इस समय ये विडला कॉलेज, पिलाणी मे हिंदी के प्रोफेसर हैं।

हिन्दी राजस्थानी के सुयोग्य लेखक और कवि होने के साथ-साथ गौडजी गुजराती, बगला आदि अन्य भाषाओं के भी अच्छे जानकार हैं। इन्होंने रेगिस्तान, मानव और प्रकृति, समर्थ गुरु रामदास (नाटक), और राजस्थानी मुहावरे नामक चार ग्रन्थों का प्रणयन किया है। ये इनकी स्वतत्र रचनाएँ हैं। इनके अतिरिक्त 'चौबोली' और 'हरजस बावनी' का सपादन इन्होंने अपने मित्र श्री कन्हैयालाल सहल के साथ किया है।

गौडजी बहुत सरल प्रकृति के व्यक्ति हैं जिसकी छाप इनकी रचनाओं पर भी स्पष्टतया परिलक्षित होती है। इनकी अनुभूति सच्ची है और भावनाएँ स्थिर। 'रेगिस्तान' इनका एक बहुत छोटा-सा खड-काव्य है। परतु इसकी वर्णन-शैली में मार्मिकता और मौलिकता है। राजस्थान के प्रत्येक रज-कण, ककड़-पत्थर और टीले को इन्होंने आत्मीयता के भाव से देखा है। इसलिए सारी की सारी रचना सप्राण हो उठी है और चारण-भाटों की रूढिगत कविताओं से ऊबी हुई जनता को इसमे बडी राहत मिलती है। देश को इस समय ऐसे ही साहित्यिकों की जरूरत है। गौड़जी से राजस्थान को बहुत आशा है। इनकी राजस्थानी कविता का एक नमूना यहाँ दिया जाता है—

प्रेम-सनेसडलो

सत रहसी जासी धरा, भगत बछळ.गोपाळ।
सत धारा सत फूटसी, जीवण आँसू-माळ ॥

मीरॉबाई रो देसडलो
थानै भेजै प्रेम-सनेसडलो ।
धरती री रगत-पिपासा मैं
जीवण रो आज अनेसडलो ॥

रोही रोही भटकतो, खेतो मोटा वार ।
चित्तौडै मे आज नहीं छै लीलै रो असवार ॥

सीसोद्या रो देसडलो
थानै भेजे प्रेम-सनेसडलो
धरती री रगत-पिपासा मैं,
जीवण रो आज अनेसडलो ॥

वारू मेरा देसड़ा वारू कोटि हजार ।
पीसो कर रो मैल छै भामो कहे पुकार ॥

धनपतिया रो देसडलो
थानै भेजै प्रेम-सनेसडलो ।
धरती री रगत-पिपासा मैं
जीवन रो आज अनेसडलो ॥

सत राख्या, पत राखियो, श्रम-क्रम राखी रेख ।
मरण वडाई राखियो, रजपूती री टेक ॥

हाडी राणी रो देसडलो
थानै भेजै प्रेम-सनेसडलो ।
धरती री रगत-पिपासा मैं
जीवण रो आज अनेसडलो ।

रै हिरदा, रै आतमा, भूल्यो रह्यो गिवार ।
भेद भाव नै भूल कर, जाणज माणस-सार ॥

दादूजी रो देसडलो
थानै भेजै प्रेम-सनेसडलो ।
धरती री रगत-पिपासा मे
जीवण रो आज अनेसड़लो ॥

बळदा पूछ मरोड़ता नीम्या टिचकारयाह
ना भल चिणगारया भटे चारणा र बयणाह ॥

सूरजमल रे देसडला
थानै मेजै दु.ख मनेमडलो ।
धरती री रगत-पिपासा में
जीवण रो आज अनेमडलो ॥

ग्वाडै रामै वाछडा गोभारा खेदै गाय ।
भुरज्याळो राठौड नहीं, इन वाप्र कवण उपाय ॥

मा देवळ रा देसडला
थानै भेजै करुणा- मनेमडलो ।
धरती री रगत-पिपासा म
जीवण रो आज अनेमडलो[1] ॥

श्री सुधीन्द्र, एम० ए० का जन्म स० १६७२ में कोटा राज्यान्तर्गत खेराबाद में हुआ। ये हिन्दी गद्य और पद्य दोनो लिखते हैं और अच्छे गीतकार भी हैं। इन्होंने कोई बीस ग्रन्थ रचे हैं जिनमें से

सुधीन्द्र नीचे लिखे पाच ग्रथ प्रकाशित भी हो चुके हैं—

(१) शखनाद (२) मेरे गीत (३) प्रलय वीणा (४) जौहर और (५) अमृतलेखा।

ये यथार्थवादी कवि हैं। इन्होंने कल्पना और यथार्थ का, सत्य और सौन्दर्य का, जड और चेतन का, कलात्मक समन्वय किया है। इनकी कविता-शैली प्रसाद, पत, महादेवी और निराला की कविता शैली से प्रभावित है। भाषा तेजोमयी है। और भाव स्वतत्रता का सन्देश देते हैं। इनकी एक कविता यहाँ उद्धृत की जाती है। यह 'जौहर' से ली गई है—

स्वतन्त्रता सम्पदा अतुल है, यह जीवन है अल्प अहो!
प्राणों की आहुति देने मे क्या सकल्प विकल्प कहो?

१. सत=सत्य, माँ। आस-माल=अश्रुमाला। रगत=रक्त। अनेमडलो=अडैगा। खेनो=सहन किये। लीलै=श्वेत घोडेका। पीसो=पैसा। भामो=भामाशाह। मल=जीभ। ग्वाडै=गुवाड में। गोभारा=गो-हत्यार। खेदै=खदेडते है। भुरज्यालो=दुर्गपति।

स्वतन्त्रता शाश्वत वैभव है, यह जीवन, यह जगत अचिर !
जीवन-बलि देने मे फिर क्यों नश्वर मन भय से अस्थिर ?
काया को खोकर करते हैं हम अपने यश का सर्जन !
प्राणों को खोकर करते हैं हम अपना गौरव-अर्जन !
एक बार ही आता है यह जीवन मे मगल अवसर,
अमर मुक्ति का वरण करे हम भेंट करें जीवन नश्वर !

हिन्दी की सुप्रसिद्ध गद्यकाव्य-लेखिका श्रीमती दिनेशनदिनी चोरडिया, एम० ए० का जन्म स० १९७३ मे उदयपुर के एक वैश्य परिवार में हुआ। इनके पिता श्री श्यामसुन्दरलाल नागपुर विश्वविद्यालय मे अग्रेजी के प्रोफेसर हैं। इनका विवाह हाल में भारत के सुप्रख्यात सेठ श्री रामकृष्ण डालमिया के साथ हुआ है।

दिनेशनंदिनी

श्रीमती दिनेशनदिनी हिन्दी के श्रेष्ठ कवियो मे से एक हैं । इनके गद्य काव्यो के पाँच-सात सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं :—शबनम, मौक्तिकमाल, बशी-रव, दुपहरिया के फूल, शारदीय सारङ्ग, स्पन्दन आदि। इनमें से 'शबनम' पर इनको हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग, की ओर से 'सकसेरिया पुरस्कार' भी मिला है।

इन्होंने प्रेम का मार्मिक विश्लेषण किया है जो सार्वभौम है। इनके गद्य काव्यों मे एक विशेष तल्लीनता, स्त्रियोचित कोमलता और गहन अनुभूति पाई जाती है जो इन्हे हिन्दी के अन्यान्य गद्य-काव्य रचयिताओं से बहुत ऊँचा उठा देती है। इनकी भाषा सुघड़ और शैली प्राजल होती है। इनका एक गद्य काव्य यहाँ उद्धृत किया जाता है—

ऐ मेरे चित्रित शयन-मन्दिर की खिड़की को स्पर्श करनेवाले स्वप्निल श्यामल वृक्ष ! तेरे मेरे बीच कोई राज का पर्दा नहीं है !

कोयल के मंजुल सगीत को सुनकर मैंने तेरे अग-अग में कामाग्नि प्रज्वलित होते देखी है,

मेरी-तेरी दिव्य आत्मा के देवता पवन को तेरे कोमल हृदय को स्पर्श करते, और तेरे चिरपिपासित ओष्ठाधरो पर अपने अतृप्त अधरों को रखकर तुझ में राग का ज्वार लाते देखा है !

तैने भी मुझे प्रेम-पैंग में झूलती देखा है, सयोग और वियोग मे हँसते और कलपते देखा है, और प्रीतम-प्यारे के साथ दान-लीला और मान-लीला करते देखा है।

ऐ शीतल, स्वप्निल श्यामल वृक्ष ! तेरे मेरे बीच कोई राज का पर्दा नहीं है !

राजस्थानी भाषा के उदीयमान कवि चन्द्रसिंह बी० ए० बिरकाली (बीकानेर) के प्रसिद्ध ऐतिहासिक शृंगात बीका के घराने के हैं। ये ठाकुर खूमसिंह के पुत्र और ठाकुर हरिसिंह के दत्तक पुत्र हैं। ये हिन्दी-राजस्थानी के कवि और गद्य-लेखक हैं। इन्होंने बादळी, कह-मुकरणी, लू, साँझ, बालसाद आदि पुस्तकें लिखी हैं। इनमें बादळी सर्वश्रेष्ठ है। यह राजस्थानी में है। इस पुस्तक पर इन्हें नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की ओर से 'रत्नाकर-पुरस्कार' तथा 'बलदेव दास रजत पदक' भी मिले हैं। यह संस्कृत-कवि कालिदास कृत मेघदूत के ढंग का एक छोटा सा खंड काव्य है। इसकी भाषा सीधी-सादी और मधुर है। भावों में स्वाभाविकता और संयम है। वर्णन में गति है। उदाहरण—

चन्द्रसिंह

भूरी काळी बादळी, बीजळ रेख खिचाय।
जाणु कसोटा ऊपराँ, सुवरण रेख सुहाय॥
सूरज-साजन आवसी, बैठी पेई खोल।
बदल बदल घन बादल्या, पर वस अमाल॥
(काले काले जलदा पर या, खिंची तड़ित की रेखा।
चतुर पारखी ने पत्थर पर, घिस क्या सोना देखा ?
शुभ प्रभात सजना आएँगी, चीर गुलाबी पहने।
इसीलिए घन ने बनवाये, सभी गुलाबी गहने॥)

अलवर के ईश्वरसिंह पिंगल भाषा के उत्कृष्ट कवि थे। ग्रंथ इन्होंने कोई नहीं लिखा, पर फुटकर कवित-सवैये सैकड़ों रचे हैं। फतहकरण रचित 'पत्र प्रभाकर' पिंगल भाषा की एक अत्युत्तम रचना है। स्वर्गीय झालावाड़-नरेश राजेन्द्रसिंह देव प्रतिभावान कवि थे। रावत सुजानसिंह (भगवानपुरा) ने 'गजेन्द्र-मोक्ष' नाम का एक ग्रंथ और बहुत-सी फुटकर कविताएँ रची हैं। अच्छे कवि और काव्य-मर्मज्ञ हैं। पंडित उमाशंकर द्विवेदी वीर रस की कविता करते हैं। ठाकुर रेवतसिंह ने पाँच-सात ग्रन्थ लिखे हैं। इनकी कविता बहुत प्रौढ़ और परिमार्जित होती है। वर्णन-चमत्कार भी उसमें खासा पाया जाता है। ठाकुर रणधीरसिंह बहुत प्रशंसनीय रचना करते हैं। इन्होंने 'नरसी-चरित्र' नाम का एक छोटा-सा ग्रंथ और अनेक फुटकर कवित्त आदि लिखे हैं।

इनके कवित-सवैयों में बडी गति और प्रवाह पाया जाता है। पढते वक्त देव-पद्माकर याद आते हैं। जयपुर के प्रतापनारायण और झालावाड के ईश्वरलाल मँजे हुए कवि हैं और बडी भावपूर्ण कविता करते हैं।

मोडजी म्हैयारिया डिंगल भाषा के अच्छे कवि थे। इन्होंने, वीर-सतसई, की रचना की जो अप्रकाशित है। बारहठ हिंगलाजदान का देहान्त अभी जुलाई के महीने में हुआ है। ये डिंगल के उद्भट विद्वान और सुकवि थे। उदयराज जोधपुर के रहनेवाले हैं। राजस्थानी के कवि हैं। 'अरावली की आत्मा' और 'मूघा मोती' नामक दो ग्रन्थ हाल में छपे हैं। राजस्थानी की उत्तम रचनाएँ हैं। इनके रचयिता क्रमश. मनोहर शर्म्मा और भीमराजवीरुम हैं। मेघराज 'मुकुल' राजस्थानी में सरस कविता करते हैं। 'सैनाणी' इनकी एक बहुत लोकप्रिय कविता है। इसका 'रेकॉर्डिङ्ग' भी हाल में हुआ है। भरत व्यास भी राजस्थानी के अच्छे कवि हैं। इनकी फुटकर कविताएँ बहुत प्रचलित हैं।

खडी बोली के कवि राजस्थान में सैकडा हैं। इनमें सर्वश्री जयनारायण व्यास, सुमनेश, गणपतिचद्र भडारी, देवीलाल सामर, सन्हैयालाल ओझा, उदयसिंह भटनागर, हरिनारायण शर्म्मा "किंकर", शकुन्तला कुमारी इत्यादि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

सातवाँ प्रकरण

प्राचीन और अर्वाचीन गद्य

गद्य-निर्माण की परिपाटी राजस्थान में बहुत प्राचीन काल से चली आती है। चौदहवीं शताब्दी की कुछ गद्य रचनाएँ प्राप्त हुई हैं जिनकी भाषा बहुत साफ-सुथरी, प्रवाहपूर्ण एवं व्यवस्थित है और वर्णन-शैली भी सयत है इससे मालूम पडता है कि राजस्थानी गद्य का जो रूप इन रचनाओं में दृष्टिगत होता है वह इस शताब्दी से पूर्व के गद्य का विकसित रूप है। अनुमानत राजस्थानी गद्य का प्रारभ तेरहवीं शताब्दी के मध्य में हुआ है।

राजस्थानी पद्य की तरह राजस्थानी गद्य के भी प्रारम्भिक विकास में जैन विद्वानों का हाथ विशेष रहा है। इनकी अनेक छोटी-छोटी रचनाएँ मिलती हैं जिन में परोक्ष या अपरोक्ष में जैन धर्म के सिद्धान्तों का निरूपण किया गया है। भाषा इनकी बहुत सहज और स्पष्ट है। वर्णन-प्रणाली सरस और रोचक है।

अनेक जैनेतर रचनाओं का भी पता है। इनमें कुछ तो पूरी गद्य में हैं और कुछ में गद्य और पद्य दोनों हैं। ख्यात, बात इत्यादि गद्यात्मक रचनाओं का उल्लेख पहले भूमिका में हो चुका है। इनके अतिरिक्त बहुत से प्राचीन ताम्रपत्र, पट्टे, परवाने आदि मिले हैं जिनके द्वारा भी प्राचीन राजस्थानी गद्य के स्वरूप पर अच्छा प्रकाश पडता है।

प्रारभ से लेकर आज तक के राजस्थानी गद्य के कुछ नमूने यहाँ दिए जाते हैं जिनसे विदित होगा कि किस तरह राजस्थानी गद्य का उत्तरोत्तर विकास हुआ है तथा उसका स्वरूप बदला है—

"ज्ञानाचारि पुस्तक पुस्तिका सपुट सपुटिका टीपणा कवली उतरी ठवणी पाठा दोरी प्रभृति ज्ञानोपकरण अवज्ञा, अकालि पठन अतिचार विपरीत कथनु उत्सूत्रप्ररूपणु अश्रद्धान-प्रभृतिकु आलोयहु। दर्शनाचारि देव द्रव्यु भक्षितु उपेक्षितु प्रज्ञापराधि विनासितु जिनभुवन आसातना अधौयति देवपूजा गुरुद्रव्यग्रहणु गुरुनिदा द्रव्यलिंगिगिरउ ससर्गु बिबआशातना स्थापनाचार्य आशातना शका आकाक्षा विचिकित्सा मिथ्यादृष्टि प्रससा मिथ्यादृष्टिपरिचउ ए पाच अतिचार आलोयउ"।

—आराधना (स० १३३०)

"ग्रामि एक अति दरिद्रताकरी दुक्खित डोकरी एक हूँती। हंसउ इसइ नामि तेहनउ दीकिरउ एकु हूँतउ। सु आजीविका कारणि ग्रामलोक तणा वाछरू चारतउ। अनेरइ दिनि सध्या समइ उद्यान-वन हूतउ वाछरू ले आवतउ हूतउ सु सर्पि डसिउ, मूर्च्छा आवी, तिहांईजि महाविषवेग सगनु हूतउ हेठउ ढलिउ। जिम काष्ठु निश्चेष्टु हुयइ तिम थाई महीपीठि पडिउ। किणिहिं एकि ग्राम माहि आवी करी डोकरी आगइ कहिउ—ताहरउ दीकिरउ सर्प्पि डसिउ। बाहिरि अचेतनु थाई पड़िउ छइ। तउ पाछइ स डोकरी तेतीहीं जि बार मत्र तत्र यत्र पडित मेली करी रोयती हूती। दीकिरा कन्हइ आवी[1]"।

—तरुणप्रभ (स० १४११)

"इसौ नहीं हो ठाकुरै। इसौ कीजै। गळै सत सौ सालगराम तुलसी की माला घातीजै। राजा अचळेसर का आवासा सौ लौहडौ करता जाईजै। जितरा जितरा पग दीजै तितरा अस्वमेध ज्याग का फळ लीजै। इणि विधि जें जीव निवेदीजै तौ सूरिजमण्डल भेदीजै। तितरै वात कहता वार लागै। अस्त्री जण सहस चाळीस को साघाट आइ सप्रापति हुवौ छ! किसी एक बाळी-भोळी अबळा प्रौढ। षोडस वरस की राणी-राउताणी। आप आपका देवर-जेठ भरतार कौ पुरषारथ देखती फिरै छै[2]।"

—शिवदास (स० १४८५)

"धरती वीघा तीन सै सुर प्रब मे उदक आघाट श्री रामार अर्पण कर देवाणी सो अणी जमी रो हॉसल भोग डड वराड़ लागत वलगत कुडा नवाण रुख वरख ऑबा महुडा मेर को खडम सरब सुदी थारा बेटा पोता सपुत कपुत खायाँ पायाँ जायेला [3]।"

—ताम्रपत्र (स० १५३२)

"पछै मुलतान री फोजाँ नै दिली री फोजाँ ले नै राउ चूडे उपर नागोर आयो। राउ चूडो नागोर मारीया पछै केल्हण अपूठो गयो।"

—राठोडाँ री वसावळी (स० १६००)

---

१. डोकरी=बुढ़िया। वाछरू=पशु। दीकिरउ=बेटा।

२. घातीजै=पहनो। लोहडौ=युद्ध। निवेदीजै=छोड़ा। साघाट=समूह। सप्रापति=एकत्र।

३. सुर=सूर्य्य। प्रब=पर्व। उदक देवाणी=संकल्प कर दान में दी। डड=दड। वराड=कर। लागत=महसूल। वलगत=दातव्य। कुडा=कुएँ। नवाण=जलाशय। रुख=रुक्ष। वरख=वृक्ष। ऑबा=आम्र। महुडा=महुआ। मेर=पहाड़, आस पास। खडम=स्वामिगत अधिकार।

"बलि को वधणहार । सब ही बात सामर्थ । श्री कृष्ण रुषमणीनी बाँह पकडि रथ उपरि बसाणी । तवे बाहर बाहर हुई । कहण लागा जे कोई होय सु दोडिज्यौ । हरणापी कहता रुकमणी हरि कहता कृष्ण हरि ले गया [४]" ।

—वेलि क्रिसन रुषमणी री टीका (सं० १६८३)

"कोई समद माहे साह गयो थो । तिकै एक मृतक देह दीठी थी । तिण री बात राणा कुभा नु कही । तद राणो कुभो चित भरमीको हुयो क्यु ही रा क्युँ ही बोले । तद कुम्भलमेर रहता । सु गढ ऊपर ऐक ठो मामा कुड छै । मामा वड छै । तठै राणो बेठो थो । कुम्भा रै बेटो मुदायत उदो थो । तिण मार कटारी यॉ नै आप पाट बैठो [५]।"

—मुहणोत नैणसी (सं० १७१६)

"पछै वामण सीदा ले नै तळाव उपर रोटी करवा बैठो । जठै तळाव री तीर एक मीडक आयो । आवे न वामण थी कही । देवता तोहे तौ में अठे कदी नहीं देख्यौ । तू कठे जाअ है । जदी वामण कहै । हूँ उजीण रहो छूँ नै गया जी जाऊ छूँ [६] ।"

—प्राचीन वार्ता (सं० १८००)

"यण रीति उदियापुर सहर गणगोर रा हगाम मंडिया । सागर री तीर पागडा छाडिया । ऊँचै ढाळ/तपत निवास कियो । सो जाण जै क सत-सुक्रत रा सिंघासण प्रगट थियो । तिकण रे सीस श्री दीवाण आप विराजिया । भाई सगा सोळा ही उमराव आप-आप री वैठकह हाजरि थिया ।" [७]

—रामदान (सं० १८६०)

"इण बात रै अनतर ही एक समय चीतोड मैं कमठाणाँ रो काम चालताँ कोई धातू री एक मूर्ति च्यारि हाथ धारण कीधाँ भूतल माँहिं थी नीसरी । जिकण रो भाव विचारण रै काज राणाँ हम्मीर आप री सभा मे सगाई परिकर रा लोका नूँ प्रत्येक पूछि परीक्षा करी । जिकण मूर्ति रै एक हाथ नीचे दूजो

४. बैसाणी = बिठाई । बाहर = आवाज । हरणापी = हरिणाक्षि ।

५. तिकै = उसने । दाठा = देखा । तिण = उस । चित भरमीको = चित्त-भ्रम ।

६ मादो = आटा । मीडक = मेढक = । उजाण = उज्जैन ।

७ हगाम = आनद । पागडा छाडिया = घोडे से उतरे । ढाल = उतार ।

ठो = जगह । मुदायत = मतलबी, महत्वाकाक्षी ।

हाथ ऊँचो तीजो बीच में तिरछो रहिये। अर चौथो हाथ कठ रै लागो देखि आप आप री उपलब्धि रै अनुसार मार्ग ही जुदा-जुदा भाव कहियो[८]।"

—कविराजा सूरजमल (स० १६००)

"परन्तु मारवाडी भाषा री न तो कोई व्याकरण है, न कोई पढण री किताबा है, और न कोई इण भाषा री खूबिया नै जाणै है। भाषा री मुख्य खूबी आ है, के भाषा मावरा वाळी हुवणी, सो जिसी मावरादार भाषा मारवाड री है इसी दूसरी एक पण नहीं है, परन्तु इण भाषा री व्याकरण और किताबा न हुवणा सूं इण री खूबिया री गरज में ओटियोडा अगारवाळी दशा है। अतएव लाग इण भाषा नै कुछ माल नहीं समझै है, और कठेई भाषा सबधी बात चालै है तो मारवाडी भाषा री बडी निंदा करै है।"

—रामकर्ण (स० १६५३)

"आ सही है कै राजस्थानी सम्मेलन प्रात री अेक आवश्यकता ही और है। उण जैडी सजीव साहित्यिक सस्था द्वारा प्रात री नीव मजबूत वण सकै है। आज भाषा और सस्कृति रै आधार माथै जद नुवे प्रात निर्माण रो सवाल उठ रयो है उण टेम समझदारी तो आ है कै राजस्थानी सम्मेलन रा पदाधिकारी आप रो सगटन कर जल्दी सूं जल्दी घडी-घडाई योजनावा माथै चालणो शुरू कर देवे। या प्रात री नई पीढी ने सम्मेलन री जिम्मेवारी सूंप कर आन्दोलन री गति अवरोध दूर करै"।

—श्रीमन्त कुमार व्यास (स० २००४)

लगभग स० १६०० तक राजस्थानी मे गद्य निर्माण की परपरा बनी रही। परन्तु इसके अनतर जब से भारत मे राष्ट्रीयता की लहर उठी और हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने की चर्चा होने लगी तब से प्रान्तीय भाषा के मोह को छोड कर राजस्थान के साहित्यकारों ने हिन्दी गद्य लिखना प्रारभ कर दिया और शुद्ध साहित्यिक राजस्थानी गद्य का विकास प्रायः रुक गया। अतएव उस समय से राजस्थानी गद्य का इतिहास एक तरह से राजस्थान में हिंदी गद्य ही का इतिहास है।

---

८ कमठाणा रो = भवन-निर्माण का। जिकण रो = जिसका। परिकर = परिग्रह। उपलब्धि = ज्ञान।

परन्तु इधर पाँच-सात वर्षों में राजस्थान के साहित्यकारों का ध्यान पुनः राजस्थानी गद्य की ओर गया है और कुछ ने राजस्थानी गद्य की बहुत प्रौढ़ और [illegible] कृतियाँ प्रस्तुत की हैं। दो एक पत्र-पत्रिकाएँ भी राजस्थानी में निकलने लगी हैं और राजपूताना विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में राजस्थानी को स्थान दिलाने के भी प्रयत्न हो रहे हैं। विभिन्न रियासतों में लोकप्रिय सरकारों के स्थापित हो जाने से आशा की जाती है कि राजस्थानी के प्रचार को अब अधिक बल मिलेगा।

राजस्थान के पुराने गद्य लेखकों का विवरण पिछले पृष्ठों में यथास्थान दिया गया है। आधुनिक काल के कुछ बहु सम्मानित गद्यकारों का परिचय यहाँ दिया जाता है।

श्यामलदास

ये दधिवाड़िया गोत्र के चारण मेवाड़ राज्य के ढोकलिया ग्राम के निवासी थे। इनके पूर्वज मारवाड़ राज्यान्तर्गत मेड़ते परगने के गाँव दधिवाड़ा में रहते थे और रूँण के साँखले राजाओं के 'पोलपात' थे। जब राठौड़ों ने साँखला से उनका राज्य छीन लिया तब वे मेवाड़ में चले आए। उनके साथ श्यामलदास के पूर्वज भी यहाँ आकर बसे। दधिवाड़ा गाँव से आने के कारण ये दधिवाड़िया कहलाये।

इनका जन्म सं० १८९३ में हुआ था। इनके दादा का नाम रामदीन और पिता का कमजी था। ये चार भाई थे—ओनाडसिंह, श्यामलदास, ब्रजलाल और गोपालसिंह। इन्होंने दस वर्ष की आयु में सारस्वत पढ़ना प्रारंभ किया और उसके बाद वृत्तरत्नाकर, साहित्य-दर्पण, रसमंजरी, कुवलयानंद इत्यादि ग्रंथों का अध्ययन किया जिससे संस्कृत-काव्य के प्रायः सभी अंगों का इन्हें अच्छा बोध हो गया। सं० १९१२ तक विद्याभ्यास चलता रहा। इस अर्से में इन्होंने संस्कृत के सिवा उर्दू-फारसी और डिंगल में भी अच्छी दक्षता प्राप्त कर ली। इन्होंने दो-एक ग्रंथ ज्योतिष तथा वैद्यक के भी पढ़े थे।

इनका पहला विवाह सं० १९०७ में शाकरड़ा के भादकलाजी की बेटी से हुआ। सं० १९१९ में इनके एक पुत्र हुआ जो तीन वर्ष बाद मर गया। फिर तीन कन्याएँ और दो पुत्र हुए, जो बहुत छोटी अवस्था में परलोक सिधार गये। इन्होंने दूसरा विवाह सं० १९१६ में किया था। इनके एक भी पुत्र

जीवित नहीं रहा जिससे इन्होंने अपने छोटे भाई के पुत्र जसकरण को अपनी गोद ले लिया था। श्यामलदासजी का देहान्त स० १९५१ म हुआ।

श्यामलदास एक सभा-चतुर, नीति-निपुण एव स्पष्टभाषी पुरुष थे और महाराणा सज्जनसिंह के इतने कृपा पात्र थे कि उनके दाहिने हाथ समझे जाते थे। इसलिए लोग इनसे प्राय. बहुत जलते थे। इसका एक कारण यह भी था कि ये हाँ-हुजूरी नापसद करते थे और कितना ही प्रतिष्ठित व्यक्ति क्यो न होता उसे खरी २ सुनाये विना नहीं रहते थे। ये कहा करते थे कि अपने मतलब के लिए मीठी २ बाते तो सभी कह देते हैं। पर हितकारक कटु बात कहनेवाले कम मिलते हैं। अत. कटु सत्य कहने का काम मेरा है। ये महद्राज सभा (State Council) के मेम्बर थे और इतिहास-कार्यालय, पुस्तकालय, म्यूजियम आदि की देख-रेख भी करते थे। इसके सिवा राज-काज सम्बन्धी प्रायः सभी महत्वपूर्ण विषयो पर इनकी सलाह ली जाती थी। मेवाड राज्य के प्रति की हुई सेवाओ के कारण कविराजा का सम्मान भी खूब हुआ। महाराणा सज्जनसिंह ने इन्हे 'कविराजा' की पदवी, जुहार, ताजीम, छडी, बाँह-पसाव, चरण-शरण की मुहर, पैरो मे सर्व प्रकार का सुवर्ण भूपण और पगडी मे माँझा आदि देकर इनकी प्रतिष्ठा बढाई जिसका वर्णन इन्होंने स्वय ही निम्नलिखित छप्पय मे किया है—

निम जुहार ताजीम, पाय लगर हिम पटके।
पूरण बाँह पसाव, खळा अदवा मन खटके॥
जाहिर छडी जळेब, थरु बीड़ो जस थापण।
माँझो पाघ मँझार, छाप कागळ बड़ छापण॥
कविदास तेण कविराज कर, कठिन अक विधि कापिया।
करि शुभ निगाह श्यामल कुरब, सज्जन राण समापिया॥

अंग्रेजी सरकार ने भी इनकी योग्यता की कदर कर इनको महामहोपाध्याय का खिताब दिया था। महाराणा साहब के प्रसन्न होने से मेवाड के पोलिटिकल एजेंट कर्नल इम्पी ने अपनी कोठी पर दरबार किया और कविराजा को 'कैसरे हिन्द' का तगमा देकर कहा कि आपने महाराणा साहब को समय-समय पर बहुत उत्तम सलाहे दी हैं, जिससे खुश होकर अंग्रेज सरकार आपको यह तगमा देती है।

श्यामलदास कवि और इतिहासकार दोनों थे। पर राजस्थान में इनकी कीर्ति का आधार इनकी कविताएँ नहीं, बल्कि इनका लिखा 'वीरविनोद' नामक इतिहास-ग्रन्थ है। यह बृहद् इतिहास दो भागों में विभक्त है और रॉयल चार्पेजी साइज के २७०० पृष्ठों में समाप्त हुआ है। महाराणा शम्भुसिंह की आज्ञा और कर्नल इम्पी के आग्रह से सं० १६२८ में इसका लिखना आरम्भ हुआ और महाराणा फतहसिंह के राजत्व-काल में सं० १६४६ में इसकी समाप्ति हुई। इसके लिए सामग्री जुटाने आदि में मेवाड़ राज्य का १०००००) रु० व्यय हुआ था। ग्रंथ छप तो गया पर महाराणा फतहसिंह ने कुछ विशेष कारणों से इसका प्रकाशित होना मुनासिब न समझा और इसका प्रचार रोक दिया। इसलिए छप जाने पर भी यह सर्व साधारण के काम में न आ सका। कई वर्षों तक बह कोठरियों में पड़ा रहा। वर्तमान महाराणा साहब ने अब इसको बेचने की आज्ञा देकर इतिहास-प्रेमियों का बड़ा उपकार किया है। 'वीरविनोद' इतिहास का एक स्टेण्डर्ड ग्रंथ है और मेवाड़ के इतिहास पर प्रमाण समझा जाता है। इसमें मुख्यतः मेवाड़ का इतिहास वर्णित है पर प्रसंगवश जयपुर, जोधपुर, जैसलमेर आदि राजस्थान की दूसरी रियासतों तथा बहुत से मुसलमान बादशाहों का विवरण भी इसमें आ गया है, जिससे इसकी उपादेयता और भी बढ़ गई है। प्राचीन शिलालेखों, दानपत्रों, सिक्कों, बादशाही फरमानों इत्यादि का इसमें अपूर्व संग्रह हुआ है।

भाषा पर श्यामलदास का असाधारण अधिकार था। ये बहुत चुस्त, चलती हुई और मुहावरेदार भाषा लिखते थे। इनकी भाषा में अरबी-फारसी के शब्द अधिक प्रयुक्त हुए हैं। इतने अधिक कि वह हिंदी न रहकर एक तरह से उर्दू ही गई है, सिर्फ लिपि नागरी है। उदाहरण लीजिए—

"बादशाह ने उन लोगों की सलाह पर बिलकुल खयाल न किया और यही जवाब दिया कि राणा के आये बगैर हम लड़ाई से हाथ उठाने में मुझे शर्म आती है, और उन दोनों सरदारों से फर्माया कि राणा के हाजिर हुए बिना यह अर्ज मंजूर नहीं हो सकती। तब डोडिया साडा ने अर्ज की कि हमारे मालिक तो पहाड़ी मुल्क के राजा हैं और पहाड़ी लोगों में जिहालत (असभ्यता) ज्यादा होती है, वे इस वक्त मौजूद नहीं हैं। इसलिए उनके हाजिर होने का इकरार हम लोग नहीं कर सकते। हम लोगों को, जो पेशकश देकर

लाचारी करते हैं, जबरदस्ती मारनी बादशाही कायदे के खिलाफ है, इस पर जयपुर के राजा भगवानदास ने बादशाह के कान में झुककर अर्ज़ की कि देखिए यह कैसा गुस्ताख आदमी है कि शहनशाही दरबार में सख्त क़लामी से पेश आता है। अकबर शाह तो बड़ा क़दरदान था। उसने फरमाया, कि यह शख्स जो अपने मालिक की खैरख्वाही पर मुस्तैद होकर सवालो के जवाब बेधड़क दे रहा है इनाम के लायक़ है। इससे राजा भगवानदास को, जिसने अदावत से चुगली खाई थी, शर्मिंदा होना पड़ा।"

शिवचन्द्र भरतिया जाति के अग्रवाल वैश्य थे। इनके पूर्वज जोधपुर राज्य के डिडवाणा गाँव के निवासी थे, जहाँ से वे हैदराबाद राज्यान्तर्गत कन्नड ग्राम में जाकर बस गये थे। वहाँ सं० १९१० में इनका जन्म हुआ था। इसके दादा का नाम गंगाराम और पिता का बलदेव था। अपने पिता के चार पुत्रों में ये सबसे बड़े थे। परन्तु पिता की मृत्यु के बाद उनकी समस्त धन-सम्पत्ति तीनों छोटे भाइयों ने आपस में बाँट ली और इनके कुछ भी हाथ न लगा। इसलिए इन्होंने व्यापार करना छोड़ वकालत करना शुरू किया। परन्तु वकालत में इनका जी न लगा और जाकर इन्दौर में सरकारी नौकरी कर ली। इनका देहान्त सं० १९७५ में हुआ।

शिवचन्द्र

भरतियाजी संस्कृत, हिन्दी, मराठी, और राजस्थानी भाषा के सुज्ञाता और दर्शन-शास्त्र के प्रकृष्ट विद्वान थे। इन्होंने १७ ग्रंथ हिंदी में, १३ मराठी में, ९ राजस्थानी में और तीन संस्कृत भाषा में लिखे जिनसे इनकी विद्वता, गहरे अनुशीलन, दीर्घकालिक अनुभव, विस्तृत पठन तथा कठोर परिश्रम का पता लगता है। राजस्थानी भाषा के ग्रंथों के नाम ये हैं—

(१) केसर विलास नाटक (२) फाटका जंजाल नाटक (३) बुढापा की सगाई नाटक (४) कनक सुन्दर (५) मोतियां की कंठी (६) वैश्य प्रबोध (७) विश्रान्त प्रवासी (८) संगीत मान कुंवर नाटक और (९) बोध दर्पण।

शिवचन्द्र आदर्श चेता साहित्यकार और सहृदय समाज सेवी थे। इनके ग्रन्थों में प्रखर पांडित्य और सूक्ष्मतम दार्शनिकता का गांभीर्य है। अपनी प्रतिभा एवं कल्पना के बल से इन्होंने हिंदू समाज, विशेषत: मारवाड़ी समाज, की दुर्बलताओं तथा कुरीतियों का यथार्थ चित्रण किया है। भाषा की सफाई भी खूब है। विचार सुलझे हुए, मर्मस्पर्शी और बोधगम्य हैं। इनकी राजस्थानी भाषा का नमूना देखिए—

"वाह पंडितजी महाराज! खूब आछो उपदेश दीनो। आप म्हाँ लोगाँ को भलो करवा वाळा साँचा पुरोहित छो। आपको एक एक अक्षर मोत्याँ सूँ भी महगो छे। म्हे तो म्हाँकी जात माहे कोई बुरा काम कीनो छे नाही पंचा को कोई अपराध करो छे नाही तथा जात का कोई कार भी उलाघी छे नाही। बुरो काम नाही कर म्हां पंचा म्हांका न्यूता बन्द कीनो छे तिकारो जित्तो अफसोस नहीं उत्तो हाल आपके सामने आछा आछा आबरूदारा का घर माहे—म्हे आगे कह्या परवाणे—चोडे चोडे अनरथ हो रह्या छे तिका कानी पंचा का लक्ष्य नहीं आर बाकी पंचायत भी नहीं! तिकारो घणो-घणो अफसोस छे!! जाणो हो, म्हाका घर का न्यूता बन्द हावेला नहीं। दस-पांच पंच म्हाका भी साथी हो जावेला। आ पंचायत आर इन्साफ कायका छे--जात माहे फूट मचणी छे, आर कुछ भी नहीं"।

मुंशी देवीप्रसाद जाति के कायस्थ थे। इनका जन्म अपने नाना के घर जयपुर में सं० १९०४ में हुआ था। इनके पिता का नाम नत्थनलाल था।

देवीप्रसाद

मुंशीजी पहले टोंक राज्य में नौकर थे, फिर महाराजा जसवतसिंह के समय में सं० १९३६ के आस-पास जोधपुर चले आये। जोधपुर में इन्होंने मुन्सिफ का काम किया और मर्दुम शुमारी के महकमे पर भी रहे। ये एक परिश्रमी, बहुपठित तथा ज्ञान पिपासु व्यक्ति थे और अपनी धुन के बड़े पक्के थे। जिस काम को अपने हाथ में लेते उसे पूरा कर ही के छोड़ते थे। सरकारी नौकरी के अलावा जितना भी समय शेष रहता उसे ऐतिहासिक खोज के काम में लगाते थे। ये अरबी-फारसी तो खूब जानते थे, पर संस्कृत का यथेष्ट ज्ञान न था। इसलिए प्राचीन शिला लेखो के पढने में संस्कृत के पंडितो की सहायता लेते थे। संस्कृत न जानने का पछतावा भी इन्हें आयु पर्य्यन्त रहा। फारसी ग्रन्थों के आधार पर इन्होंने बहुत से ग्रंथ लिखे जिनमें मुसलमान कालीन इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। नागरी प्रचारणी सभा काशी को इन्होंने १००००) का दान दिया था, जिसके व्याज से ऐतिहासिक पुस्तकें छापी जाती हैं। इनका देहावसान सं० १९८० में हुआ।

मुंशीजी ने छोटे-मोटे कुल मिलाकर संख्या में पचास से ऊपर ग्रंथ लिखे जिनके नाम ये हैं:—

(१) अकबर (२) शाहजहां (३) हुमायूँ (४) तुहमास्य (५) बाबर, ६) पीरशाह, (७) रत्नसिंह, (८) विक्रमादित्य (चित्तौड) (९) बखवीर

उदयसिंह (११) प्रतापसिंह, (१२) पृथ्वीराज (जयपुर) (१३) पूरणमल, (१४)रतनसिंह (१५) आसकरण, (१६) राजसिंह (जयपुर) (१७) भारमल (१८) भगवानदास (१९) मानसिंह (२०) बीकाजी (२१) नराजी (२२) लूणकरण (२३) जैतसी, (२४) कल्याणमल (२५) मालदेव (२६) वीरबल (२७) मीराबाई (२८) जसवन्तसिंह (२९) खानखाना (३०) औरङ्गजेब (३१) जसवन्त स्वर्गवास (३२) सरदार सुख समाचार (३३) विद्यार्थी विनोद (३४)स्वप्न राजस्थान (३५) मारवाड का भूगोल (३६) प्राचीन कवि (३७) बीकानेर राज्य पुस्तकालय (३८) इसाफ सग्रह (३९)नारी नवरत्न (४०) महिला मृदुवाणी, (४१) मारवाड के प्राचीन शिलालेखों का सग्रह (४२) सिंध का प्राचीन इतिहास, (४३) यवन राज वशावली (४४) मुगल वशावली (४५) युवती योग्यता (४६) कविरत्नमाला (४७) अरबी भाषा मे सस्कृत ग्रन्थ (४८) रूठी रानी (४९) परिहार वश प्रकाश (५०) परिहारो का इतिहास (५१) राज रसनामृत और (५२) सागा।

मुशी देवीप्रसाद ने कोई बहुत बडा तथा क्रमबद्ध इतिहास कहीं का भी नही लिखा। परन्तु अकबर, प्रताप, मीराबाई आदि की जीवनिया बडे अनुसधान के बाद लिखी गई हैं और इनसे उनकी शोध-बुद्धि, विद्वत्त और ऐतिहासिक ज्ञान का परिचय मिलता है। ये बहुत सरल, व्यावहारिक एव चलती हुई भाषा लिखते थे और शब्दाडम्बर तथा किसी बात को घुमा फिरा कर कहने के विरुद्ध थे। इनकी भाषा-शैली मे उर्दू-हिन्दी का अपूर्व सम्मेलन हुआ है। विषय प्रतिपादन-प्रणाली सादी तथा वाक्यावली सुलझी हुई होने से इनके ऐतिहासिक ग्रन्थो के पढने मे उपन्यासों के पढने का-सा आनद आता है। इनकी स्वतन्त्र भाषा का थोड़ा सा नमूना देखिए—

"हे राजन्! जो मैं कहता हूँ उसे आप अभिमान छोडकर सुने। जब न तो मैं ही कुत्ते से कम हूँ और न आप राजा युधिष्ठिर से बढकर हैं, तो फिर मेरी और आपकी बातचीत होने से दरबारी लोग क्या बुरा मान रहे और खफा हो रहे हैं। सुनिए इस असार ससार मे मनुष्य का नाशवान शरीर ममता से ठहरा हुआ है, जो यह न हो तो किसी का काम ही न चले। देखिए, जैसे आपको अपने अलकारो से सजे हुए शरीर का अहकार है वैसे ही हम गरीबो को भी अपने नगे-धड़गे शरीरो का है। आपको बडे २ महलोंवाली अपनी राजधानी जैसी प्यारी है वैसे ही मुझे भी अपनी यह बुरी-सुरी झौपडी अच्छी

लगती है जिसकी खिडकी घंडे के घेरे मे सजाई गई है और जो जन्म दिन से माता के समान मेरे दुख-सुख की साथिन रही है।"

पडित लज्जाराम मेहता हिन्दी साहित्य के अमर जीवों मे से एक हैं। इनका जन्म स० १६२० चैत्र कृष्णा २ को बूँदी मे हुआ था। ये नागर ब्राह्मण थे। इनके पूर्वज वडनगर के रहनेवाले थे जहाँ से वे राजस्थान में आ बसे थे। इनके पिता का नाम गोपालराम और पितामह का गणेशराम था। पण्डितजी १८ माह तक गर्भवास मे रहे थे। इसलिए माँ के उदर मे ही बहुत सी बीमारियाँ अपने साथ लेकर आए थे। इनकी ६८ वर्ष की आयु मे एक दिन भी ऐसा नहीं निकला जब इन्हे कोई-न-कोई शारीरिक कष्ट न रहा हो। खाँसी इनकी चिरसगिन रही। ववासीर, हृद्रोग आदि व्याधियों के कारण इनको अपना जीवन एक भार-सा मालूम देता था। रात को नींद नहीं आती थी। इसलिए इन्होंने दिन मे दो बार अफीम का सेवन करना शुरू कर दिया था। आँखो की कमजोरी को दूर करने के लिए ये तमाखू भी खूब सूघते थे।

पं० लज्जाराम

मेहताजी को स्कूली शिक्षा बहुत कम मिली थी। पर बाद मे अपने निजी परिश्रम द्वारा इन्होंने अग्रेजी, संस्कृत, हिंदी गुजराती, मराठी आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। सवत् १६३८ मे जब इनके पिता की मृत्यु हो गई तब इनको 'कपड़ा की दुकान' पर उनकी जगह १२) मासिक की नौकरी मिली। वहाँ से इनका तबादला सरकारी स्कूल मे हुआ। पर ये एक ईमानदार, निष्पक्ष और अपने विचारों पर दृढ रहनेवाले व्यक्ति थे इसलिये यहाँ भी इनका टिकाव अधिक दिनों तक न हो सका। राजकर्मचारियों की धांगा-धांगी तथा अपने जातीय भाइयों के षडयन्त्रो से तग आकर इन्होंने सरकारी नौकरी छोड दी और जीविकार्थ बम्बई चले गए। बम्बई मे ये पहले 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' के सहकारी सपादक और बाद मे प्रधान सम्पादक बनाए गए। सुयोग्य और बहुभाषा ज्ञानी तो ये थे ही। इस क्षेत्र मे बहुत जल्दी चमक गये। स० १६६० तक ये 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' के सपादक रहे। बाद मे वापस बूदी चले आए। इस बार बूदी का वातावरण इनके लिए अधिक अनुकुल रहा। बूदी-नरेश महाराव राजा रघुवीरसिंहजी ने इन्हे अपने यहा नौकर रख लिया और स्पष्टभाषी, निष्पक्ष एव विश्वसनीय समझ कर कई तरह से इनकी प्रतिष्ठा बढाई। इनका देहान्त स०१६८८ मे बूदी में हुआ।

पडितजी के कोई सतान नही हुई। उनके भानजे श्रीयुत रामजीवनजी आज कल उनकी धन-सपत्ति के मालिक हैं। ये भी हिंदी के बहुत अच्छे लेखक और बहुपठित विद्वान् हैं। इनकी 'देशी बटन', 'कौतुक-माला', 'मुग्धा', इत्यादि दस के लगभग पुस्तके छप चुकी हैं।

प० लज्जारामजी सनातन धर्म के कट्टर अनुयायी और हिन्दू आदर्शों के पूर्ण पक्षपाती थे। हिन्दी की सेवा भी इन्होंने खूब की। स० १६८६ में होनेवाले हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के सभापति चुने जाने के लिए मेहताजी का नाम समाचार-पत्रो मे निकला था। पर कुछ तो शारीरिक अस्वस्थता के कारण और कुछ यह समझकर कि देशी राज्य मे रहकर इस तरह के उत्सवों मे सम्मिलित होना ठीक नहीं होगा, इन्होंने उक्त पद को स्वीकार नही किया। इन्होंने २३ ग्रथ लिखे जिनमे से १३ उपन्यास और शेष ऐतिहासिक तथा सग्रह ग्रथ हैं। इन ग्रन्थो के नाम ये हैं—

(१) कपटी मित्र (२) द्यूत चरित्र (३) शराबी की खराबी (४) विचित्र स्त्री चरित्र (५) बीरबल विनोद (६) हिन्दू-गृहस्थ (७) धूर्त रसिकलाल (८) स्वतत्र रमा और परतत्र लक्ष्मी (९) विक्टोरिया चरित्र (१०) अमीर अबदुर्रहमान (११) आदर्श दपती (१२) भारत की कारीगरी (१३) सुशीला विधवा (१४) बिगडे का सुधार (१५) विपत्ति की कसौटी (१६) उम्मेदसिंह चरित्र (१७) पराक्रमी हाडाराव (१८) जुझार तेजा (१९) आदर्श हिंदू (२०) प० गगा दास का चरित्र (२१) ओदाराम गोत्र का वशवृक्ष (२२) आप बीती (२३) पन्द्रह लाख पर पानी।

मेहताजी ने उपन्यास अधिक सख्या में लिखे हैं। हिन्दी उपन्यास वस्तु, चरित्र, टेकनीक आदि की दृष्टि से बहुत उन्नत है। अत बीस-तीस वर्षों पहले के लिखे इनके उपन्यास आज-कल के उपन्यासों के साथ नहीं खडे किये जा सकते। परन्तु इनकी भी उपयोगिता है। इनमें उस समय के हिन्दू समाज का सही खाका खींचा गया है जो अब आगे आनेवाली पीढी के लिए इति-हास का काम देगा।

पडितजी हिंदी के मॅजे-मॅजाये लेखक थे। ये बहुत जल्दी लिखते थे और बहुत अच्छा लिखते थे। इनकी भाषा बडी सरल, मुहावरेदार और प्रवाह युक्त है। ओज और व्यंग भी उसमें पर्याप्त पाया जाता है। उदाहरण—

"बूँदी के उपलब्ध पडिता और डिंगल तथा पिंगल के नामी नामी कवियों में से चुने हुए व्यक्ति इसमें नियत किये गये थे। मैं भी उनमें पाँचवाँ सवार था। मैंने एक रास्ता किया और वह समस्त सभा के पसंद आया। करता यह था कि जिस पद्य के अर्थ में कुछ उलझन दिखाई देती और सब लोग अपनी अपनी राय पर उसका अर्थ खेंचने में फौरन ही मैं पेन्सिल कागज लेकर उसका अर्थ अपनी बुद्धि के अनुसार लिखता और उस पर बहस होकर तुरत एक मार्ग निकल आता था। प्रयोजन यह कि जो कुछ मेरे ध्यान में आया कच्चा पक्का अर्थ मैंने पत्रारूढ कर दिया। इससे इधर मेरी झंझट ओछी हो गई और उधर लोगों को बहस कर निर्णय करने के लिए भूमि मिल गई। इस तरह से कई मास तक काम अच्छी तरह चलता रहने के अनतर अकस्मात् कई अनिवार्य कारणों से काम अधूरा छूट गया।"

पं० रामकर्ण का जन्म स० १९१४ में जोधपुर राज्य के बडलू नामक गाँव में अपने नाना के घर हुआ था। ये दाहिमा ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम बलदेवजी और माता का श्रृगार देवी था।

रामकर्ण

पडितजी का आदि स्थान मेडता था जहाँ इनके पुरखा ज्योतिष का काम किया करते थे। स० १९०१ में इनके पिता मेडता छोडकर जोधपुर मे जा बसे थे।

पाँच वर्ष की अवस्था में पडितजी की शिक्षा प्रारम्भ हुई। हिन्दी तथा गणित का थोडा-सा ज्ञान हो जाने पर आपने सारस्वत पढना शुरू किया, जिसके साथ-साथ श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध का पाठ भी चलता रहा। तदनंतर रघुवश आदि काव्य एव ज्योतिष-वैद्यक के ग्रन्थ भी पढे। फिर अपने पिता के साथ बम्बई चले गए, जहाँ प्रज्ञाचक्षु प० गट्टूलाल के पास रहकर सिद्धान्त-कौमुदी, महाभाष्य, वेदान्त, न्याय, साहित्य आदि अनेक विषयों का गम्भीर अध्ययन किया। बम्बई से आने पर ये जोधपुर के दरबार-हाईस्कूल में अध्यापक नियुक्त हुए, जहाँ पूरे १८ वर्ष तक बडी सच्चाई और लगन के साथ काम किया। बाद में इनका तबादला राजकीय इतिहास विभाग में हो गया। तब से २८ वर्ष तक ये जोधपुर के इतिहास-विभाग में रहे। यहाँ पर इनका मुख्य कार्य प्राचीन शिलालेखों, ताम्रपत्रों आदि को पढना था। इन्होने सैकडों पुराने शिलालेख, ताम्रपत्र, पट्टे, परवाने इत्यादि पढे और पुरातत्व-शोधक कई यूरोपीय विद्वानों के पढे हुए लेखों का सशोधन कर उन्हे इण्डियन

एण्टिक्वेरी और एपिग्राफिया इण्डिका में छपवाया। भारतीय पुरातत्व-विभाग के तत्कालीन डाइरेक्टर सर जान मार्शल पंडितजी की प्रतिभा पर मुग्ध थे। अपनी अनेक रिपोर्टों में उन्होंने इनकी विद्वत्ता की बड़ी प्रशंसा की है। एक बार उन्होंने इनके विषय में लिखा था—'पंडित रामकर्ण असाधारण गुणी मालूम होते हैं और प्राचीन लिपि पढ़ने के परिज्ञान के कारण भारत-भर के प्रथम स्थानीय आर्य र्जन विद्वानों की गणना में आते हैं।

संस्कृत, हिन्दी, डिंगल आदि भाषाओं के सुज्ञाता होने के साथ ही साथ पण्डितजी इतिहास के भी बहुत बड़े खोजी और विद्वान थे। ये दो साल तक कलकत्ता-विश्वविद्यालय में राजपूत इतिहास के लेक्चरार भी रहे थे। डिंगल-भाषा के तो ये अद्वितीय अधिकारी माने जाते थे। सं० १९७१ में बंगाल की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के तत्वावधान में जिस समय प्रसिद्ध इटालियन विद्वान् डा० टैसीटरी ने राजस्थान में डिंगल-भाषा के ग्रन्थों की खोज का कार्य प्रारंभ किया, उस समय रामकर्णजी उनके प्रधान सहकारी थे। सच तो यह है कि अधिकतर इनके उद्योग और अध्यवसाय के कारण डा० टैसीटरी को अपने शोध-कार्य में इतनी सफलता मिली थी। इनके अतिरिक्त डा० टैसीटरी को डिंगल-भाषा का प्रारंभिक ज्ञान भी इन्होंने करवाया था। बाद में जब डा० टैसीटरी ने डिंगल-ग्रन्थों के संपादन का काम शुरू किया, तो उसमें भी इनका पूरा-पूरा हाथ था। ये उन ग्रंथों के कठिन शब्दों एवं स्थलों के अर्थ करते जाते थे और डा० टैसीटरी उनके नोट आदि अंग्रेजी में लिख लेते थे।

वृद्धावस्था में पंडितजी डिंगल भाषा का एक बृहत् कोष तैयार करने में लगे हुए थे जिसके लिए कठोर परिश्रम करके उन्होंने ६०००० शब्दों एवं हजारों कहावत मुहावरों का संग्रह किया था। परन्तु दुःख है कि यह कोष प्रकाशित भी नहीं हो पाया था कि सं० २००२ आश्विन सुदी ११ शनिवार को उनका स्वर्गवास हो गया।

हिंदी, संस्कृत एवं राजस्थानी के सब मिलाकर पंडितजी ने कोई ७५ ग्रंथों का प्रणयन, संपादन व अनुवाद किया। इनमें नीचे लिखे पाँच ग्रंथ, जो प्रकाशित भी हो चुके हैं, विशेष उल्लेखनीय हैं—

(१) राजरूपक (२) सूरज प्रकास (३) नैणसी की ख्यात (४) मारवाड़ का मूल इतिहास (५) मारवाड़ी व्याकरण और (६) बाँकीदास ग्रंथावली (प्रथम भाग)।

पंडितजी हिंदी के उत्कृष्ट लेखक थे। इनकी भाषा उस भाषा का अच्छा नमूना है जिसे आज कल कुछ लोग विशुद्ध हिंदी बतलाते हैं। ये बहुत प्रौढ़, परिमार्जित एवं सजीव भाषा लिखते थे जिसमें संस्कृत शब्दों की बहुलता रहती थी। इनके लेखों में व्यर्थका पिष्टपेषण नहीं मिलता। कुछ और कुछ नई बातें अवश्य कहते थे और जो भी कहते उसे प्रमाणों द्वारा पुष्ट भी करते जाते थे। इनकी भाषा का नमूना देखिए—

"डिंगल भाषा अपभ्रंश भाषा का ही स्वरूप है। उसकी जन्मदात्री संस्कृत और प्राकृत भाषा है। मुसलमानों के आगमन से पूर्व प्रायः भारत के समस्त प्रदेशों में संस्कृत और प्राकृत का प्रचार अधिक होने से समस्त साहित्य और धर्म ग्रंथ संस्कृत और प्राकृत में निर्माण किये जाते थे। वैदिक और बौद्ध ग्रंथ बहुधा संस्कृत में लिखे जाते थे, और जैन ग्रंथों की रचना प्रायः प्राकृत में और उनकी टीका, विवृत्ति आदि की रचना संस्कृत में होती थी। परन्तु साहित्य के अंगभूत नाटक ग्रंथों में दोनों भाषाएँ समान रूप से दृष्टिगोचर होती हैं। इन दोनों भाषाओं के अतिरिक्त तीसरी प्राचीन देशी भाषा थी, जो सदा बोलचाल में आती थी। वह भाषा मथुरा आदि के प्राचीन शिला-लेखों में देखने में आती है। संस्कृत और प्राकृत के शब्द बिगड़ने और प्राचीन देशी भाषा के शब्द मिश्रित होने से जो भाषा बनी, वही अपभ्रंश भाषा कही जाने लगी। उस अपभ्रंश भाषा का उदाहरण हेमचन्द्राचार्य ने, जो अणहिलवाड़ा के चालुक्य राजा सिद्धराज जयसिंहदेव और कुमारपाल के समय में थे, अपने व्याकरण में यह दिया है—

ढोला मइ तुहुं वारिया, मा कुरु दीहा माणु।
निद्दए गमिही रत्तड़ी, दडवड़ होइ विहाणु" ॥

पुरोहित हरिनारायण का जन्म जयपुर राज्य के एक उच्च पारीक कुल में सं० १९२१ में हुआ था। इनके पिता का नाम मन्नालाल, पितामह का नानूलाल और प्रपितामह का अभयराम था। ये सभी बड़े परोपकारी, स्वामिभक्त तथा धर्मात्मा पुरुष हुए हैं। इनके बनवाये हुए कई मंदिर आदि आज भी जयपुर में विद्यमान हैं।

हरिनारायण

पुरोहितजी की शिक्षा का आरंभ पहले पहल घर ही पर हुआ और जब हिन्दी अच्छी तरह से पढ़ना-लिखना सीख गये तब उन दिनों की पद्धति के

भाषा के विषय में पुरोहितजी बड़े उदार विचारों के लेखक थे। अपने विचारों को ठीक तरह से व्यक्त करने के लिए जो शब्द इनको उपयुक्त प्रतीत होता उसका निःशंक होकर प्रयोग करते थे। शब्द चाहे हिंदी का होता चाहे अरबी-फारसी का और चाहे राजस्थानी का। फिर भी संस्कृत शब्दों की ओर इनका झुकाव विशेष रहता था यह कहना अयथार्थ न होगा। इनकी भाषा बहुत आलंकारिक, वर्णन शैली सरस तथा विचार-व्यंजना साहित्यिक होती थी और बड़ी भावुकता एवं स्पष्टता के साथ अपने विषय का प्रतिपादन करते थे। देखिए—

"इसमें सन्देह नहीं कि नागरीदासजी की कविता में कुछ प्रौढ़ता और शब्दों तथा भावों की जड़ाई भी प्रतीत होती है। यह ब्रजनिधिजी की कविता उक्त सब गुणों को अपने ढंग पर धारण करती हुई स्फीत, निरामय और शुद्ध स्नात भावों को रसीले-चटकीले-नुकीलेपन में सीधा-सादा रूप प्रदान करती है। परन्तु ब्रजनिधिजी के भावों का अनूठापन हमें कुछ बढ़कर जँचता है। दोनों कवियों में बहुत दृढ़मूल भावुकता, भक्ति की अनन्यता, मनोभावों की सत्यता और गंभीरता अलौकिक है। दोनों के समान इष्ट श्री राधा-कृष्ण, वा और निकट जाने पर, श्री नागरी गुण-आगरी राधिकाजी ही हैं।"

गौरीशंकर

पंडित गौरीशंकर-हीराचंद ओझा का जन्म सिरोही राज्यान्तर्गत रोहेड़ नामक गाँव में सं० १६२० में हुआ था। ये सहस्र औदिच्य ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम हीराचंद और दादा का पीताम्बर था। इनके पूर्वज मेवाड़ के रहनेवाले थे। किन्तु लगभग ३०० वर्ष से वे सिरोही में जाकर बस गये थे। पंडितजी के पिता एक विद्यानुरागी तथा कर्मनिष्ठ व्यक्ति थे और अपने तीन पुत्रों में इन्हें सब से होनहार एवं चतुर समझते थे। इसलिए अपनी आर्थिक स्थिति खराब होते हुए भी उन्होंने इन्हें ऊँची शिक्षा दिलाने का दृढ़ निश्चय कर लिया और हिन्दी, संस्कृत, गणित आदि की, जितनी भी शिक्षा इनके गाँव में मिल सकती थी उतनी प्राप्त कर लेने पर इनके बड़े भाई नंदराम के साथ इन्हें बम्बई भेज दिया। अर्थ संकट और नाना प्रकार की कठिनाइयों का सामना करते हुए सं० १६४२ में पंडितजी ने मैट्रिक्युलेशन की परीक्षा पास की और बाद में विल्सन कॉलेज में भर्ती हुए। पर शारीरिक अस्वस्थता के कारण इंटरमीडियेट की परीक्षा में न बैठ सके और अपने गाँव रोहेड़ा में चले आये।

बबई मे पडितजी को अपनी मानसिक शक्तियों को विकसित करने का अच्छा अवसर मिला। स्कूल तथा कॉलेज मे जो पाठ्य पुस्तकें नियत थीं, उनके सिवा इन्होंने ग्रीस तथा रोम के इतिहास और पुरातत्व सबधी बहुत से ग्रन्थों का मनन किया। राजस्थान के इतिहास की ओर इनका झुकाव कर्नल टॉड के अमर ग्रन्थ 'ऐनाल्स एण्ड एण्टिक्विटीज आव् राजस्थान, के पढ़ने से हुआ। अपना ऐतिहासिक ज्ञान बढाने के लिए इन्होंने राजस्थान में भ्रमण करना निश्चित किया और सब से पहले उदयपुर आये। जिस समय ये उदयपुर पहुँचे उस समय यहाँ कविराजा श्यामलदास की अध्यक्षता में 'वीरविनोद' नामक एक बहुत बडा इतिहास- ग्रथ लिखा जा रहा था। पडितजी जब कविराजा मे मिले तब वे इनकी इतिहास विषयक जानकारी एव धारणा-शक्ति से बहुत प्रभावित हुए और इन्हे पहले अपना सहायक मत्री तथा बाद में प्रधान मत्री नियुक्त किया। तदनतर ये उदयपुर म्यूजियम के अध्यक्ष नियुक्त हुए। स० १६६५ मे ये राजपूताना म्यूजियम, अजमेर, के क्यूरेटर बनाये गए। अजमेर में रहकर इन्होंने इतिहास के शोध का बहुत काम किया जिससे स० १६७१ मे इनको अग्रेज सरकार की ओर से'रायबहादुर, की और स० १६८५ मे'महामहोपाध्याय'की उपाधि मिली। स० १६६५ मे जब इनकी लिखी 'प्राचीन लिपि माला' का दूसरा सस्करण निकला तब इनको हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन,प्रयाग,की ओर से ' मगलाप्रसाद पारितोषिक' दिया गया। हिन्दुस्तानी एकडेमी, प्रयाग के तत्वावधान मे'मध्यकालीन भारतीय सस्कृति'पर तीन व्याख्यान भी इन्होने दिये थे जो प्रकाशित हो चुके हैं। इसके सिवा हिन्दू विश्वविद्यालय ने इनको 'डी० लिट्' की उपाधि से और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने'साहित्य-वाचस्पति'की उपाधि से विभूषित किया था। हिंदी साहित्य सम्मेलन ने इनके सम्मानार्थ 'ओझा अभिनन्दन-ग्रन्थ' भी निकाला था। ये नागरी प्रचारिणी सभा के सपादक और साहित्य सम्मेलन के प्रधान भी रहे थे। इनका देहान्त स० २००४ मे हुआ।

पडितजी इतिहास के धुरधर विद्वान थे। विशेषकर राजस्थान के इतिहास का इन्हे असाधारण ज्ञान था और उस पर अथॉरिटी समझे जाते थे। हमारे देश में ऐसे विद्वानों की बहुत कमी है जो इतिहासकार होने के साथ-साथ पुरातत्वज्ञ और मुद्रा-विज्ञानवेत्ता भी हों। परन्तु पडितजी मे ये तीनों बाते एक साथ पाई जाती थीं। इसलिए इनके इतिहास-ग्रन्थ छिछले नहीं, बल्कि प्रामाणिकता और गभीरता लिए हुए हैं। ये प्राचीन लिपि-ज्ञान-विशेषज्ञ भी थे। इनका "प्राचीन लिपि माला" नामक ग्रन्थ अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति की वस्तु है।

ओझाजी को हिन्दी, सस्कृत, पाली आदि बहुत-सी भारतीय भाषाओं का असाधारण ज्ञान था और अग्रेजी भी बहुत अच्छी लिखते थे। परन्तु हिन्दी के प्रति प्रेम विशेष होने से इन्होंने अपने सब ग्रन्थ हिन्दी ही में लिखे हैं। यह हिन्दी भाषा-भाषियों के लिए बडे गौरव की बात है। इनके द्वारा रचित तथा संपादित ग्रथों के नाम ये हैं.—

मौलिक ग्रथ

(१) प्राचीन लिपिमाला (२) भारतीय प्राचीन लिपिमाला (३) सोलंकियो का इतिहास (४) सिरोही राज्य का इतिहास (६) बापा रावल का सोने का सिक्का (६) वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप (७) मध्य कालीन भारतीय सस्कृति (८) राजपूताने का इतिहास (चार खड) (९) उदयपुर राज्य का इतिहास (दो भाग) (१०) भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की सामग्री (११) कर्नल जेम्स टॉड का जीवन चरित्र (१२) राजस्थान की ऐतिहासिक दत कथाएँ (प्रथम भाग) (१३) नागरी अक और अक्षर।

सपादित ग्रथ

(१) अशोक की धर्म लिपियाँ (२) सुलेमान सौदागर (३) प्राचीन मुद्रा (४) नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १-१२ (५) कोशोत्सव-स्मारक सग्रह (६) हिन्दी टॉड राजस्थान (पहला और दूसरा खड) (७) जयानक प्रणीत पृथ्वीराज विजय महाकाव्य सटीक (८) जयसोम रचित कर्मचन्द्र वशोत्कीर्तनक काव्यम् (९) मुहणोत नैणसी की ख्यात (दूसरा भाग) (१०) गद्य रत्न माला (११) पद्य रत्न माला।

ओझाजी के ग्रथों का अध्ययन करते समय सब से पहली बात जो स्पष्ट रूप से सामने आती है वह है इनकी विशुद्ध भाषा। ये बहुत संयत, व्यवहारिक एव प्रौढ भाषा लिखते थे और सरल तो वह इतनी होती थी कि जिस किसी को हिन्दी भाषा का थोडा-सा भी ज्ञान होता वह बहुत सुगमता से उसे समझ लेता था। जहा तक हो सकता पडितजी शुद्ध सस्कृत शब्दो से ही काम लेते थे, पर अरबी, फारसी आदि के शब्दों का प्रयोग भी इन्होंने न्यूनाधिक किया है। लेकिन सिर्फ ऐसे ही शब्दों का जो कई शताब्दियों से हिन्दी में प्रयुक्त होते आ रहे हैं और हिन्दी के माने जा चुके हैं, जैसे मजूर, अर्ज, क़ैद, खूब, किला, गरीब, फतह, खाली इत्यादि। शब्द किसी भी भाषा का होता पडितजी उसे ठीक तत्सम रूप में प्रयुक्त करने के पक्षपाती थे।

यही बात राजस्थानी भाषा के शब्दों के प्रयोग में भी देखी जाती है। वैसे यदि देखा जाय तो प्रान्तीयता का प्रभाव इनकी भाषा पर बिलकुल नहीं है। पर जहाँ कहीं प्रान्तीय शब्दों का व्यवहार करना पड़ा है, उन्हें इन्होंने ठीक उसी रूप मे लिखा है, जिस रूप मे वे वास्तव मे बोले जाते हैं, जैसे राठौड, चित्तौड़, राणा, मेवाड, रावळ, मीरांबाई, खुमाण इत्यादि। राजस्थान के बहुत से तथा राजस्थान के बाहर के प्राय सभी हिन्दी-लेखक इनके स्थान पर क्रमशः राठौर, चित्तौर, राना, मेवार, रावल मीरा, खुमान आदि शब्दो का प्रयोग करते है, जो वस्तुत. अशुद्ध हैं। ये शब्द राजस्थान में इस तरह से कभी बोले ही नहीं जाते।

पडितजी की सभी रचनाओं मे धारावाहिकता का आनन्द खूब मिलता है। सामान्यत. ये बहुत छोटे २ वाक्य लिखते थे। और प्रत्येक वाक्य जजीर की कडी की तरह एक दूसरे से जुडा हुआ रहता था। पाडित्याभिमान, अस्वाभाविकता तथा व्यर्थ का वागाडबर इनके ग्रन्थों मे नहीं मिलता। इनकी दृष्टि सदैव तथ्य निरूपण की ओर रहती थी। इसलिए ये ऐसे ही शब्दो का प्रयोग करते थे जो बहुत सरल तथा प्रसगानुसार उपयुक्त होते थे। ऐतिहासिक सत्य को कायम रखते हुए यदि कहीं अवसर मिलता तो आलकारिक भाषा मे साहित्यिक छटा भी थोडी बहुत दरसा देते थे। ऐसे स्थलों पर इनके वाक्य कुछ लम्बे अवश्य हो जाते थे पर इससे वर्णन मे सजीवता आ जाती और विचार-सामग्री से लदे हुए पाठक के मस्तिष्क को बडा सहारा मिलता था जिससे ग्रथ को आगे पढ़ने का चाव बराबर बना रहता था। उदाहरण देखिये—

"राजपूत जाति के इतिहास मे यह दुर्ग एक अत्यन्त प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ असख्य राजपूत वीरो ने अपने धर्म और देश की रक्षा के लिए अनेक बार असिधारा रूपी तीर्थ मे स्नान किया, और जहाँ कई राजपूत वीरागनाओं ने सतीत्व रक्षा के निमित्त धधकती हुई जौहर की अग्नि मे कई अवसरों पर अपने प्रिय बाल बच्चों सहित प्रवेशकर जो उच्च आदर्श उपस्थित किया वह चिरस्मरणीय रहेगा। राजपूतों ही के लिए नहीं, किन्तु प्रत्येक स्वदेश-प्रेमी हिन्दू सतान के लिए क्षत्रिय रुधिर से, सिञ्ची हुई यहाँ की भूमि के रजकण भी तीर्थरेणु के तुल्य पवित्र हैं"।

और भी—

"ऐसे ही चित्तोड का महाराणा कुभा का कीर्तिस्तम्भ एव जैन स्तम्भ, आबू के नीचे की चन्द्रावती और झालरापाटन के मन्दिरो के भग्नावशेष भी अपने बनानेवालो का अनुपम शिल्पज्ञान, कौशल प्राकृतिक सौन्दर्य तथा दृश्यो का पूर्ण परिचय और आज काम में लिपिबद्ध करने की असाधारण योग्यता प्रकट करते है। इतना ही नही, किन्तु ये भव्य प्रासाद परम तपस्वी की भाति खडे रहकर सूर्य का तीक्ष्ण ताप, पवन का प्रचन्ड वेग और पावस की मूसलाधार वृष्टिया को सहते हुए आज भी अपना मस्तक ऊँचा किये, अटल रूप मे ध्यानावस्थित खडे, दर्शको की बुद्धि को चकित और थकित कर देते हैं"।

ये पारीक ब्राह्मण थे। इनका जन्म स० १९६० मे हुआ था। इनके पिता का नाम उदयलाल था। इन्होंने हिन्दू विश्व विद्यालय काशी से हिंदी-अंग्रेजी मे एम० ए० किया था। ये बिडला कालेज, पिलाणी, के वॉइस प्रिंसिपल तथा हिंदी-अंग्रेजी के प्रोफेसर थे। इनका देहान्त स० १९९६ मे हुआ था।

सूर्य्यकरण

पारीकजी बडे उत्साही साहित्य-सेवी एव हिन्दी-राजस्थानी के समर्थ विद्वान थे और बडी लगन के साथ नूतन साहित्य का निर्माण और प्राचीन साहित्य का सग्रह, सशोधन एव सपादन कर रहे थे। राजस्थान के आधुनिक काल के विद्वानो मे ये पहले व्यक्ति थे जिन्होंने अपनी भाषा और साहित्य से उदासीन राजस्थान-वासियो का ध्यान अपनी मातृभाषा की ओर आकृष्ट किया और उसकी साहित्यिक समृद्धि एव विशेषताओं को उनके सामने रखा। उनका यह प्रयत्न एक ऐतिहासिक घटना है जिसे कभी भुलाया नहीं जा सकता।

इन्होंने १५-२० उच्च कोटि के साहित्यिक लेख लिखे और तेरह ग्रन्थो का निर्माण व सपादन किया जिनके नाम ये हैं—

(१) कानन कुसुमाजली (२) मेघमाला (३) ज्योत्स्ना (४) गद्य गीतिका (५) बोलावण (६) रति रानी (७) मित्रो के पत्र (८) वेलि क्रिसन रुकमणी री (९) ढोला मारू रा दूहा (१०) जटमल ग्रन्थावली (११) छन्द राव जैतसी रौ (१२) राजस्थानी वाता और (१३) राजस्थान के लोकगीत।

पारीकजी सहृदय साहित्यकार और सूक्ष्मदर्शी समालोचक थे। ये बहुत प्रौढ़, परिमार्जित एव मधुर भाषा लिखते थे और इस बात को खूब जानते

थे कि किसी तथ्य को खाली लिख देना ही साहित्य नही है जब तक कि उसके लिखने के ढग मे कुछ और कुछ विशेषता या अनूठापन न हो इसलिए जिस बात को भी वे लिखते उसे ऐसे हृदयग्राही एव रमणीय ढग से लिखते थे कि उनके विचारो से सहमत न होते हुए भी पाठक के दिल पर उनकी छाप बैठ जाती थी। इनकी लेखन-शैली स्वर्गीय पडित रामचन्द्र शुक्ल की शैली से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। वही बल, वैसी ही गहराई, उतना ही सौष्ठव इनके गद्य मे भी पाया जाता है। बल्कि भाषा-प्रवाह इनमें उनसे भी अधिक मिलता है। उदाहरण—

"भारतवर्ष मे भले दिनों का सूत्रपात हो रहा है। चारो ओर से आशा का नव प्रभात झलकने लगा है। इस नवयुग के प्रकाश मे हमारे भाग्य विधायको का ध्यान सब से पहले शिक्षा सुधार की ओर जाना स्वाभाविक है। तो क्या हम आशा न करे कि निकट भविष्य में हमारे विद्यालय इस नवप्रभात की सुवर्णमयी कोमल किरणों के प्रकाश से देदीप्यमान वे सरस्वती के मन्दिर बनेगे, जिनमे प्रवेश करते हुए मातृ-भाषा की मधुर मुसकान हमारा दुलार करेगी, अपनी सस्कृति की द्वार-शिला पर मस्तक टेकते हुए हमारा हृदय श्रद्धा से भरा होगा, और सभ्य आचरण और उच्च विचारो के अन्तः प्रकाश में आत्म-विश्वास, देश-प्रेम, निर्भीकता, परमेश-भक्ति, उदारता, स्वाभिमान और विश्व-मैत्री का सपूर्ण राग हमारे कठ से ध्वनित होता होगा? उस दिन जब हम मातृ-मदिर की घन्टी को विनय-सपन्न हाथों से छू देंगे, तब उसके झकार को सारा ससार सम्मान पूर्वक कान लगाकर सुनेगा और माता के चरणों में अर्पित की हुई हमारी अजलि के पुष्पों की महक दिगत के रस लोभी भ्रमरों को उस ओर श्रद्धा पूर्वक आकृष्ट करेगी"।

जिन विजय

मुनिजिन विजय का जन्म स० १९४४ में मेवाड राज्य के रुपाहेली ठिकाने के एक पँवार क्षत्रिय परिवार में हुआ। इनके पिता का नाम वृद्धिसिंह और माता का राजकुवर था। देवीहस नाम के एक जैन यतीश्वर इनके गुरु थे जिन्होंने इनको बचपन में विद्याभ्यास कराया और जैन धर्म की शिक्षा-दीक्षा प्रदान की। मुनिजी का देश-विदेश की अनेक प्रतिष्ठित साहित्यिक सस्थाओं से सबध रहा है और इस समय भारतीय विद्या भवन, बम्बई, के डाइरेक्टर हैं।

जिन विजयजी आदर्शचेता पुरुष और साहित्यिक तपस्वी हैं। इनका सारा जीवन साहित्य-सेवा मे व्यतीत हुआ है और आज-कल भी दिन भर साहित्याध्ययन और साहित्यान्वेषण में लगे रहते हैं। ये बहुभाषा ज्ञानी हैं। संस्कृत, प्राकृत, पाली, अपभ्रंश, गुजराती, राजस्थानी, हिन्दी आदि अनेक भाषाओं का इन्हे भारी ज्ञान है। इसके सिवा इतिहास, पुरातत्व आदि विषयो पर भी प्रमाण माने जाते हैं। इन्होने कोई ५० ग्रथो का सपादन, सकलन व निर्माण किया है जिनका देश-विदेश के विद्वानो में बडा आदर है।

मुनिजी हिंदी के अनन्य प्रेमी हैं। यथासभव हिंदी ही में लिखते हैं। ये संस्कृतमय भाषा लिखते हैं जो बहुत परिष्कृत और कर्ण मधुर होती है। उर्दू फारसी आदि विदेशी भाषाओं के शब्दो के प्रयोग के पक्ष में ये नहीं हैं। इनकी भाषा मे कहीं-कहीं गुजराती का रग भी देखने मे आता है। नमूना लीजिए—

"उसके सपादको को रासो की प्राचीन भाषा का कुछ विशेष ज्ञान रहा हो ऐसा प्रतीत नहीं हुआ। बिना प्राकृत, अपभ्रंश और तद्भव पुरातन देश्य भाषा का गहरा ज्ञान रखते हुए इस रासोका सशोधन-सपादन करना मानों इसके भ्रष्ट कलेवर को और भी अधिक भ्रष्ट करना है। इस ग्रथ में हमें कई गाथाएँ दृष्टिगोचर हुई जो बहुत प्राचीन होकर शुद्ध प्राकृत में बनी हुई हैं, लेकिन वे इसमें इस प्रकार भ्रष्टाकार मे छपी हुई हैं जिससे शायद ही किसी विद्वान् को उसके प्राचीन होने की या शुद्ध प्राकृतमय होने की कल्पना हो सके। यही दशा शुद्ध संस्कृत श्लोको की भी है। सपादक महाशयो ने, न तो भिन्न-भिन्न प्रतियो में प्राप्त पाठान्तरो को चुनने में किसी प्रकार की सावधानता रखी है, न खरे-खोटे पाठो का पृथक्करण करने की चिन्ता की है, न कोई शब्दो या पदो का व्यवस्थित सयोजन या विश्लेषण किया गया है न विभक्ति अथवा प्रत्यय का कोई नियम ध्यान में रखा गया है। सिर्फ 'यादृशं पुस्तके दृष्टं तादृशं लिखितं मया।' वाली उक्ति का अनुसरण किया गया मालूम देता है।

झाबरमल

पडित झाबरमल शर्मा का जन्म स० १६४५ में जयपुर राज्यान्तर्गत खेतड़ी ठिकाने के जसरापुर नामक गॉव में हुआ। इनके पिता का नाम रामदयाल था। ये संस्कृत, हिंदी, राजस्थानी आदि भाषाओं के प्रौढ विद्वान, प्रतिष्ठित इतिहासकार एव गद्य-पद्य लेखक हैं और कई वर्षों से साहित्य-सेवा कर रहे हैं। 'भारत,' 'ज्ञानोदय,' मारवाड़ी,' 'कलकत्ता-समाचार' और 'हिंदू ससार' नामक पत्रों के सपादक भी ये

रहे हैं। इन्होंने पद्रह से अधिक ग्रथो का निर्माण व सपादन किया है जिनमे से नीचे लिखे ग्यारह ग्रन्थ छप चुके हैं—

(१) भारतीय गोवन (२) अरविंद चरित्र (३) साँभर का इतिहास (४) खेतडी का इतिहास (५) खेतडी नरेश (६) विवेकानद (७) आदर्श नरेश (८) भारतीय देश रत्नो की कारावास कहानी (९) केसरीसिंह-समर (१०) लिमिटेड कपनियाँ, और (११) तिलक गाथा।

पडितजी एक अनुभवी साहित्यकार और सिद्धहस्त लेखक हैं। ये सस्कृत मय हिंदी लिखते हैं जो विषय- वस्तु का एकान्त अनुसरण करती है। इनकी लेखन-शैली गभीर, स्वाभाविक और चित्ताकर्षक होती है। इनके इतिहास विषयक ग्रन्थो के पढने मे पाठक को उपन्यास का सा आनन्द आता है और वह सरलता से इतिहास की वस्तु को हृदयगम करता हुआ चलता है। इनकी भाषा का नमूना लीजिए—

"इसका परिणाम था अवसाद और उस अवसाद ने उनका पिड अब तक भी नहीं छोडा है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि, अवसाद कर्तव्य का शत्रु है। जिस जाति अथवा व्यक्ति के यहाँ अवसाद का स्थान मिला कि, वह अपने उच्च कर्तव्यो की ओर से मुँह फेर लेता है। राजस्थान के क्षत्रियो मे जो विलासिता और मद्य-पानादि दोष अधिक मात्रा मे दिखलाई दे रहे हैं, उनके मूल मे वही अवसाद काम कर रहा है। उस अवसाद-ग्रस्त क्षत्रिय जाति मे अजीतसिंह के समान कर्तव्य तत्पर तेजस्वी पुरुष का जन्म ग्रहण करना निस्सन्देह ईश्वर की कृपा का फल था।"

विश्वेश्वरनाथ

इनका जन्म स० १९४७ मे जोधपुर नगर मे हुआ। इनके पिता का नाम मुकुन्द मुरारि था जो काश्मीर की राजधानी श्रीनगर से आकर जोधपुर मे बस गये थे। स० १९६६ मे पडितजी ने सस्कृत-साहित्य की आचार्य परीक्षा पास की और एक वर्ष बाद जोधपुर के इतिहास-कार्यालय मे लेखक नियुक्त हुए। वहाँ रहकर इन्होने प्राचीन लिपियो, मुद्राओं, मूर्तियो इत्यादि का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया और उत्तरोत्तर उन्नति करते हुए इतिहास-कार्यालय के अध्यक्ष बन गए। इस समय इनके अधिकार मे उक्त कार्यालय के अतिरिक्त सरदार म्यूज़ियम, पुस्तक प्रकाश आदि पाच महकमे और भी हैं।

पडितजी इतिहास के प्रख्यात विद्वान और सस्कृत, हिन्दी-अग्रेजी आदि भाषाओ के अच्छे जानकार है। इन्होने 'भारत के प्राचीन राजवश,' 'राजा-

भोज,' 'राष्ट्रकूटों का इतिहास,' तथा 'मारवाड का इतिहास' नामक चार ग्रन्थ हिन्दी में और एक ग्रन्थ अंग्रेजी में लिखा है। इनके अलावा इन्होंने फुटकर लेख भी कई लिखे हैं। और शैव-सुधाकर का भाषानुवाद तथा महाराजा जसवतसिंह कृत वेदान्त विषयक पाच ग्रन्थों एव महाराजा मानसिंह कृत कर्ण-विलास का सपादन भी किया है।

रेउजी सीधी-सादी बोलचाल की हिन्दी लिखते हैं। इनकी भाषा में न तो सस्कृत शब्दों की भरमार रहती है और न उर्दू-फारसी के शब्दों की। अपने विषय को ये बहुत विश्वासजनक ढग से प्रस्तुत करते हैं और प्राचीन युद्ध-घटनाओं के वर्णन इस तरह करते हैं कि वे आखों के सामने सजीव और यथार्थ से लगते हैं। विचारों को सरस-तर्कयुक्त शैली में उपस्थित करने में ये निपुण है। उदाहरण—

"अजीतसिंह के अपने पुत्र बखतसिंह द्वारा मारे जाने का तो किसी ने भी विरोध नहीं किया है। परन्तु इसके कारण के विषय में मत-भेद हैं। टॉड को सूचना देनेवालों ने उसे बतलाया कि अपने बडे भाई अभयसिंह के इशारे से ही बखतसिंह ने यह कार्य किया था और अभयसिंह उस समय देहली में होने से बादशाह के दबाव में था। इस हत्या के करनेवाले के लिए ५६५ गावों के सहित नागोर का परगना इनाम में रक्खा गया था। कहते हैं कि अभयसिंह की इस पाशविक प्रवृति को उत्तजित करने में कृतघ्न सैय्यद-भ्राताओं का भी हाथ था, क्योंकि वे फर्रुखसीयर को गद्दी से उतारने के समय अजीतसिंह द्वारा किये गये विरोध का बदला लेना चाहते थे। अब इस विषय मे कुछ बातों पर साधारणतया विचार करना आवश्यक है। क्या ऊपर लिखा पारितोषिक बखतसिंह को इस हत्या के लिए उत्तेजित करने को पर्याप्त था? सभव है कि वह अधिक चालाक न हो, परन्तु वह इतना बेवकूफ भी न था कि जो ऐसी बदनामी को, अपने फायदे को छोडकर केवल अपने भाई के फायदे के लिए अथवा उस जागीर के लिए, जो कि राजपूतों के आम रिवाज के अनुसार उसके पिता की प्राकृतिक मृत्यु के बाद भी उसे मिल जाती, अपने सिर लेता।"

घनश्यामदास

बिडलाजी भारत के विख्यात व्यापारी है। इनके सत्कार्यों की ख्याति भारत भर मे है। इनका जन्म स० १६४८ मे राजा बलदेवदास बिडला के घर पिलाणी मे हुआ। ये राजनीति और अर्थशास्त्र के विशेषज्ञ हैं। साथ ही साहित्यकार, अध्येता और विचारक भी हैं। राजस्थानी भाषा, साहित्य एव सस्कृति के

ये बडे प्रेमी तथा पृष्ठ-पोषक हैं और कई वर्षों से राजस्थान के प्राचीन साहित्य का सग्रह-सशोधन करवा रहे हैं। इन्होंने सात ग्रन्थ लिखे हैं जिनका हिन्दी भाषा-भाषिया मे बडा आदर है। ये ग्रथ खडी बोली मे हैं। नाम ये हैं—

(१) बापू (२) डायरी के पन्ने (३) रुपये की कहानी (४) बिखरे विचार (५) ध्रुवोपाख्यान (६) श्री जमनालालजी और (७) कर्जदार से साहूकार।

बिडलाजी बहुत सीधी-सादी भाषा लिखते हैं। इनकी अपनी शैली है और अपना दृष्टिकोण। राजनीति, धर्म, शिक्षा आदि विषयों पर इन्होंने गभीरतापूर्वक विचार किया है और इन पर इनकी अपनी कुछ निश्चित धारणाएँ हैं जिनको ये बडी दृढता, सचाई और मौलिक विधि से सामने रखते हैं। इनकी रचनाओं मे भावुकता की अपेक्षा बुद्धि-तत्व अधिक पाया जाता है। गाधीवाद की भी हलकी-सी झाँई देख पडती है। इनके गद्य का थोडा-सा नमूना यहाँ दिया जाता है। यह इनकी 'बापू' नामक पुस्तक से लिया गया है—

"अहिंसा को राजनीति में गाधीजी ने जान-बूझकर प्रविष्ट किया है, क्योंकि राजनीति मे अधर्म विहित है, ऐसा मानकर हम आत्मवचना करते थे। हम उलझन मे इसलिए पड गये हैं कि जहाँ हम गदगी का पोषण करना चाहते थे, वहाँ गाधीजी ने हमे पानी और साबुन दिया है। हम हैरान हैं कि पानी और साबुन से हमारी गन्दगी की रक्षा कैसे हो सकती है। और यह हैरानी सच्ची है, क्योंकि गन्दगी की रक्षा किसी हालत मे न होगी। बस, यही उलझन है, यही पहेली है और इसी ज्ञान मे शका का समाधान है।"

हरिभाऊ उपाध्याय का जन्म स० १६४६ मे हुआ। ये राजस्थान के प्रमुख राजनैतिक कार्यकर्ता और ख्यात-नामा लेखक हैं। इन्होंने अठारह ग्रथ लिखे हैं जिनमे से कुछ मराठी, गुजराती, अग्रेजी और सस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद और कुछ मौलिक हैं। इनके नाम ये हैं—

हरिभाऊ

(१) मौलिकः—स्वतन्त्रता की ओर, बुदबुद, स्वगत, युगधर्म (जब्त), हिन्दू-मुसलमान, मनन, अहिंसा के अनुभव।

(२) अनुवाद.—सम्राट अशोक (म०), रागिनी (म०), काबूर (म०) मेरे जेल के अनुभव (गु०), आत्मकथा (गु०), काग्रेस का इतिहास

(अ०), मेरी कहानी (अ०), बोलशेविज्म (म०), जीवन-शोधन (गु०), हिन्दी गीता (म०), और कृतार्थ जीवन (म०)।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त हरिभाऊजी ने फुटकर लेख-कविताएँ भी सैकड़ो की सख्या में लिखी हैं और 'मालव-मयूख', 'नव जीवन,' 'त्यागभूमि,' राजस्थान' और 'जीवन साहित्य' नामक पत्रो का सपादन भी बडी योग्यता के साथ किया है।

उपाध्यायजी उच्चकोटि के साहित्यकार, आदर्शवेत्ता लोकनायक तथा गभीर विचारक हैं। इन्होंने जो कुछ भी लिखा है वह देश-हित और देशोत्थान की भावना मे प्रेरित होकर लिखा है। अत देशभक्ति से ओत-प्रोत इनकी रचनाएँ मनुष्यों को उच्च आदर्शों की ओर ले जाती और उनमे नवीन जीवन का सचार करती हैं। इनके प्रारम्भिक ग्रथ विशुद्ध हिंदी में हैं। परन्तु इधर कुछ वर्षों से ये हिन्दुस्तानी लिखने लग गये हैं। इनकी भापा सरल और विचार-वैभव मे लदी हुई होती है। व्यर्थ का वागाडबर और पाडित्य प्रदर्शन इनमें कहीं दिखाई नहीं देता। कठिन विषय को भी इस तरह सम-झाते हैं कि उससे पाठक के मन में अरुचि पैदा नहीं होती, उसका ध्यान बराबर विषय की ओर बना रहता है। इनके ग्रन्थों को पढते वक्त हमें यह नहीं मालूम होता कि हम कोई ग्रन्थ पढ रहे हैं, बल्कि ऐसा भास होता है कि उपाध्यायजी के पास बैठे हुए उनसे बातचीत कर रहे हैं। उदाहरण-

"हिंदी-समाज की वर्तमान आवश्यकता क्या है? शृगार-विलास या शूर-वीरता! निस्सन्देह शूर-वीरता। इसमें दो मत हो नहीं सकते। फिर हिंदी-साहित्य में शृगार-विलास प्रधान साहित्य की सृष्टि क्यों हो रही है? पुस्तकों के मुख-पृष्ठ पर, मासिक पत्रों के भीतर-बाहर सब जगह कामिनियों के चित्र हम क्यों देखते हैं? हमारा समाज क्षय-रोग मे दिन-दिन क्षीण हो रहा है। हम उसकी सेवा-शुश्रषा के लिए रभा और मेनकाओं को नियुक्त करते हैं और इतना ही नहीं हम उन्हे हाव-भाव-कटाक्षों के प्रयोग के लिए भी स्वाधीनता दे देते हैं, मानों हमारे इतिहास में माताओं, देवियों और साध्वियों की कमी है, जो हमें नायिकाओं की सृष्टि का कार्यालय खोजना पडता है। इसका क्या कारण है? हमारा ध्यान रोगी का रोग दूर करने की तरफ उतना नहीं है, जितना रोगी को रिझाने की तरफ है। यदि हम चाहते हों कि हमे बल पौरुष की आवश्यकता है, तो हमें यह वृत्ति बद कर देनी चाहिए।"

ये भंडारी कुलोत्पन्न ओसवाल महाजन हैं। इनका जन्म सं० १९५२ में जोधपुर राज्य के जैतारण गाँव में हुआ। ये संस्कृत, हिंदी, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी आदि भाषाओं के सुज्ञाता, सहृदय विद्वान एवं प्रौढ लेखक हैं और 'श्री वेंकटेश्वर समाचार,' 'पाटलीपुत्र', 'किसान', प्रभृति पत्रों के संपादक भी रहे हैं। इन्होंने कुल मिलाकर २० ग्रंथ लिखे हैं जिनकी देश के बड़े बड़े विद्वानों और नेताओं ने प्रशंसा की है। कुछ के नाम ये हैं—

सुखसंपतिराय

भारत दर्शन, राजनीति विज्ञान, तिलक दर्शन, सुलभ कृषि-शास्त्र, स्वर्गीय जीवन, महात्मा बुद्ध, ज्योतिर्विज्ञान, विज्ञान और आविष्कार, जगत-गुरु भारतवर्ष, डा० जगदीश चंद्र बोस और उनके आविष्कार, संसार की क्रांतियाँ रवींद्र दर्शन, और भारत के देशी राज्य।

अन्तिम ग्रंथ पर इनको इंदौर दरबार की ओर से १५०००) का पुरस्कार भी मिला है। इस समय ये अंग्रेजी-हिंदी का एक वैज्ञानिक शब्द-कोष तैयार करने में संलग्न हैं। इसके तीन भाग छप भी चुके हैं।

भंडारी जी संस्कृत-गर्भित भाषा लिखते हैं जो मँजी हुई और श्रुति मधुर होती है। ये जो कुछ कहते हैं, प्रत्यक्ष रूप से और सीधे-सादे शब्दों में कहते हैं। इनकी भाषा में मुहावरों की प्रधानता रहती है और छितरी-बितरी विषय-सामग्री को सुन्दर ढंग से सजाकर गूँथना खूब जानते हैं। कथ्य विषय की गहराई भी इन में पूरी पूरी पाई जाती है। उदाहरण—

"घटना बहुत साधारण है। पर हिन्दुओं की राज्य कल्पना के वास्तविक उद्देशों को बतलाने वाली है। यह घटना बतलाती है कि हिन्दुओं की राज्य कल्पना का आदर्श यह नहीं था कि राजा प्रजा को अपनी इच्छानुकूल चलावे, और देश का शासन भी अपनी व्यक्तिगत इच्छा के अनुसार करे। बल्कि वह आदर्श यह था कि राजा प्रजा का मुख्य कर्मचारी है और उसका शारीरिक सुख, आशाएँ और व्यवसाय प्रजा की भलाई के नीचे हैं। उसका कर्तव्य शासन करना है न कि अधिकार। यदि प्रजा की सेवा करने योग्य गुणों की उसमें न्यूनता हो तो उसे सिंहासन-त्याग के निमित्त हमेशा प्रस्तुत रहना चाहिये।"

जयपुर के प्रसिद्ध साहित्यकार पं० रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख' एम० ए०

का जन्म सं० १९५८ में हुआ। इनके पिता का नाम नन्दकिशोर था। ये महाराजा कॉलेज में हिंदी-विभाग के अध्यक्ष और हिंदी के

रामकृष्ण

प्रोफेसर हैं। ये हिंदी के सहृदय विद्वान, कहानी-लेखक तथा समालोचक हैं और किशोरावस्था में ही हिंदी की सेवा कर रहे हैं। इन्होंने बीस ग्रंथ लिखे हैं जिनमें से कुछ प्रकाशित और अप्रकाशित हैं। प्रकाशित ग्रंथों के नाम ये हैं—

(१) प्रसाद की नाट्यकला (२) काव्य-जिज्ञासा (३) आधुनिक हिंदी कहानियाँ (४) सुकवि समीक्षा (५) आर्य भाषा और संस्कृत (६) रचना-तत्व (७) रचना-रहस्य (८) जीवन-कण (९) गंभीर विषयों पर सरल विचार (१०) उसका प्यार (११) ह. ह. ह. और (१२) अमृत और विष।

शुक्लजी प्रौढ़ लेखनी के धनी हैं। इनकी शैली में सजीवता प्रांजलता, और अधिकार होता है। इनको सरल और कठिन दोनों तरह की भाषा लिखने का अभ्यास है। इनकी कहानियों की भाषा सरल, लेखादि की अपेक्षाकृत कठिन होती है। भाषा सरल हो अथवा कठिन वह विषय के अनुकूल चलती है और उसमें इतनी क्षमता होती है कि वह अनेक प्रकार के भाव, विचार आदि को सफलता पूर्वक व्यक्त कर सकती है। नमूना—

"मनुष्य पशु से मानव तो बना, परन्तु क्या उसकी पशुता दूर हो गई? पशु में विवेक तो शायद वैसा नहीं होता, परन्तु उसमें प्राणिता तो मनुष्य की ही भाँति है। प्राणिता का रूप केवल साँस लेना ही नहीं है, उसका तत्व रहना या जीना है। रहने में सहज संकल्प का भाव है, और संकल्प का अस्तित्व रूचि से है। पशु भी जब रहने का काम करता है तो रुचि का अनुसरण करता है। मनुष्य ने रुचि को ही विवेक से संस्कृत किया है। रूचि के अर्थ में प्रियता सन्निहित है। प्रियता की वैयक्तिकता में विवेक का संस्कार है।"

ये बीकानेर-निवासी तँवर राजपूत हैं। इनका जन्म सं० १९५९ में हुआ। ये अंग्रेजी के एम० ए० और संस्कृत, हिंदी तथा राज-

रामसिंह

स्थानी के मर्मज्ञ विद्वान हैं। इनके द्वारा रचित तथा संपादित ग्रंथों के नाम ये हैं—

(१) कानन कुसुमांजली (२) मेघमाला (३) ज्योत्सना (४) वेलि क्रिसन रुक्मणी री (५) ढोला मारू रा दूहा (६) जटमल ग्रंथावली (७) छंद राव जैतसी रो (८) राजस्थान के लोकगीत (९) गद्य गीतिका (१०) सौरभ (११) किणका और (१२) चंद्रसखी के भजन।

अन्तिम तीन ग्रथों का प्रणयन अथवा सपादन इन्होंने स्वतत्र रूप से और शेष का अपने मित्रों के साथ किया है।

ठाकुर साहब गद्य और पद्य दोनों लिखते हैं और राजस्थानी के भी सिद्धहस्त लेखक हैं। इनकी भाषा सरस, विचार-व्यजना कवित्व-पूर्ण और वर्णन-शैली स्वाभाविक होती है। शब्द-गुथन की मधुर ध्वनि द्वारा मन को मोह लेने की एक अद्भुत शक्ति जो इनमें पाई जाती है वह बहुत कम लोगों में देखने मे आती है। इनके राजस्थानी गद्य का थोडा-सा अश यहाँ दिया जाता है—

"राजस्थानी भासा मरियोडा नै जिवाया है। राजस्थानी रै प्रताप सू धड सू सिर अळगो हु ज्याणै पर भी सूरमा रणखेत मे जूझया है। राजस्थानी री प्रेरणा सू कायर भी सायर बणया है। इमी यसस्विनी मा रो दूध आपा नहीं लजासा। माता रै वासते आपा नै सरवस त्यागणो पडे तो भी पग पाछा कोनी देसा। उण री एक झाकी सू ही आपा कृतार्थ हु ज्यासा। अतीत गौरव री प्राप्ति रै साथै-साथै भविस्य भी ऊजळो बण जासी। आवो, भाई-बहना! आपा सै मिल मातृ मदिर मे प्रेम सू माता री आरती उतारा और आपणी भक्ति रै फळ सरूप जननी रा दरसण पा'र कृतार्थ बणा।"

नरोत्तमदास ये बीकानेर-निवासी जय श्री रामदासजी के पुत्र हैं। इनका जन्म स० १६६१ मे हुआ। ये हिंदी-सस्कृत दोनों मे एम० ए० हैं और इस समय डूँगर कॉलेज, बीकानेर मे हिंदी-विभाग के अध्यक्ष हैं। इन्होंने हिंदी-राजस्थानी के प्राचीन ग्रथो के सकलन-सपादन आदि का बहुत महत्वपूर्ण काम किया है। इनके १८-२० ग्रथ प्रकाशित हो चुके हैं और लगभग इतने ही अप्रकाशित पडे हैं। 'राजस्थान रा दूहा' नामक ग्र थ पर इनको हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की ओर से 'मान-सिंह पुरस्कार' भी मिला है। इनके प्रकाशित ग्रथो के नाम ये हैं—

(१) राजस्थान रा दूहा (२) राजस्थान के लोक गीत (३) राजस्थान के ग्राम्य गीत (४) ढोला मारू रा दूहा (५) राजस्थानी भाषा और साहित्य (६) मीरा मदाकिनी (७) सूर समीक्षा (८) सूर साहित्य सुधा (९) तुलसी सुधा (१०) मधु माधवी (११) सरल अलकार (१२) अलकार परिचय (१३) स्वर्ण महोत्सव पाठमाला (१४) हिंदी पद्य पारिजात (१५) हिंदी गद्य

साहित्य का इतिहास (१६) कबीरदास (१७) त्रिवेणी (१८) राजिया रा दूहा इत्यादि।

स्वामीजी संस्कृत, हिंदी, राजस्थानी आदि भाषाओं के मर्मज्ञ विद्वान, हिंदी के सुयोग्य गद्य-लेखक एवं समालोचक हैं और दिन-रात साहित्य-सृजन में लगे रहते हैं। सीधी-सादी भाषा, छोटे-छोटे वाक्य तथा सुलझी हुई विचार-व्यंजना इनकी लेखन-शैली के प्रधान गुण हैं। इनका ध्यान हमेशा विषय-स्पष्टीकरण की तरफ रहता है और इसलिए एक ही बात को प्रकारान्तर से इस तरह समझाते हैं कि वह पाठक के हृदय-पटल पर स्थायी रूप में जम जाती है। शब्दाडंबर, पांडित्याभिमान और विषय-वस्तु का अनावश्यक विस्तार इनमें नहीं मिलता। जो भी कहना होता है उसे संक्षेप में, शालीनता एवं हृदयग्राही ढंग से कहते हैं। इनकी भाषा का नमूना लीजिए—

"बात को संक्षेप में और चुभते हुए ढंग से कहने के लिए दूहा बहुत ही उपयुक्त छंद है। इसी कारण कबीर आदि संत-महात्माओं ने अपनी साखियाँ इसी छंद में कहीं। रहीम और वृन्द जैसे नीति-कवियों ने भी इसीको पसंद किया और बिहारी, मतिराम, रसनिधि आदि ने अपनी अपूर्व रस धारा भी इसीमें प्रवाहित की। इन लोगों को जो सफलता तथा लोकप्रियता प्राप्त हुई उसके विषय में कुछ कहना अनावश्यक है। राजस्थानी का अधिकांश लौकिक साहित्य इसी छंद में निर्मित हुआ है। प्राचीन काल से सैकड़ों दूहे लोगों की जबान पर चलते आए हैं, जिनका बात-बात में कहावतों की भाँति प्रयोग किया जाता है। राजस्थानी जनता का सर्वप्रिय 'माँड राग' का माधुर्य्य और आकर्षण भी उसके दोहों पर निर्भर है। प्राचीन लौकिक वीरों की कीर्ति इन्हीं छोटे-छोटे दूहों की बदौलत नाम-शेष हो जाने से बच गई है। आज भी प्राचीन ढंग के राजस्थानी कहानी कहनेवाले लोग कहानियों के बीच बीच में भावपूर्ण स्थलों पर दूहों का प्रयोग करके श्रोता लोगों को मुग्ध करते हैं।"

रघुबीरसिंह

सीतामऊ का राजघराना अपनी साहित्य-सेवा के लिए प्रसिद्ध है। महाराज कुमार डा० रघुबीरसिंह भी इसी घराने के उज्ज्वल रत्न हैं। ये राठौड नरेश श्रीमान् सर रामसिंहजी बहादुर के युवराज हैं। इनका जन्म सं० १९६५ में हुआ।

डा० साहब भारत के गण्यमान्य इतिहासकार और सिद्धहस्त लेखक हैं। ये हिंदी और अंग्रेजी दोनों में लिखते हैं। इन्होंने बिखरे फूल, सप्तदीप, शेष

स्मृतियाँ, पूर्व मध्यकालीन भारत, एव मालवा मे युगान्तर नामक पाँच ग्रथ और अनेक फुटकर लेख लिखे हैं जिनका विद्वत्ससार मे बडा मान है। इस समय ये मालवे का इतिहास लिखने मे सलग्न हैं।

उपरोक्त ग्रन्थो मे 'मालवा मे युगान्तर' इनकी सर्वोत्तम रचना है। यह इनके 'मालवा इन ट्रांजिशन' नामक अग्रेजी ग्रथ, जिस पर इन्हे आगरा विश्व विद्यालय की ओर से डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त हुई है, का हिन्दी रूपान्तर है। ग्रथ बडी खोज एव मेहनत के बाद लिखा गया है और लेखक की असाधारण शोध बुद्धि का परिचायक है। इसकी भूमिका भारत के सुप्रसिद्ध इतिहास-लेखक सर जदुनाथ सरकार ने लिखी है।

महाराज कुमार साहब विशुद्ध हिंदी के पक्षपाती हैं। अत उर्दू-फारसी के शब्दो का प्रयोग इनकी भाषा मे कम देखने मे आता है। यथासभव सस्कृत शब्दो ही से काम लेते हैं। ये हिन्दी-साहित्य के उन इने-गिने विद्वानो मे स हैं जिन्होने इतिहास और राजनीति की भूमि पर उतरकर भी अपनी कलात्मक विदग्धता का अत्यत अभिराम आकलन किया है। डा० साहब गद्य लिखते हैं और अपने को गद्यकार ही शायद समझते हैं। परन्तु कवि भी ये पूरे हैं यह बात इनकी 'शेष स्मृतियाँ' से साफ झलकती है जिसमे ऐतिहासिक सत्य और कवि-कल्पना का सुन्दर योग हुआ है। नीचे हम इनके गद्य का थोड़ा-सा अश उद्धृत करते हैं—

"वैभव से विहीन सीकरी के वे सुन्दर आश्चर्यजनक खडहर मनुष्य की विलास-वासना और वैभव-लिप्सा को देखकर आज भी बीभत्स अट्टहास करते हैं। अपनी दशा को देखकर सुध आती है उन्हे उन करोड़ो मनुष्यो की, जिनका हृदय, जिनकी भावनाएँ, शासको, धनिको तथा विलासियो की कामनाएँ पूर्ण करने के लिए निर्दयता के साथ कुचली गई थी। आज भी उन भव्य खडहरो मे उन पीडितो का रुदन सुनाई देता।है। अपने गौरवपूर्ण भूतकाल को याद कर वे निर्जीव पत्थर भी रो पडते हैं। अपने उस बाल वैधव्य को स्मरण कर वह परित्यक्ता नगरी उसासे भरती है। विलास-वासना, अतृप्त कामना तथा राजमद के विष की बुझाई हुई ये उसासें इतनी विषैली हैं कि उनको सहन करना कठिन है। इन्ही आहो की गरमी तथा विष से मुगल साम्राज्य भस्मीभूत हो गया। अपनी दुर्दशा पर ढलके हुए आँसुओ के उस तप्त प्रवाह मे रहे-सहे भस्मावशेष भी बह गए।"

प० जनार्दनराय नागर एम० ए० का जन्म स० १९६५ में उदयपुर में हुआ। इनके पिता का नाम प्राणलाल था। ये हिन्दी के परम प्रेमी, अच्छे साहित्यकार एव सार्वजनिक कार्यकर्ता हैं और भाषण-कला में भी निपुण हैं। मेवाड में हिंदी की उन्नति, हिंदी के प्रचार और हिंदी की गौरव-वृद्धि के लिए जो अथक उद्योग इन्होंने किया है वह एक इतिहास की बात है। इन्होंने अनेक गद्य-काव्य और कहानियाँ लिखी हैं जिनकी स्वर्गीय प्रेमचद ने बहुत बड़ाई की है। साहित्य, राजनीति शिक्षण-कला आदि विषयों पर फुटकर लेख भी इन्होंने सैकड़ो लिखे हैं जिनसे इनकी अध्ययनशीलता और सूक्ष्म बुद्धि का परिचय मिलता है। इनके रचे ग्रथो के नाम ये हैं—

जनार्दनराय

(१) ध्रुवतारा (उपन्यास), (२) तिरगा झडा (उपन्यास), (३) आधी-रात (नाटक), (४) पतित का स्वर्ग (नाटक), (५) जीवन का सत्य (नाटक) और (६) विष का प्याला (नाटक)।

नागरजी की हिन्दी के प्रति जो सहज, स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक प्रेरणा है उसका निदर्शन इनके लेख, इनकी कहानियां, इनके गद्य काव्य आदि सभी में मिलता है। ये सस्कृत-प्रधान हिदी के पक्षपाती हैं पर साथ ही अग्रेजी व अर्बी-फारसी के जन-प्रचलित शब्दों का बहिष्कार करने के पक्ष मे भी नहीं हैं। इनकी भाषा विषय के अनुसार चलती है। यदि विषय गभीर हुआ तो भाषा कुछ कठिन और साधारण हुआ तो सरल रहती है। इनके गद्य का थोडा-सा अश हम नीचे उद्धृत करते हैं जो इनकी भाषा-शैली का अच्छा प्रतिनिधित्व करता है—

"अभी गये सप्ताह देशी नरेशो की कॉन्फ्रेस मे भाषण देते हुए भारत के अन्तिम वायसराय लॉर्ड माउन्टबेटन ने कहा था कि प्रत्येक रियासत को किसी भी विधान परिषद् मे शामिल हो जाना चाहिये। इस भाषण की आलोचना करते हुए महात्मा गॉधी ने कहा था कि वायसराय ने राजाओं को तो उपदेश दिया है और उनकी सुरक्षा का आश्वासन भी दे दिया है। पर प्रजा के सम्बन्ध मे कुछ भी नहीं कहा इसका अफसोस अवश्य है। गॉधीजी ने इस विषय में जो इशारा किया वह कम महत्व का नहीं है। इसका मतलब है कि वायसराय ने जनता की मॉग की ओर कोई ध्यान नहीं दिया है। अच्छा होता वायसराय अपने भाषण मे उत्तरदायी शासन स्थापित करने के

लिये भी राजाओं से कहते। जनता के हृदय में अब राजा महाराजाओं की ज्यादतियो ने असन्तोष पैदा कर दिया है। इसलिये भी यह आवश्यक था कि वायसराय राजाओ के साथ प्रजा के सम्बन्ध का दृढ और सुन्दर बनाने के लिये कुछ वाक्य कह देते। पर अंग्रेजों की तो सदा यह नीति रही है कि फूट डालो और स्वार्थ पूरा करो, फिर उनसे हम यह कैसे आशा कर सकते हैं? अंग्रेज जा ता रहे हैं पर भारत में अपने लिये स्थान जरूर बनाये रखना चाहते हैं। इसलिये इस तरह के कूटनीति-पूर्ण भाषण बार-बार दे दिया करते हैं, अलग-अलग पार्टियों से अलग-अलग बातें करते हैं, अलग अलग समझौते करते हैं। काश, जाते जाते भी यदि अंग्रेज हिंदुस्तानियों के दिल में विश्वास पैदा कर देते।"

अगरचन्द

ये बीकानेर के प्रसिद्ध सेठ स्वर्गीय शकरदानजी नाहटा के पुत्र हैं। इनका जन्म स० १९६७ मे हुआ। ये जैन मतावलबी और जैन साहित्यानुरागी हैं। इन्होंने 'युग प्रधान श्री जिनचद्र', 'ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह' इत्यादि ७। ८ ग्रथो का प्रणयन-सपादन किया है और २००-२५० के लगभग फुट कर लेख लिखे है जिन से जैन साहित्य व हिंदी साहित्य से सबद्ध अनेकानेक तमाच्छन्न तथा सदिग्ध वृत्तों पर अच्छा प्रकाश पडता है।

नाहटाजी हिंदी, राजस्थानी, गुजराती आदि भाषाओं के सुज्ञाता एव हिंदी के सुयोग्य लेखक हैं और बडी लगन तथा सच्चाई से साहित्य-सेवा कर रहे हैं। साहित्यान्वेषण की इनको धुन है। साथ ही सूझ और योग्यता भी है। साफ सोचते और साफ लिखते हैं। इनकी भाषा सरल और शैली हृदय ग्राही होती है। स्पष्टवादिता और व्यग्य का सामजस्य उसे और भी आकर्षक बना देता है। उदाहरण लीजिए—

"हिन्दी साहित्य की खोज-शोध का कार्य अभी बहुत ही मद गति से चल रहा है। पचास वर्षो से खोज होते रहने पर भी सैकडों उल्लेखनीय कवियों एव महत्वपूर्ण ग्रथो से हिंदी-जगत अभी तक अपरिचित है। नाम के लिए हिंदी साहित्य के बीसियों इतिहास प्रकाशित हो चुके और हो रहे हैं, पर उनमे नवीन अन्वेषण बहुत कम क्या बिलकुल नहीं दिखाई पड़ता। फलत शिवसिंह-सरोज और मिश्रबधु विनोद की सैकडो भद्दी भूलें अभी तक ज्यों-की-त्यों चली आ रही है। साहित्य का इतिहास लिखने के लिए साहित्य-शास्त्र और

इतिहास दोनों का अध्ययन और अनुभव होना आवश्यक है। पर हमारे हिंदी साहित्य के इतिहास लेखकों में ऐतिहासिक दृष्टि का प्रायः अभाव-सा है। स्वतंत्र शोध करनेवाले विद्वान नहीं के बराबर हैं। अधिकांश इतिहास लेखक अपने से पूर्व के लेखकों का अनुकरण-मात्र करते हैं। भारत की प्रधान भाषा हिंदी के लिए यह बात अशोभनीय है।"

इनका जन्म सं० १९६८ में नवलगढ़ में हुआ। सं० १९९४ में इन्होंने आगरा विश्व विद्यालय से हिंदी में और सं० २००१ में संस्कृत में एम० ए० किया। ये दोनों परीक्षाएँ इन्होंने प्रथम श्रेणी में पास

कन्हैयालाल सहल की हैं। इस समय ये बिडला कॉलेज, पिलानी में हिंदी-संस्कृत विभाग के अध्यक्ष हैं।

सहलजी हिंदी के प्रतिष्ठावान लेखक और सुयोग्य समालोचक हैं। इन्होंने चौबोली, हरजस बावनी, राजस्थानी कहावतें, और राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद नामक चार ग्रंथों का संग्रह- प्रणयन किया है और फुटकर लेख भी अनेक लिखे हैं जो इनकी गंभीर और विवेचनात्मक शैली के अच्छे परिचायक हैं। इन लेखों का एक संग्रह 'समीक्षांजलि' नाम से छप भी चुका है।

सहलजी संस्कृत गर्भित और सुष्ठु भाषा लिखते हैं जिसमें अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग तो कहीं-कहीं मिलता है पर अर्बी फारसी के शब्दों का नहीं मिलता। इनके विषय-विवेचन में गंभीर चिंतन का प्राधान्य रहता है और विषय के अनुरूप शैली भी प्रौढ़ एवं गुंफित रहती है। उदाहरण लीजिए—

"अमेरिका के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक एडलर अपने को तुच्छ समझने की वृत्ति (Inferiority Complex) के जन्मदाता हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य के सम्पूर्ण कार्य-व्यापार का आधार उसकी हीनता या क्षुद्रता के अनुभव में है। वह अपने अहं को अक्षुण्ण रखने के प्रयत्न में बचपन से ही लग जाता है। वह अनेक उपायों द्वारा अपने अस्तित्व को महत्वपूर्ण और दर्शनीय बनाने की चेष्टा में लगा रहता है। वह समाज में अपने व्यक्तित्व को एक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व के रूप में देखना चाहता है। मनुष्य जब यह अनुभव करता है कि समाज में उसकी अनुपयोगिता के कारण उसका कोई उल्लेखनीय अस्तित्व ही नहीं है, तब वह अपने अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए कला की सृष्टि करने में प्रवृत्त होता है।"

उल्लिखित लेखकों के अतिरिक्त भी अनेक शक्तिशाली लेखकों ने हिंदी व राजस्थानी साहित्य की श्री वृद्धि की है और कर रहे हैं। इनमें सर्व श्री अम्बिकादत्त व्यास, समर्थदान, रामनाथ रत्नू, चन्द्रधर गुलेरी, किशोरसिंह बारहठ, कल्याणसिंह शेखावत, रामनारायण दूगड, गोविन्द नारायण आसोपा, सुन्दरलाल गर्ग, डा० मथुरालाल शर्म्मा, डा० दशरथ शर्म्मा, जगदीशसिंह गहलोत, हरबिलास सारडा, रामनिवास शर्म्मा, हनुमान शर्म्मा, चतुर्भुजदास चतुर्वेदी, प्रभुनारायण शर्म्मा इत्यादि मुख्य हैं।

आठवाँ प्रकरण

उपसंहार

पिछले पृष्ठों में राजस्थानीय साहित्य के लगभग एक हजार वर्षों के इतिहास का सक्षेप में दिग्दर्शन कराया गया है। अब यह देखना शेष रह गया है कि इस समय राजस्थान में कौन-कौन-सी साहित्यिक प्रवृत्तियाँ चल रही हैं और उनका भविष्य कैसा है।

कविता

जैसा कि पहले निर्देश किया जा चुका है राजस्थान के कवि अधुना ब्रजभाषा, खडीबोली और राजस्थानी तीनों मे कविता कर रहे हैं। ब्रजभाषा के कवियों में कोई मौलिकता और नवीनता दृष्टिगोचर नहीं होती। अधिकाश कवि सूर, तुलसी, बिहारी, मतिराम, भूषण, देव, पद्माकर प्राचीन कवियों के भावो की पुनरावृत्ति कर रहे हैं। छद भी इनके वही पुराने हैं—कवित्त, सवैया और दोहा। मालूम नहीं, क्यों ये लोग इस तरह ब्रजभाषा के पीछे पडे हुए हैं। अधिकाश को न तो ब्रजभाषा के व्याकरण का ज्ञान है, न उसकी उच्चारण सबधी विशेषताओं का पता है और न उसकी अन्यान्य सूक्ष्मताओं से परिचित हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इनमें कुछ ऐसे कवि हैं जिनमे कविता करने की जन्मसिद्ध प्रतिभा विद्यमान है। परन्तु ब्रजभाषा के प्रति अत्यधिक मोह होने के कारण ये पूरी तरह से विकसित नहीं हो पा रहे हैं। यदि ये लोग ब्रजभाषा को छोडकर अपनी मातृभाषा मे कविता करना प्रारभ करें तो अपना और साहित्य दोनों का बहुत कुछ उपकार कर सकते हैं।

खडी बोली के कवि राजस्थान में सैकडो हैं और कुछ ने अच्छी ख्याति भी प्राप्त की है। परन्तु अधिकाश की रचनाओं में प्राय. वही दूषण पाये जाते हैं जो राजस्थान के बाहर के खडी बोली के अधिकाश कवियों में देखने मे आते हैं। ये लोग कविता करते हैं और कवि कहलाते हैं पर कविता क्या वस्तु है, इस बात का ज्ञान इनको नहीं है। ईश्वर-प्रदत्त कवित्व शक्ति के साथ-ही-साथ एक सच्चे कवि को रस, अलकार, छद आदि काव्यांगों का अच्छा बोध होना चाहिए, और शब्द-भाडार पर पूरा अधिकार होना तो

आवश्यक है ही। परन्तु ये लोग इन गुणा से सर्वथा शून्य पाये जाते हैं। ये ऐसे क्लिष्ट शब्दा का प्रयोग करते हैं कि जिनका अर्थ खुद नही समझते। इनके कान भी इतने सधे हुए नही हैं कि जिससे इस बात का विवेक हो सके कि अमुक शब्द कर्ण-कटु और अमुक कर्ण-मधुर है। भाषा की अशुद्धता के सबध मे तो कुछ न कहना ही अच्छा है। मच पर खडे होकर जिस समय ये अपनी रचनाएँ सुनाते हैं ऐसा भान होता है मानों कोई बोरे मे से ककड उँडेल रहा है अथवा टीन की छत पर ओले बरस रहे हैं।

ब्रजभाषा और खडी बोली के कवियों की अपेक्षा राजस्थानी भाषा के कवियो का काम अधिक उत्तम है। पेशेदार जातियो के कवियों की बात तो जाने दीजिये। क्योंकि वे तो अभी तक ठकुर-सुहाती और नरेश-भक्ति के दल-दल ही में फँसे पडे हैं और स्वतत्रता के इस नवीन युग, नवीन वातावरण, में भी उन्हे राजा-महाराजा 'कर्ण', 'कल्पवृक्ष' और 'पार्थ' दिखाई दे रहे हैं। परन्तु इतर कवियों ने बहुत उच्च कोटि की रचनाएँ प्रस्तुत की हैं और कर रहे हैं। विशेषकर इनकी फुटकर कविताएँ बहुत ही सुन्दर तथा भावपूर्ण बन पडी हैं। इस तरह की कविता करनेवालों मे सर्व श्री कन्हैयालाल सेठिया, रामनिवास हारीत,, मेघराज मुकुल, भरत व्यास, कुवर मोतीसिंह, सच्चिदानद शर्मा, गणपति स्वामी, कुवर चौंकळासिंह आदि प्रधान हैं।

राजस्थान के जिन कवियों को राजस्थानी और खड़ी बोली दोनों मे काव्य रचना का अभ्यास है उनमे हम कुछ निवेदन करना चाहते हैं। बात यह है कि भाषा का विषय से घनिष्ठ सबध रहता है। यही बात छदों के सबध में भी कही जा सकती है। वाल्मीकि रामायण का अग्रेजी अनुवाद पढते समय हमारे मन मे रामचन्द्र के प्रति वह भक्ति पैदा नहीं होती जो सस्कृत-छदों में लिखे मूल ग्रथ को पढने से होती है। अग्रेजी अनुवाद पढते समय ऐसा मालूम पडता है मानो हम रॉबिन्सन क्रूसो अथवा हातिमताई का किस्सा पढ रहे हैं। अतः ग्रथारभ करने से पूर्व हमारे कवियों को यह सोचना चाहिये कि उनकी भाषा और छद विषय के साथ मेल खाते हैं या नहीं। अर्थात् उनको यह देखना चाहिए कि अपने काव्य के लिए जो विषय उन्होंने विचारा है उसका निर्वाह राजस्थानी भाषा और राजस्थानी छदो मे अधिक अच्छा हो सकेगा या खडी बोली और खडी बोली के छदों में। वस्तुत. विषय के अनुरूप भाषा और छद चुनना भी कवि-कर्म ही है। श्री पतराम गौड़-रचित 'रेगिस्तान' एक अनूठा

खंड काव्य है। इसमें राजस्थान का वातावरण है। राजस्थान की प्राकृतिक शोभा का मनोहर चित्रण है। परन्तु खड़ी बोली में होने से इसकी कान्ति कुछ फीकी पड़ गई है। यदि यही राजस्थानी में रचा गया होता तो बात ही दूसरी होती। दूसरा उदाहरण चन्द्रसिंह कृत 'बादळी' का लीजिये। यह राजस्थानी भाषा की एक नवीन ढंग की रचना है। पर दोहा छंद में लिखी होने से नवीन होते हुए भी प्राचीन-सी मालूम देती है। किसी पुरानी मोटर गाड़ी के कुछ कल-पुर्जे नये बदल देने से वह नई नहीं कहला सकती। नई तभी कहलायगी जब उसके सभी भाग नये होंगे।

राजस्थान में चंद, मीराँ, पृथ्वीराज, वृन्द, नागरीदास आदि अनेक एक-से-एक बढ़कर कवि हो गये हैं और इनकी अमर रचनाओं के सामने आजकल के कवियों की कृतियाँ साधारण कोटि की दीख पड़ती हैं। परन्तु यह सब होते हुए भी भारत के अन्य प्रान्तों की तुलना में काव्य-प्रतिभा की दृष्टि से राजस्थान गरीब नहीं है।

नाटक

अच्छे नाटक राजस्थान में बहुत थोड़े लिखे गये हैं। सर्व प्रथम स्वर्गीय आम्बिकादत्त व्यास ने नाटक-रचना का सूत्रपात किया था। इनके पश्चात् शिवचन्द्र भरतिया ने राजस्थानी भाषा में 'केसर विलास', 'बुढ़ापा की सगाई", "फाटका जजाल" इत्यादि नाटक रचे जो बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुए। तदनन्तर हिंदी-राजस्थानी में छोटे-मोटे अनेक नाटक यहाँ रचे गये परन्तु विशेष आदर न पा सके, स्कूल-कॉलेजों की नाटक-मंडलियों के बाहर उनका प्रचार नहीं हुआ। इस समय राजस्थान में पं० चतुर्भुजदास, पं० प्रभु नारायण, पं० ज्ञानदत्त, पं० जनार्दन राय, श्रीकृष्णलाल वर्मा आदि अच्छे नाटककार हैं और इन्होंने नाट्य साहित्य की उन्नति के लिए प्रशंसनीय प्रयत्न किया है। परन्तु इनमें कोई ऐसा नहीं है जिसकी कीर्ति राजस्थान की सीमाओं को लाँघकर बाहर पहुँची हो।

उपन्यास

उपन्यासों की दृष्टि से भी राजस्थान विशेष धनी नहीं है। पं० लज्जाराम मेहता के उपन्यासों का कुछ वर्ष पूर्व अच्छा प्रचार था। पर आज कल उन्हें कोई नहीं पढ़ता। वे पुराने हो गए हैं। ठा० कल्याणसिंह शेखावत का 'शुक्ल और सोफिया', चांदकरण सारड़ा का 'कॉलेज हॉस्टल', सुन्दरलाल गर्ग

का 'अभागिनी' इत्यादि उपन्यास काफी रोचक हैं। परन्तु कथानक, धटना-वैचित्र्य, चरित्र- चित्रण इत्यादि की दृष्टि से ये सर्वथा निर्दोष नहीं हैं। राजस्थानी भाषा में तो अभी तक एक भी उपन्यास नहीं लिखा गया है। वस्तुत. उपन्यास-रचना का समूचा क्षेत्र राजस्थान मे एक तरह से खाली ही पडा है।

कहानी

कहानी को राजस्थानी मे 'वात' कहते हैं। वात साहित्य अथवा कहानी-साहित्य राजस्थान में प्रचुर मात्रा मे रचा गया है और काफी प्राचीन भी है। आज से कोई ६०० वर्ष पहले की लिखी कहानियाँ उपलब्ध हैं जो गद्य और पद्य दोनों मे हैं। इनमे धार्मिक, नैतिक, पौराणिक, ऐतिहासिक आदि विभिन्न विषयो का अभिवचन बहुत सीधी-सादी भाषा और रोचक शैली में किया मिलता है। परन्तु आधुनिक ढग की कहानियाँ लिखने की परिपाटी चालीस वर्ष से अधिक पुरानी नही है। इसका श्रीगणेश चन्द्रधर गुलेरी ने किया था। इनकी 'उसने कहा था' शीर्षक कहानी हिंदी की सर्व-श्रेष्ठ कहानियो में से एक है और हिंदी साहित्य की अमूल्य थाती समझी जाती है। स्वर्गीय सुन्दरलाल गर्ग कुशल कहानीकार थे। इनकी कहानिया का एक सग्रह 'पान-फूल' नाम से प्रकाशित भी हुआ है। प० जनार्दन राय नागर भी अच्छे कहानी-लेखक हैं। इनकी कुछ कहानियो की प्रेमचन्द, जैनेन्द्र आदि ने बहुत बडाई की है। कुछ का गुजराती आदि अन्य भाषाओं में भी अनुवाद हुआ है। इनके अतिरिक्त और भी अनेक नवयुवक कहानी-लेखक हैं। जिनकी कहानियाँ सामयिक पत्र-पत्रिकाओं मे छपा करती हैं।

निबध

राजस्थान का निबन्ध साहित्य काफी उन्नत अवस्था मे है। साहित्य, कला, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र आदि अनेकानेक विषयों पर विद्वतापूर्ण लेख लिखकर यहाँ के साहित्यकारों ने हिन्दी-राजस्थानी के निबन्ध साहित्य को समृद्ध बनाया है। इनमें कुछ निबन्ध तो ऐसे लिखे गये हैं जिन्होंने हिंदी साहित्य को स्थायी गौरव प्रदान किया है। उदाहरण के लिए स्वर्गीय चन्द्रधर गुलेरी का 'पुरानी हिन्दी' और डा० गौरीशंकर-हीराचन्द्र ओझा का 'पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल' शीर्षक लेख इसी कोटि के हैं। आजकल वर्णनात्मक निबधों के अतिरिक्त भावात्मक एव विचारात्मक निबध भी लिखे जा रहे हैं जिनमे विभिन्न शैलियों का प्रयोग पाया जाता है।

समालोचना

समालोचक प्रायः सभी देशों में कम ही पाये जाते हैं। राजस्थान में भी इनकी सख्या अधिक नहीं है। स्वर्गीय सूर्य्यकरण पारीक बहुत उच्च कोटि के समालोचक थे। उनकी समालोचनाएँ बहुत गम्भीर, निष्पक्ष एव विद्वता-पूर्ण हुआ करती थीं। उनकी असामयिक मृत्यु से राजस्थान की बहुत हानि हुई है। वर्तमान समालोचकों में श्री रामकृष्ण शुक्ल, श्री नरोत्तमदास स्वामी और श्री कन्हैयालाल सहल के नाम उल्लेखनीय हैं।

इतिहास

राजस्थान एक इतिहास-प्रसिद्ध देश है। यहाँ के निवासियों में इतिहास के प्रति स्वाभाविक अनुराग पाया जाता है और अपने पूर्वजों की गौरव-गाथाएँ सुनने-सुनाने में ये बड़ा रस लेते हैं। अत: इतिहास-विषयक कार्य यहा विशेष हुआ है जो विशद भी है और प्रामाणिक भी। यहाँ के इतिहासकारों में सर्वोच्च स्थान डा० गौरीशकर-हीराचन्द ओझा का है। ये अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के पुरुष थे। इनको राजस्थान का 'गिबन' कहा गया है। इनके अतिरिक्त सर्वश्री कविराजा श्यामलदास, मुन्शी देवीप्रसाद, रामनाथ रत्न, रामनारायण दूगड़, रामकर्ण आसोपा, हरविलास सारडा, डा० रघुबीरसिंह, विश्वेश्वरनाथ रेउ, पृथ्वीसिंह मेहता, डा० मथुरालाल शर्मा, डा० दशरथ शर्मा, झाबरमल शर्मा, जगदीशसिंह गहलोत, हनुमान शर्मा इत्यादि और भी अनेक प्रतिष्ठावान इतिहास लेखक हुए हैं जिनके ग्रथों का विद्वानों में बडा आदर है। इनमें से कुछ महाशय अब भी मौजूद हैं तथा इतिहास सबन्धी कार्य कर रहे हैं।

समाचार-पत्र

राजस्थान के समाचार-पत्रों की जो दयनीय दशा आज से पाँच-सात वर्ष पूर्व थी वैसी इस समय नहीं है। द्वितीय महायुद्ध के पहले यहाँ केवल दस-बारह पत्र निकलते थे, जो सभी साप्ताहिक थे। परन्तु आज इनकी सख्या पचास तक पहुँच गई है। इनमे पाँच दैनिक व शेष सप्ताहिक हैं। दैनिक पत्रों के नाम हैं 'लोकवाणी' (जयपुर), 'जयभूमि' (जयपुर), राष्ट्रपताका (जोधपुर), 'रियासती' (जोधपुर) और 'नवज्योति' (अजमेर) इनके अतिरिक्त 'झरना,' 'लहर', 'राजस्थान-क्षितिज' आदि दो-चार मासिक पत्र

भी यहाँ से निकल रहे हैं। इन पत्रों में से अधिकांश ने राष्ट्रीयता के प्रचार तथा पुरानी स्वेच्छाचारी शासन-व्यवस्था को जर्जरित करने मे अच्छा योग दिया है और आज भी अपने पथ पर अटल हैं। इसमे सदेह नहीं कि स्वस्थ पत्रकारिता की दृष्टि से इनमें कुछ त्रुटियाँ हैं परन्तु जिस गति से ये उत्तोत्तर उन्नति कर रहे हैं उसको देखते हुए इनका भविष्य बहुत ही उज्ज्वल और आशाजनक दिखाई पडता है।

शोध-कार्य

राजस्थान, साहित्यिक सपत्ति का खजाना है। साहित्य-विषयक अतुल सामग्री यहाँ के विभिन्न जैन भडारों, उपासरा, रामद्वारों, अस्थलों, मठों, राजकीय पुस्तकालयों एव चारण-भाटा के घरों मे अस्त व्यस्त दशा में पडी हुई है जिसकी रक्षा करना परम आवश्यक है। कर्नल टॉड, डा० टैसीटरी, मुशी देवीप्रसाद, पुरोहित हरिनारायण इत्यादि विद्वानों के उद्योगों से इस सामग्री का जो अश अभी तक प्रकाश में आया है वह सपूर्ण अज्ञात सामग्री का शताश भी नहीं है। वस्तुतः यह काम अभी तक ज्यों-का-त्यो अधूरा पडा है और जब तक यह पूरा नहीं हो जाता तब तक हिंदी अथवा राजस्थानी साहित्य का प्रामाणिक व पूर्ण इतिहास लिखा जाना सभव नहीं है।

हर्ष का विषय है कि राजस्थान के आधुनिक कुछ विद्वानों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ है और वे इस दिशा में बहुत प्रशसनीय कार्य कर रहे हैं। इनमें श्री अगरचन्द नाहटा, डा० रघुबीरसिंह, श्री नरोत्तमदास, श्री कन्हैयालाल सहल, श्रीपतराम गौड, श्री रावत सारस्वत इत्यादि मुख्य हैं।

हिन्दी विद्यापीठ (उदयपुर), श्री सादूल राजस्थानी रिसर्च इस्टीट्यूट (बीकानेर), बगाल हिंदी मडल (कलकत्ता) इत्यादि सस्थाओं के तत्वावधान में भी यह कार्य हो रहा है। शोध विषयक दो एक त्रैमासिक पत्रिकाएँ भी निकल रही हैं। परन्तु कार्य के महत्व और उसकी विशालता को देखते हुए अधिक सगठित प्रयत्नों की आवश्यकता है। हमारे खयाल से नागरी प्रचारिणी सभा (काशी), हिंदी-साहित्य सम्मेलन (प्रयाग,), भडारकर ओरियटल रिसर्च इस्टीट्यूट (पूना), और रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बगाल (कलकत्ता) में से किसी को, जो समर्थ भी हैं और जिनका मुख्य काम यही है, यह काम हाथ में लेना चाहिए। क्योंकि यह कार्य केवल स्थानीय महत्व का नहीं, बल्कि भारतीय महत्व एव भारतीय साहित्य और संस्कृति की रक्षा का है।

अत में राजस्थान के साहित्यकारों की कतिपय कठिनाइयों का उल्लेख कर देना भी यहाँ आवश्यक जान पड़ता है। भाषा, साहित्य, सस्कृति, इतिहास, जन-तत्व, रहन-सहन आदि की दृष्टि से राजस्थान अपने आप मे एक पूरी इकाई है पर राजनीतिक दृष्टि से विभिन्न भागो मे बँटा हुआ होने से यहाँ के साहित्यकारों का सगठन नहीं हो सका है और इस समय भी नहीं है। फलत. जगल में रास्ता भूले हुए बटोहियो की तरह वे दिशा- शून्य-से भटकते नजर आते हैं। एक ही तरह का काम अलग-अलग व्यक्ति एव साहित्य-समितियाँ अलग-अलग स्थानों पर कर रही हैं और मनमानी प्रणाली से कर रही हैं। इसलिए श्रम, शक्ति और द्रव्य सभी का अपव्यय हो रहा है। यदि नागरी प्रचारिणी सभा अथवा हिंदी साहित्य सम्मेलन जैसी कोई सस्था यहाँ होती तो कदाचित ऐसा न हो पाता।

दूसरे, यहाँ के साहित्यकारों और पत्र-सपादको मे यथेष्ट मेल नहीं है। यहाँ के सपादक लोग अपने पत्रो मे राजनीति-विषयक लेख-कविताओ को अधिक स्थान देते आये हैं और विशुद्ध साहित्यिक रचनाओ की अवहेलना की है। देश स्वतत्र हो गया है, पर इस समय भी वही स्थिति है। अत. या तो इन सपादकों को अपना दृष्टि-कोण बदलना चाहिये या नई शुद्ध साहित्यिक पत्रिकाएँ निकालना चाहिए जिससे ऊँचे साहित्य का पोषण और विकास हो सके।

इसके अतिरिक्त प्रचार, प्रकाशन, प्रेस, सार्वलौकिक मच इत्यादि की और भी अनेक ऐसी असुविधाओं का सामना यहाँ के साहित्यिकों को करना पडता है जिनका अनुमान बाहरवालों को नहीं हो सकता।

इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी पिछले १०-१२ वर्षों में राजस्थान में प्राचीन साहित्य के अनुसधान और नवीन साहित्य के निर्माण का आशातीत कार्य हुआ है। इधर देश की स्वतत्रता ने तो यहाँ के साहित्यकारों में नया जीवन ही फूँक दिया है।

विगत शताब्दियों में राजस्थान ने भारतीय साहित्य एव सभ्यता को अपूर्व बल दिया है। आगे भी यह उसी तरह योगदान देता रहेगा, इस मनोकामना के साथ हम इस विषय को समाप्त करते हैं।

सहायक ग्रंथ

(हस्तलिखित)

अचळदास खीची री वचनिका (शिवदास)
अभयविलास (खेतसी)
अवतार चरित्र (नरहरिदास)
अश्वमेध यज्ञ (मुरली)
इच्छा-विवेक (जसवन्तसिंह)
कविवल्लभ (हरिचरणदास)
गुण-गोविंद (कल्याणदास भाट)
गुण रूपक (केशवदास गाडण)
चद कुवर री वात (प्रतापसिंह)
चदन मलयागिर री वात (भद्रसेन)
जगविलास (नदराम)
ढोला मारू री चौपई (कुशललाभ)
तत्ववेत्ता रा सवैया (तत्ववेत्ता)
प्रिया-विनोद (मुरली)
दसम भागवत रा दूहा (पृथ्वीराज)
नागदमण (सॉया जी)
नेहतरग (बुधसिंह)
पच सहेली रा दूहा (छीहल)
पद्मिनी चरित्र (लब्धोदय)
पद्मिनी चौपई (हेमरत्न)
परसराम-सागर (परशुराम)
पृथ्वीराज रासौ (चद)
बिडद सिणगार (करणीदान)
बुद्धिरासौ (जल्ह)
भक्तमाल (नाभादास)
भक्तमाल की टीका (प्रियादास)
भक्तमाल की टीका (बालकराम)
भाषा भारथ (खेतसी)
भाषा भूषण (जसवन्तसिंह)
भीमप्रकास (रामदान)
भीमविलास (किशन जी आढा)
मूता नैणसी री ख्यात (नैणसी)
रघुवर जस प्रकास (किशन जी आढा)
रस मजरी (जान)
रसिकप्रिया की टीका (कुशलधीर)
राजप्रकास (किशोरदास)
राजविलास (मानजी)
राणा रासौ (दयाराम)
राम रासौ (माधौदास)
रुकमणी हरण (सॉया जी)
वचनिका राठौड़ रतनसिंह महेसदासोतरी (जग्गा जी)
ब्रजराज-पद्यावली (जवानसिंह)
वाराणसी विलास (देवकर्ण)
विक्रम पच दंड (नरपति)
विजयविलास (करणीदान)
विनोदरस (सुमति हस)
वीरमाण (ढाढी बादर)
वीर सतसई (सूरजमल)

वेलि क्रिसन रुकमणी री (पृथ्वीराज)
वेलि क्रिसन रुकमणी री टीका (अज्ञात)
वेलि क्रिसन रुकमणी री टीका (कुशलधीर)
वेलि क्रिसन रुकमणी री टीका (शिवनिधि)
शत्रुसाल रासौ (डूँगरसी)
शिकारभाव (नदराम)
समतसार (सॉईदान)
सगतसिंग रासौ (गिरधर)
सूरज प्रकास (करणीदान)
हरिपिंगल प्रबन्ध (जोगीदास)
हरिरस (ईसरदास)
हालॉ-झालॉ रा कुँडळिया (ईसरदास)

(मुद्रित)

हिन्दी-राजस्थानी

अलकार रत्नाकर (दलपतराय-बसीधर)
आदर्श नरेश (झाबरमल)
आप बीती (लज्जाराम)
उदय-प्रकाश (किशन जी)
ऊमर-काव्य (ऊमरदान)
ऐतिहासिक जैन-काव्य सग्रह (अगरचन्द)
कवि-रत्नमाला (देवी प्रसाद)
केसरीसिंह-समर (हरिनाभ)
केहर-प्रकाश (बख्तावर जी)
कोटा राज्य का इतिहास (डा० मथुरा लाल)
गीत-मजरी (श्री सादूळ प्राच्य ग्रथ-माला)
चतुर-चिंतामणि (चतुरसिंह)
छद राव जैतसी रो (डा० टैसीटरी)
जसवत जसो भूषण (मुरारिदान)
जौहर (सुधींद्र)
डिंगल-कोश (मुरारिदान)
डिंगल मे वीररस(मोतीलाल मेनारिया)
ढोला मारू रा दूहा(नागरी प्रचारिणी सभा)
देश के इतिहास में मारवाडी जाति का स्थान (बालचद)
नटनागर विनोद (नटनागर)
नागर समुच्चय (नागरीदास)
पॉडव यशेन्दु-चन्द्रिका (स्वरूपदास)
पुरातन प्रबन्ध-सग्रह (जिनविजय)
पृथ्वीराज रासौ (काशी नागरी प्रचारणी सभा)
पृथ्वीराज रासौ (दि रॉयल एशियाटिक सोसायटी)
पृथ्वीराज रासौ (मथुराप्रसाद दीक्षित)
प्रताप-चरित्र (केसरीसिंह)
बॉकीदास-ग्रन्थावली भाग १-३ (काशी (नागरी प्रचारणी सभा)
बादळी (चन्द्रसिंह)
बापू (धनश्यामदास)
बीसलदेव रासौ (काशी नागरी प्रचारणी सभा)
बुढापा की सगाई (शिवचन्द्र)
भारत के देशी राज्य (सुख सपति राय)
महाराणा यश प्रकाश (भूरसिंह)

मारवाड़ का इतिहास (विश्वेश्वर नाथ रेउ)
मारवाडी व्याकरण (रामकर्ण)
मिश्रबधु-विनोद भाग २ ४ (मिश्र बधु)
मोहन-विनोद (रामसिंह)
रघुनाथ-रूपक (काशी नागरी प्रचारणी सभा)
राजपूताने का इतिहास (ओझा)
राज रसनामृत (देवी प्रसाद)
राजरूपक (काशी नागरी प्रचारिणी सभा)
राज-विलास (काशी नागरी प्रचारिणी सभा)
राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रथों की खोज (मोतीलाल मेनारिया)
राजस्थान रा दूहा (नरोत्तमदास)
राजस्थानी साहित्य की रूप-रेखा (मोतीलाल मेनारिया)
राजिया रा दूहा (कृपाराम)
रेगिस्तान (पतराम गौड)
वश-भास्कर (सूरजमल)
विरुद छहत्तरी (दुरसाजी)
वीरविनोद (श्यामलदास)
वीर विनोद (गणेशपुरी)
वेलि क्रिसन रुकमणी री (हिन्दुस्तानी एकेडेमी)
वेलि क्रिसन रुकमणी री (डा० टैसीटरी)
व्रजनिधि ग्रथावली (हरिनारायण)
व्रज माधुरी सार (वियोगीहरि)
शबनम (दिनेशनदिनी)
शिव सिंह-सरोज (शिवसिंह)
शेषस्मृतियाँ (डा० रघुवीरसिंह)
सतवाणी-सग्रह (बेलवेडियर प्रेस)
सतसई (बिहारीलाल)
समीक्षाजली (कन्हैयालाल सहल)
सुन्दर-ग्रन्थावली (हरिनारायण)
स्त्री कवि-कौमुदी (ज्योतिप्रसाद)
हमीर रासौ (जोधराज)
हरिरस (ईसरदास)
हिन्दी-साहित्य का इतिहास (रामचद्र शुक्ल)

गुजराती

कवि-चरित, भाग पहला (केशवराम-काशीराम)
चारणों अने चारणी साहित्य (झवेर चन्द मेघाणी)
जैन गूर्जर कविओ, भाग १-४ (मोहनलाल-दलीचद देसाई)
प्राचीन गूर्जर काव्य (केशवलाल-हर्षदराय)
प्राचीन गुजराती गद्य-सदर्भ (मुनि जिन विजय)
बृहत् काव्य दोहन, भाग ७ (इच्छाराम-सूर्यराम)

संस्कृत

काव्यप्रकाश (मम्मट)
पाइअ-सद्द-महण्णवो (हरगोविददास-त्रिकमचन्द)
पृथ्वीराज विजय महाकाव्य (जयानक)

प्राकृतपैङ्गल (एशियाटिक सोसाइटी)
राजप्रशस्ति महाकाव्य (रणछोड भट्ट)
यजुर्वेद सहिता (आर्य्य साहित्य-मडल)

अंग्रेजी

A Descriptive(Catalogue of Bardic and Historical manuscripts-part I & II (Dr L P Tessitori)
Annals and Antiquities of Rajasthan (Col Tod)
Gujarat and its Literature (K. M Munshi)
History of Classical Sanskrit Literature) Krishnamachariar)
Linguistic Survey of India, Vol IX, Pt I (Dr G A Grierson)
Preliminary Report on the Operation in Search of Mss of Bardic Chronicles (Haraprasad)
Rajputana Gazetter

पत्र-पत्रिकाएँ

जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बगाल
नागरी प्रचारिणी-पत्रिका
भारतीय विद्या
राजस्थान भारती
क्षात्र-धर्म सदेश
विशाल भारत
राजस्थानी
माधुरी
चारण

नामानुक्रमणिका

———

शुद्धि-पत्र

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
साम्मिलित	सम्मिलित	३	२१
मसकरौ	मसकरी	६	फुटनोट
कह्ाना	कह्ना	१६	२४
है	०	१७	४
निर्मळ	त्रिमळ	३४	२२
शेष	प्राय' शेष	३६	१२
मावीत्र मुखि	०	३७	२०
जाळी.. जोवै	०	३८	६
प्रतिबिंबत	प्रतिबिंबित	४८	१५
बोलतौं	बोलतॉ	५६	१२
बड़ा	बड	६०	८
जध	जुध	६५	१३
सूरजमल्ल	सूरजमल	६६	२२
इसलिए	०	८१	७
समसामायिक	समसामयिक	८१	१५
आतिरिक्त	अतिरिक्त	८१	२३
राजप्रशत्ति	राजप्रशस्ति	६२	फुटनोट
मारा	मारी	११७	फुटनोट
काड़ि	कडि	१२०	फुटनोट
कहाँ	वहाँ	१५१	२४
निर्वी	निर्वीर	१५५	१७
बनाएँ	बनाए	१६५	१२२
विद्वन	विद्वान	२६१	१४
भारद्वाज	भरद्वाज	२६२	२४
बेग	पगड़ी	२६४	फुटनोट